भाद्रपद, आश्विन, सम्वत् १९९९

सम्मेलन पत्रिका

[भाग २७, संख्या १, २]

संपादक
श्री रामकुमार वर्मा एम० ए०
साहित्य मंत्री

हिन्दी साहित्य सम्मेलन
प्रयाग

वार्षिक १)

एक प्रति ≈)

विषय-सूची

सम्मेलन-पत्रिका

संख्या १, २] भाद्रपद, आश्विन १९९६ [भाग २७

मङ्गलाप्रसाद पारितोषिक

के सम्बन्ध में

निर्णायकों की सम्मतियाँ

[इस वर्ष मंगलाप्रसाद पारितोषिक साहित्य विषय के निबन्ध भाग पर दिया गया। बहुमत से यह पुरस्कार पं० रामचन्द्र शुक्ल जी को उनके चिन्ता-मणि ग्रंथ पर प्रदान किया गया। इस वर्ष पुरस्कार के लिए निम्नलिखित निर्णायक चुने गए थे :—

सर्व श्री जैनेन्द्रकुमार, दिल्ली
गुलाब राय, आगरा
सद्‌गुरुशरण अवस्थी, कानपुर
गुरुप्रसाद टंडन, ग्वालियर
सूर्यकांत, लाहौर
अमरनाथ झा, प्रयाग
शिवाधार पाण्डेय, प्रयाग
हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, शांतिनिकेतन
जनार्दन मिश्र, पटना
दीन दयालु गुप्त, लखनऊ

प्रधान मंत्री डा० बाबूराम जी सक्सेना इस पुरस्कार के संयोजक थे। उन्होंने पुरस्कार-निर्णायक के पास जो सम्मति-पत्र भेजा था वह इस प्रकार है :—

हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
सम्मति पत्र

सेवा में
श्री.................................

संयोजक पारितोषिक समिति
हिन्दी साहित्य सम्मेलन,
प्रयाग।

महोदय,

आपकी भेजी हुई सूची के अनुसार इस पारितोषिक के निर्णय के लिये...पुस्तकें मिलीं। मैंने सभी पुस्तकों को ध्यानपूर्वक देखा और नियमों के अनुसार प्रतियोगिता की दृष्टि से विचार किया।

मेरी सम्मति में नीचे लिखी पुस्तकों ने क्रम से प्रथम, द्वितीय और तृतीय स्थान प्राप्त किया है :—

प्रथम
द्वितीय
तृतीय

मैं प्रमाणित करता हूँ कि मैंने निष्पक्ष भाव से सत्य और न्याय की दृष्टि से ही अपना निर्णय दिया है और मुझ पर कोई अनुचित दबाव नहीं पड़ा है। मैंने अपनी नियुक्ति और निर्णय गुप्त रक्खे हैं।

मेरी सम्मति के कारण संक्षेप से दूसरे पृष्ठ पर अंकित हैं।

भवदीय
निर्णायक
............पारितोषिक
१९९ .सं०

इस सम्मति पत्र पर निर्णायकों की सम्मतियां प्राप्त हुईं। उसके अनुसार निम्नलिखित ग्रंथों के लिए प्रथम सम्मतियां आईं।

१—चिन्तामणि ४
२—साहित्यालोचन १

३—हिन्दी साहित्य का
आलोचनात्मक इतिहास १
४—हिन्दी व्याकरण १
५—तिब्बत में सवा वर्ष १
६—तुलसी दर्शन १
निर्णायकों की सम्मतियां यहाँ प्रकाशित की जाती हैं।

संपादक]

१—श्री जैनेन्द्र कुमार

मेरी सम्मति में नीचे लिखी पुस्तकों ने क्रम से प्रथम, द्वितीय और तृतीय स्थान प्राप्त किया है :—

प्रथम—चिंतामणि।

द्वितीय—विश्व-साहित्य।

तृतीय—हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास।

मैं प्रमाणित करता हूँ कि मैंने निष्पक्ष भाव से सत्य और न्याय की दृष्टि से ही अपना निर्णय दिया है और मुझ पर कोई अनुचित दबाव नहीं पड़ा है। मैंने अपनी नियुक्ति और निर्णय प्रगट नहीं किये हैं।

१—चिंतामणि पुस्तक में सूक्ष्म मनोभावों के मूल खोजने की वृत्ति है। साहित्य-कार्य में इस वृत्त को मैं सब से ऊँची मानता हूँ। और यह काम पर्याप्त दायित्वशाली और निराग्रही भाव से पुस्तक में संपन्न हुआ है।

२—दूसरा स्थान स्वभावतः 'साहित्यालोचन' का था। उसमें कठोर प्रामाणिकता है। च्युति कम से कम है। शैली अतिशय संयत और सारगर्भ है। पर कुछ कथन उसमें ऐसे भी हैं जिनके पीछे अनुभूति का बल नहीं हो सकता। गुरु के लिए यह क्षम्य हो सकता हो पर साहित्यकार के लिए यह भारी दोष है।

इस पुस्तक को दूसरा स्थान देने में मैं सफल नहीं हुआ तब तीसरे स्थान पर रखने की तो सोच ही नहीं सकता था।

इससे दूसरा स्थान विश्व-साहित्य ने पाया। उसमें दृष्टिकोण विस्तृत है, सार्थक अध्ययन के लक्षण हैं और कहीं कहीं अनुभूति का संयोग है।

३—'हिन्दी साहित्य के आलोचनात्मक इतिहास' में ईमानदार और गहरा परिश्रम है। दृष्टि को तटस्थ और खुले रखने की उसमें चेष्टा है और हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक संगत क्रम-विकास को खोज देखने और दिखाने का प्रयत्न है, जो उचित है।

अतिरिक्त पुस्तकों में कई सुपाठ्य हैं। पर उनके ज़िक्र का अवकाश यहाँ नहीं है।

जैनेन्द्र कुमार

२—श्री गुलाबराय

मेरी सम्मति में नीचे लिखी पुस्तकों ने क्रम से प्रथम, द्वितीय और तृतीय स्थान प्राप्त किया है :—

प्रथम—चिन्तामणि।

द्वितीय—साहित्यालोचन।

तृतीय—आलोचनात्मक इतिहास, आधुनिक इतिहास, विद्यापति का काव्यालोक, तुलसी दर्शन।

मैं प्रमाणित करता हूँ कि मैंने निष्पक्ष भाव से सत्य और न्याय की दृष्टि से ही अपना निर्णय दिया है और मुझ पर कोई अनुचित दबाव नहीं पड़ा है। मैंने अपनी नियुक्ति और निर्णय गुप्त रक्खे हैं।

मेरे निर्णय की पुष्टि में निम्नलिखित कारण हैं।

निबन्ध साहित्य में चिन्तामणि का विशेष स्थान है। इसमें साहित्य और मनोविज्ञान सम्बन्धी उच्चकोटि के निबन्ध हैं। मनोवैज्ञानिक लेखों में क्रोध, लोभ, प्रीति आदि मनोवृत्तियों का बड़ा सूक्ष्म विश्लेषण है। इन मनोवृत्तियों का साहित्य से भी विशेष सम्बन्ध है। इसलिए ये लेख भी साहित्यिक ही हैं। साहित्यिक लेखों में 'कविता क्या है' तथा 'साधारणीकरण और व्यक्ति वैचित्र्य वाद' आदि लेखों में भारतीय पद्धति से काव्य के तत्वों का विवेचन

है। प्राचीन सिद्धांतों का एक नवीन दृष्टिकोण से स्पष्टीकरण किया गया है और एक प्रकार से उस परम्परा को उसी पद्धति पर थोड़ा आगे बढ़ाया गया है। इन निबन्धों में यही विशेषता है कि सूक्ष्म और ठोस विवेचन के साथ साहित्यिक निबन्धों में जैसा भाषा का चमत्कार चाहिए वह इनमें पूर्णतया वर्तमान है। इन्हीं कारणों से मैंने इसको प्रथम स्थान दिया है।

साहित्यालोचन ने हिन्दी साहित्य में एक बड़ी भारी कमी की पूर्ति की है। आलोचना सम्बन्धी सिद्धान्तों का बड़ी मार्मिक रीति से उद्घाटन किया गया है। भाषा भी यथेष्ट रूप से चमत्कार पूर्ण है। इस पुस्तक में अपना कोई विशेष दृष्टिकोण नहीं है। साधारण सिद्धान्तों का विवेचन करने वाली पुस्तकों में यह दोष प्रायः आ जाता है। किन्तु जहाँ मौलिकता का मूल्य है वहाँ यह दोष पुस्तक के मूल्य को गिरा देता है। उपयोगिता की दृष्टि से यह दोष गुण हो जाता है। निरपेक्ष भाव से देखने में मौलिकता को उपयोगिता की अपेक्षा अधिक मान देना होगा। साहित्यालोचन का महत्व उपयोगिता और ज्ञान वृद्धि की दृष्टि से अधिक है। मौलिकता की दृष्टि से चिन्तामणि का महत्व है। चूंकि दो पुस्तकों को पुरस्कार नहीं मिल सकता इसलिए मौलिकता को मान देते हुए चिन्तामणि को प्रथम स्थान दिया गया है।

तीसरे स्थान में जो पुस्तकें रक्खी गई हैं वे उपेक्षा योग्य नहीं है। इनमें से किसी एक को छोड़ देना बड़ा कठिन कार्य है। आधुनिक इतिहास ने आधुनिक साहित्य के सम्बन्ध में उल्लेखनीय कार्य किया है। इस सम्बन्ध में इस पुस्तक के पूर्व और कोई पुस्तक न थी। विवेचनाएँ भी पर्याप्तरूप से मौलिक हैं।

आलोचनात्मक इतिहास बड़े परिश्रम और अध्यवसाय के साथ लिखा गया है। इसमें जितने कवि आये हैं उनकी सविस्तार विवेचना है। ग्रन्थ में विश्लेषणात्मक कार्य बहुत अच्छा हुआ है और उसी के साथ साहित्यिक प्रवृत्तियों का अच्छा विवेचन है।

विद्यापति के काव्यालोक में लेखक ने वही कार्य किया है जो

स्वर्गीय पं० पद्मसिंह शर्मा ने बिहारी के सम्बन्ध में किया है। इस ग्रन्थ में तुलनात्मक आलोचना के अच्छे उदाहरण मिलते हैं। तुलसी-दर्शन में तुलसीदास जी के ग्रन्थों का दार्शनिक दृष्टिकोण से विवेचन किया गया है। तुलसी सम्बन्धी आलोचनात्मक साहित्य में यह ग्रन्थ स्वागत योग्य है।

शेष पुस्तकें भी अपने-अपने ढंग की अच्छी है। पं० का० प्र० गुरु के व्याकरण ने अपने क्षेत्र में प्रशंसनीय कार्य किया है। तिब्बत में सवा वर्ष यात्रा सम्बन्धी साहित्य में विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

गुलाब राय

३—श्री सद्गुरुशरण अवस्थी

मेरी सम्मति में नीचे लिखी पुस्तकों ने क्रम से प्रथम, द्वितीय और तृतीय स्थान प्राप्त किया है:—

प्रथम—चिंतामणि।

द्वितीय—साहित्यालोचन।

तृतीय—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, तथा आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास।

मैं प्रमाणित करता हूँ कि मैंने निष्पक्ष भाव से सत्य और न्याय की दृष्टि से ही अपना निर्णय दिया है और मुझ पर कोई अनुचित दबाव नहीं पड़ा है। मैंने अपनी नियुक्ति और निर्णय गुप्त रक्खे हैं।

मेरे निर्णय की पुष्टि में निम्नलिखित कारण हैं:—

'चिंतामणि'—को मैं सब से ऊँचा स्थान इसलिये देता हूँ कि उसके प्रबंधों की विचार धारा नितांत मौलिक और उसकी शैली सुगठित और परिपक्व है। इस पुस्तक के प्रत्येक प्रबंध में विषय की ऊँची और मौलिक चिंतना के साथ-साथ आकर्षक और सुबोध व्याख्या मिलती है। ये बातें किसी दूसरी पुस्तक में नहीं मिलतीं।

साहित्यालोचन—हिन्दी साहित्य में इस विषय की दूसरी पुस्तक नहीं मिलती। पूर्व और पश्चिम की साहित्य शास्त्र विषयक विचार-

धाराओं का इसमें अच्छा समन्वय है। साहित्य की जानकारी के लिये पुस्तक उपादेय है।

हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास तथा आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास—दोनों एक ही कोटि की पुस्तकें हैं। आलोचनात्मक इतिहास का अभी पूरा रूप सामने नहीं है। एक स्थल पर इतनी इतिहास की सामग्री अन्यत्र मिलना कठिन है। आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास भी अच्छी सामग्री अच्छे ढंग से उपस्थित करता है।

पुनश्च—हिन्दी व्याकरण, तुलसी दर्शन, बिहारी दर्शन तथा विश्व-साहित्य भी अच्छी पुस्तकें हैं।

सद्गुरु शरण अवस्थी

४—श्री गुरुप्रसाद टंडन

मेरी सम्मति में नीचे लिखी पुस्तकों ने क्रम से प्रथम, द्वितीय और तृतीय स्थान प्राप्त किया है:—

प्रथम—चिन्तामणि।

द्वितीय—साहित्यालोचन।

तृतीय—विद्यापति-काव्यालोक तथा हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास।

मैं प्रमाणित करता हूँ कि मैंने निष्पक्ष भाव से सत्य और न्याय की दृष्टि से ही अपना निर्णय दिया है और मुझ पर कोई अनुचित दबाव नहीं पड़ा है। मैंने अपनी नियुक्ति और निर्णय गुप्त रक्खे हैं।

१ चिन्तामणि—इस पुस्तक में पं० रामचंद्र शुक्ल के भिन्न-भिन्न साहित्यिक एवं मनोवैज्ञानिक विषयों पर लिखे गए सत्रह निबंध हैं। श्रद्धा-भक्ति, लोभ-प्रीति, ईर्ष्या, क्रोध, कविता क्या है, साधारणीकरण और व्यक्ति-वैचित्र्यवाद आदि निबंधों के शीर्षकों से ही पता चलता है कि लेखक कैसे जटिल और गूढ़ विषयों पर चिंतन करना चाहता

है। इन विषयों पर लेख लिखना सहज नहीं है। कौतूहल या मनोरंजन के लिए यहाँ स्थान नहीं, यह तो तत्ववेत्ता और समीक्षक का क्षेत्र है। लेखक ने बड़ी ही विश्लेषणात्मक प्रणाली से उक्त विषयों का मौलिक निरूपण किया है।

चिंतामणि के अधिकांश निबंधों में बुद्धि तत्व प्रधान है पर तुलसी का भक्तिमार्ग, रसात्मक बोध के विविध रूप, लोभ और प्रीति आदि निबंधों में हृदय तत्व का भी सामंजस्य हुआ है। इन निबंधों से लेखक के व्यापक पांडित्य निरीक्षण-शक्ति एवं मनन-शीलता का सहज ही परिचय हो जाता है। निबंध का गुण केवल विचार-शक्ति तक ही सीमित नहीं है प्रत्युत भाषा-शैली के प्रौढ़ विधान में भी ढूँढ़ा जाता है। चिन्तामणि की भाषा अत्यंत परिष्कृत और तर्कपूर्ण है; व्यर्थ का शब्द या वाक्य कहीं नहीं है। पद-पद पर लेखक की व्यक्तिगत अनुभूति है जिससे हमें प्रत्येक पंक्ति पर रुक-रुक कर आगे बढ़ना पड़ता है। यदि हमने पिछले विचारों को नहीं समझा तो आगे कुछ न समझ में आवेगा। इस प्रकार लेखक पाठक को अपने साथ-साथ ले चलता है। यही आत्मीयता का गुण उत्कृष्ट निबंधों का अनिवार्य अंग है।

विचारों की महानता के कारण चिन्तामणि की भाषा में प्रवाह की कमी कहीं कहीं अवश्य है पर विचारात्मक निबंधों में लेखक भाषा के शृंगार पर उतना ध्यान नहीं देता जितना प्रयुक्त शब्दावली के औचित्य पर। भाव के अनुकूल ही भाषा में परिवर्तन हुआ है। अवसर विशेष पर शुक्लजी की शैली ओजस्विनी बन जाती है और उसमें तीव्र व्यंग का भी समावेश हो जाता है—

'लोभियो! तुम्हारा अक्रोध, तुम्हारा इन्द्रिय-निग्रह, तुम्हारी मानापमान-समता, तुम्हारा तप अनुकरणीय है; तुम्हारी निष्ठुरता, तुम्हारी निर्लज्जता, तुम्हारा अविवेक, तुम्हारा अन्याय विगर्हणीय है। तुम धन्य हो! तुम्हें धिक्कार है!!'

(पृ० ११७)

शुक्लजी ने अपने निबंधों की भाषा-शैली एवं विचारपद्धति से

हिन्दी गद्य को काव्य के कलात्मक रूप पर तो प्रतिष्ठित किया ही है पर उनका सब से अधिक उपकार आलोचना के क्षेत्र में नई समीक्षा-प्रणाली की उद्भावना में पाया जाता है। तार्किक पद्धति पर जो आलोचनाएँ आज निकल रही हैं उस प्रवृत्ति को फैलाने का श्रेय शुक्लजी को ही है। निबंध और आलोचना के क्षेत्र में उन्होंने आचार्य-वत कार्य्य किया है।

निबंध के क्षेत्र में 'चिन्तामणि' शीर्ष स्थान पाने योग्य है।

२—साहित्यालोचन—इस ग्रंथ में बाबू श्यामसुंदर दास जी ने कला, कविता, गद्यकाव्य, नाटक, रस, शैली आदि साहित्य शास्त्र के विविध अंगों का भारतीय और योरोपीय सिद्धान्तों के अनुसार गंभीर विवेचन किया है। अपने क्षेत्र में यह अकेला ही ऐसा ग्रंथ है जो तात्विक दृष्टि से पूर्ण है। विचार तो संस्कृत एवं पाश्चात्य साहित्य से लिए गए हैं पर लेखक ने अपनी मौलिक शैली में उन्हें प्रकट किया है और उनमें स्थान स्थान पर एकता स्थापित करने की चेष्टा भी की है। आधुनिक युग की आलोचनात्मक प्रवृत्ति के अनुकूल ही इस ग्रंथ का निर्माण हुआ है। साहित्य शास्त्र के वर्तमान ग्रंथों में इसका स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है और हिन्दी साहित्य के विद्यार्थी के लिये तो इसका अध्ययन अनिवार्य्य ही है।

उपन्यास, आख्यायिका तथा निबंध का विकास, पाश्चात्य साहित्य के संपर्क के कारण ही हिन्दी साहित्य में हुआ है। अतएव इनके विवेचन के लिये पाश्चात्य सिद्धान्तों का मनन आवश्यक ही था, परंतु लेखक ने इनकी समीक्षा करते हुए भारतीय संस्कृति का भी ध्यान रखा है और हमारे वातावरण के अनुकूल मार्ग निर्दिष्ट किया है। काव्य के भाव और कला पक्ष की विवेचना में भी लेखक की कुछ मौलिकता है।

इस संशोधित संस्करण में बा० श्यामसुन्दरदास जी ने विवाद-ग्रस्त स्थलों को बचाने की चेष्टा की है। कवितागत सत्य या प्रकृति निरीक्षण में त्रुटियों को प्रकट करने वाले उद्धरण नहीं हैं। इसी प्रकार आख्यायिका निबंध अथवा कविता की वैज्ञानिक परिभाषा की ओर

से भी वे उदासीन हैं। एक स्थल पर वे लिखते हैं—

बड़े बड़े डाक्टर, और समालोचक 'रस मीमांसा' और 'साधरणीकरण' पर भ्रमपूर्ण बातें लिखते हैं, अर्थात् लोगों को रस का सुंदर और शास्त्रीय ज्ञान नहीं है।'

यहाँ पर 'डाक्टर' या 'समालोचक' का नाम देना आवश्यक था। आलोचना के क्षेत्र में विवाद से ही ज्ञान का विकास होता है। रस प्रकरण में उक्त सिद्धान्तों का भ्रम निवारण किया गया है पर उसका निर्देश पहले ही यथास्थान होना चाहिए था।

एकांकी नाटक तथा गीतिकाव्य का विषय लेखक ने न जाने क्यों छोड़ दिया है? हिन्दी साहित्य की वर्तमान प्रगति को ध्यान में रखते हुए उक्त विषयों की विवेचना आवश्यक थी।

विषय के अनुकूल हिन्दी गद्य का अत्यंत विशद रूप प्रकट करने में बा० श्यामसुंदर दास जी को भी विशेष महत्व प्राप्त है परन्तु पाश्चात्य विचारों के कारण उनकी भाषा में कहीं कहीं जटिलता एवं दुरूहता भी आ गई है—

'निबंध की शैली में शैथिल्यपूर्ण वातावरण की ही प्रधानता होती है। वह किसी विशेष दिशा की ओर उद्यत होकर नहीं चलती। यह शैथिल्य—जिसमें आत्मीयता और सुकरता की ध्वनि भरी रहती है—निबंध की कला-जन्य विशेषता है।'

(पृ० १९७),

अंग्रेजी से अनभिज्ञ सज्जन उक्त 'शैथिल्य पूर्ण वातावरण के आधार पर निबंध के रूप की कैसे यथार्थ कल्पना कर सकते हैं? इस प्रकार कहीं-कहीं ऊपर की दुर्बोधता विषय प्रतिपादन में बाधक बनी है।

'चिन्तामणि' और 'साहित्यालोचन' अपने-अपने क्षेत्र में श्रेष्ठ ग्रंथ हैं पर मौलिक चिंतन, एवं व्यक्तिगत अनुभूति के कारण चिन्ता मणि ही अधिक प्रशस्त रचना है।

३—विद्यापति काव्यालोक—

महाकवि विद्यापति के सम्बन्ध में हिन्दी के विद्वानों में समय-

समय पर विभिन्न मत प्रकट किये जाते रहे हैं। कोई उन्हें विलासी कवियों में आसन देता है तो कोई मधुर-भाव के परम भक्तों में। कृष्ण-काव्य का जिन्होंने अध्ययन किया है, वे सहज ही कह सकते हैं कि विद्यापति ने ही हिन्दी में गीति-काव्य की पद्धति चलाई थी।

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने अनेक भ्रान्तियों का निवारण करते हुए विद्यापति के काव्य-सौन्दर्य का निरीक्षण तुलनात्मक दृष्टिकोण से किया है। यह पद्धति भावों में सादृश्य-स्थापना के उद्देश्य से है, न कि विद्यापति का सर्वोच्च कवि सिद्ध करने के प्रयास से। विद्वान् लेखक ने संस्कृत, बङ्गाली, हिन्दी, अंग्रेज़ी तथा मैथिली कवियों की अनेक कविताओं को उपस्थित करते हुए विशेष क्षेत्र में विद्यापति की कला को परखने की चेष्टा की है। कदाचित् पंडित पद्मसिंह शर्मा के 'संजीवन भाष्य' के बाद तुलनात्मक आलोचना में यही श्रेष्ठ ग्रन्थ विद्वानों के समक्ष आया है।

जब कवि का अध्ययन इतने व्यापक क्षेत्र में किया जायगा तब विवाद और मत-भेद की परिस्थितियों का उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है। सूर, बिहारी और मतिराम से विद्यापति की जो तुलना की गई है उसमें आलोचकों को बहुत कुछ कहने का अवसर है। फिर भी यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि आलोचक को अपने प्रयत्न में प्रायः सफलता मिली है। विद्यापति पर इतनी श्रेष्ठ आलोचना की यह पहली पुस्तक है। वास्तव में तुलनात्मक आलोचना पर ही लेखक ने विशेष ध्यान दिया है। यह अच्छा होता यदि विद्यापति के काव्य के गुण-दोषों पर नवीन आलोचनात्मक पद्धति से विचार किया गया होता।

लेखक की भाषा शैली प्रांजल और सराहनीय है। उसके व्यापक अध्ययन, अनुसंधान और मौलिक-निरीक्षण का परिचय इस ग्रन्थ से होता है।

(२) हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—

वर्मा जी ने इधर-उधर की बहुत सी बिखरी हुई सामग्री को

लेकर यह आलोचनात्मक इतिहास प्रस्तुत किया है। इतिहास, आलोचना और दार्शनिक वातावरण का अनूठा मेल इस ग्रन्थ में है। दार्शनिक, सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों का परिचय देते हुए प्रत्येक काल की कृतियों पर इस ग्रन्थ में विचार किया गया है। विष्णु, राम, कृष्ण तथा राधा की उपासना, वैष्णव भक्ति का विकास, संत मत के सिद्धान्त आदि साम्प्रदायिक विषयों को भी इस इतिहास में स्थान मिला है, जिससे उसका आकार बहुत बढ़ गया है।

अंग्रेजी पुस्तकें एवं पाश्चात्य मतों का ही आधार लेखक ने अधिक लिया है। कहीं-कही तो अंग्रेजी लेखकों के उदाहरण देने की चेष्टा की गई है। तुलसीदास के जीवन की सात घटनाओं का परिचय प्रियादास की टीका से मिलता है। केवल इस कथन की पुष्टि के लिए टीका का अवलोकन करना पर्याप्त था, पर पृष्ठ ३६८ पर व्यर्थ ही J. M. Macfie का उद्धरण यह बतलाने के लिए है कि प्रियादास ने उक्त सात घटनाओं की चर्चा की है। आश्चर्य तो यह है कि पृष्ठ ३७७ पर स्वयं लेखक ने प्रियादास के अनुसार उक्त सात घटनाओं का उल्लेख किया है।

लेखक की मौलिकता कवियों की आलोचना में विशेष है। खोज के विद्यार्थी के लिए यह ग्रंथ अत्यंत उपयोगी है क्योंकि इसमें विविध मतों को उद्धृत करते हुए लेखक ने अपना दृष्टिकोण भी स्थान स्थान पर उपस्थित किया है। कबीर के सम्बंध में लेखक की खोज आदरणीय है। भिन्न भिन्न कवियों अथवा कृतियों का विवेचन करते हुए लेखक ने ने सापेक्षिक महत्व पर कम ध्यान दिया है। एक उदाहरण ही पर्याप्त होगा। 'गीतावली' पर २७ पृष्ठों की विस्तृत आलोचना है तो 'रामचरित मानस' पर १८ पृष्ठों में। इसी प्रकार से नाभादास का उल्लेख केवल ८-१० पंक्तियों में है।

जो लेखक लगभग १००० वर्षों का इतिहास उपस्थित करेगा उसमें कुछ स्थलों पर भ्रान्तियों का होना स्वाभाविक ही है। ऐसी भ्रान्तियाँ कहीं तो असंयत भाषा के कारण हैं और कहीं अँग्रेजों के जूठे मतों को उगलने के कारण हैं। यहाँ अधिक विवेचन का अवसर

नहीं है। अतएव कुछ भ्रांतियों की ओर केवल संकेत कर देना ही उचित है:—धर्म के आलोचकों ने इस राधा कृष्णके सम्बन्ध को आत्मा और परमात्मा के मिलन का रहस्यवादमय रूप दिया है।'

(पृष्ठ १६)

आधुनिक काल की विशेषता बतलाते हुए यह टिप्पणी है—'वर्णनात्मक और नीति काव्य की प्रधानता।'

पृष्ठ २६ (विशेष)

मालूम नहीं लेखक का अभिप्राय गीति-काव्य से तो नहीं है क्योंकि वही युग की विशेषता है।

ज्ञानेश्वर महाराज का आविर्भाव काल सन १२९० माना जाता है, अतएव विष्णुस्वामी का समय (१२९०+३०) सन् १३२० माना जाना चाहिए।'

(पृष्ठ १८५-१८६)

गोरख के समय के सम्बन्ध में लेखक ने पांगारकर रचित श्री ज्ञानेश्वर चरित्र का आधार लिया है। गोरखनाथ के संबन्ध में अन्यत्र दसवीं शताब्दी तक का उल्लेख मिलता है पर पांगारकर की पुस्तक में ही 'शके ११९७ युवा संवत-सर, श्रावण कृष्ण ८, मध्य रात्रि' श्री ज्ञानेश्वर महाराज की जन्म-तिथि दी हुई है। इसके अनुसार उनका समय ११९७+७८=सन् १२७५ निकलता है। श्री ज्ञानेश्वर का समय इतिहास से १२७५—१२९६ ई० सिद्ध है।

पुष्टिमार्गी—"अब कर कृपा देहु वर एहू।
निज पद सरसिज सहज सनेहू"

(पृष्ठ ५०८)

क्या केवल कृपा अथवा अनुग्रह की प्रार्थना से ही पुष्टिमार्गी भावना की कल्पना कर ली गई?

'पुष्टि मार्ग ने अद्भुत और शान्त को प्रश्रय दिया'

(पृष्ठ ७३७)

इत्यादि।

सूरदास की मृत्यु तिथि संवत १६४२ इस आधार पर निर्दिष्ट की गई है कि सूर अकबरी दरबार के गायक थे। यह निर्णय पुष्ट आधार पर नहीं है।

विद्यापति काव्यालोक और वर्मा जी के इतिहास, दोनों को तीसरा स्थान देने का कारण उनका आलोचनात्मक महत्व है। पर ये दोनों ग्रन्थ अपने-अपने अभावों के कारण द्वितीय स्थान के उपयुक्त नहीं हो सकते। कहना न होगा कि सर्वाङ्ग-पूर्ण मौलिकता के क्षेत्र में-चिन्तामणि ही सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ ठहरता है।

तुलसी दर्शन, पुनर्जन्म मीमांसा हिन्दी-व्याकरण, बिहारी-दर्शन और कविवर रत्नाकर भी उत्तम ग्रन्थ हैं। 'तुलसी-दर्शन' में केवल दार्शनिक विवेचन की प्रधानता है। 'पुनर्जन्म 'मीमांसा' भी दर्शन के विभाग के लिए अधिक उपयुक्त है। 'हिन्दी-व्याकरण' में अँग्रेजी व्याकरण के अनुसार शास्त्रीय वर्गीकरण है किन्तु उसमें संशोधन की आवश्यकता है। भाषा, भाव, शैली एवं मौलिकता आदि भिन्न भिन्न दृष्टियों से उपर्युक्त चार पुस्तकों की कोटि में अन्य पुस्तकें नहीं आतीं।

५–श्री सूर्यकान्त

मेरी सम्मति में नीचे लिखी पुस्तकों ने क्रम से प्रथम, द्वितीय और तृतीय स्थान प्राप्त किया है:—

प्रथम—साहित्यालोचन, बा० श्यामसुन्दरदास

द्वितीय—हिंदी व्याकरण, पं० कामता प्रसाद

तृतीय—तिब्बत में सवा बरस, राहुल सांकृत्यायन

मेरे निर्णय की पुष्टि में निम्नलिखित कारण हैं:—

साहित्यिक सेवा, सामयिक उपयोगिता तथा गवेषणावृत्ति को ध्यान में रखते हुए मैंने अपने निर्णय में साहित्यालोचन को प्रथम, हिंदी व्याकरण को द्वितीय तथा तिब्बत में सवा बरस को तृतीय रखा है:—

(१) साहित्यालोचनः—नितांत मौलिक न होने पर भी भाव, भाषा, विषय निरूपण, शैली तथा साहित्यिक उपयोगिता की दृष्टि से साहित्यालोचन उत्कृष्ट कृति है। इस ग्रंथ ने हिंदी की उच्च श्रेणियों की पाठ-विधि में खटकने वाली एक न्यूनता को पूरा करने का सफल प्रयत्न किया है।

(२) हिन्दी व्याकरणः—किसी भाषा को वैज्ञानिक आधार शिला पर स्थापित करने के लिए सबसे अधिक आवश्यक बात उस भाषा का प्रामाणिक व्याकरण प्रस्तुत करना है। उक्त व्याकरण ने हिन्दी भाषा की इस न्यूनता को पूरा करने का सफल प्रयत्न किया है। ग्रंथ में परिवर्तन, परिवर्धन तथा संशोधन की आवश्यकता दीख पड़ने पर भी यह हिन्दी में अभी तक अपने जैसा आप है।

(३) तिब्बत में सवा बरसः—साहित्य तथा भाषा विज्ञान की दृष्टि से महत्त्वशाली न होने पर भी तिब्बत के साथ रहने वाले भारत के अतीत सांस्कृतिक संघर्ष को पुनरुद्बोधित करने की कल्याणमयी चेष्टा के रूप में यह ग्रंथ प्रशंसनीय है।

सूर्यकान्त
पंजाब यूनिवर्सिटी, लाहौर

६—श्री अमरनाथ झा

मेरी सम्मति में नीचे लिखी पुस्तकों ने क्रम से प्रथम, द्वितीय और तृतीय स्थान प्राप्त किया है:—

प्रथम—साहित्यालोचन
द्वितीय—तुलसी दर्शन
तृतीय—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास

मेरे निर्णय की पुष्टि में निम्नलिखित कारण हैं:—

(१) बाबू श्यामसुन्दर दास का 'साहित्यालोचन' हिन्दी के आलोचना-साहित्य का प्रथम और सब से प्रतिष्ठित ग्रन्थ है। इसकी मौलिकता के संबन्ध में बहुत लोगों का कहना है कि यह अँग्रेजी पुस्तकों के आधार पर लिखी गई है। सम्भव है यह प्रथम संस्करण

के लिए आक्षेप सत्य हो परन्तु जो नया परिवर्धित और संशोधित संस्करण अब प्रकाशित हुआ है उसकी उपयोगिता और विलक्षणता में कोई सन्देह नहीं है।

(२) इधर कई वर्षों से तुलसी संबन्धी तीन-चार पुस्तकें निकल आई हैं, और कुछ अंशों में सभी प्रशंसनीय हैं। पण्डित बलदेव प्रसाद मिश्र का 'तुलसी दर्शन' बड़ी योग्यता से लिखा गया है। दर्शन का ज्ञान, तुलसी की रचनाओं से पूर्ण परिचय, लिखने की शक्ति--इन गुणों के कारण यह पुस्तक आदरणीय है।

(३) हिन्दी के इतिहास का ऐसा विवेचनात्मक ग्रन्थ कोई अब तक उपलब्ध न था जैसा कि बाबू रामकुमार वर्मा की पुस्तक है। यदि १७०० से आगे का अंश भी लिख कर वर्मा जी प्रकाशित कर दें तो साहित्य का बड़ा उपकार हो। इस पुस्तक की विशेषता एक यह है कि लेखकों की रचनाओं के उदाहरण भी बहुत से इस में दे दिये गये हैं।

(४) और भी कई पुस्तकें उल्लेखनीय हैं—"बिहारी-दर्शन"; "तिब्बत में सवा वर्ष"; "चिन्तामणि"। परन्तु मेरी सम्मति में "साहित्यालोचन" के रचयिता को ही इस वर्ष का पारितोषिक मिलना चाहिये।

अमरनाथ झा

७—श्री शिवाधार पांडेय

मेरी सम्मति में नीचे लिखी पुस्तकों ने क्रम से प्रथम, द्वितीय और तृतीय स्थान प्राप्त किया है:—

प्रथम—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (रामकुमार वर्मा कृत)

द्वितीय—महाकवि चच्चा (अन्नपूर्णानन्द कृत)

तृतीय—चिन्तामणि (रामचन्द्र शुक्ल कृत)

मेरे निर्णय की पुष्टि में निम्नलिखित कारण हैं:—

(१) हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (रामकुमार वर्मा कृत)

इस ग्रन्थ में दूसरे भेजे हुए ग्रन्थों से अधिक साहित्यिक योग्यता है ।

(२) महाकवि चच्चा (अन्नपूर्णानन्द कृत)

इसमें मोटा हास्य है । मीठी चुटकियां भी हैं । "चच्चा" का चित्रण सजीव है ।

(३) चिन्तामणि (रामचन्द्र शुक्ल कृत)

निबन्धों की प्रकृति का इस ग्रन्थ में कहीं कहीं अच्छा समावेश है ।

दूसरे ग्रन्थ इन तीन ग्रन्थों की कोटि के नहीं हैं ।

इन तीन ग्रन्थों की सफलता का क्रम मैंने अपनी सम्मति के अनुसार पहले पृष्ठ पर लिख दिया है ।

शिवाधार पाण्डेय

८—श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी

मेरी सम्मति में नीचे लिखी पुस्तकों ने क्रम से प्रथम, द्वितीय और तृतीय स्थान प्राप्त किया है:—

प्रथम—हिन्दी व्याकरण

द्वितीय—चिन्तामणि

तृतीय—तिब्बत में सवा बरस

मेरे निर्णय की पुष्टि में निम्नलिखित कारण हैं :—

मैंने निर्णय करते समय पुरस्कार के नियमों को ध्यान में रखा है। इन नियमों में दो बातें विशेष रूप से उल्लेख योग्य हैं (१) पुरस्कार रचना के सम्मानार्थ दिया जायगा (रचना को उपलक्ष्य करके रचयिता के सम्मानार्थ नहीं) और (२) रचना की मौलिकता ही प्रधान विचार्य है। निर्णय के लिये आई हुई अट्ठारह पुस्तकों में सर्वाधिक श्रम साध्य और अध्ययन-पूर्ण मौलिक ग्रन्थ मुझे श्री कामता प्रसाद गुरु का "हिन्दी व्याकरण" जान पड़ा। व्याकरण जैसे विषय

के लिये सिद्धान्त स्थापन करने के लिये जिस गम्भीर अध्ययन और दिमाग़ी संयम की आवश्यकता है वह इस पुस्तक में पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। इसी लिये मेरी राय में यही पुस्तक प्रथम स्थान पाने योग्य है।

विचारों की मौलिकता की दृष्टि से श्री रामचन्द्र शुक्ल की पुस्तक चिन्तामणि बहुत महत्त्वपूर्ण है। परन्तु 'हिन्दी व्याकरण'-कार को जैसे कठोर बंधनों के भीतर से अपने सिद्धान्त स्थापित करने पड़े हैं वैसे बंधनों का सामना इस पुस्तक के रचयिता को नहीं करना पड़ा है। इसी लिये इस पुस्तक को मैं दूसरे स्थान का अधिकारी मानता हूँ।

श्री राहुल सांकृत्यायन की तिब्बत-यात्रा का प्रयत्न सिर्फ़ किसी मौजी घुमक्कड़ का प्रयत्न नहीं है। उसका एक महान् उद्देश्य है। इस यात्रा ने बहुत से प्राचीन ग्रन्थों को सुलभ किया है और भारतीय संस्कृति के अध्ययन के लिये नई सामग्री दी है। इस दृष्टि से यह यात्रा बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इस ग्रन्थ में विचारगत मौलिकता भी है। किन्तु प्रयत्न की नवीनता, उद्देश्य की महत्ता और परिणाम की साधुता की दृष्टि से इस पुस्तक का सम्मान होना चाहिये। इसी लिये मैंने इसे तीसरा स्थान दिया है।

हज़ारी प्रसाद द्विवेदी

९—श्री जनार्दन मिश्र

मेरी सम्मति में नीचे लिखी पुस्तकों ने क्रम से प्रथम, द्वितीय और तृतीय स्थान प्राप्त किया है:—

प्रथम—तिब्बत में सवा वर्ष

द्वितीय—युरोप की सुखद स्मृतियाँ

तृतीय—साहित्यालोचन

श्री मंगला प्र० पा० का जो आदर्श है उसके योग्य भेजी हुई पुस्तकों में से एक भी नहीं है।

मेरे निर्णय की पुष्टि में निम्नलिखित कारण हैं:—

(१) 'तिब्बत में सवा वर्ष' में लेखक ने भारतीय संस्कृति के

प्राचीन रूप का पता लगाने की कोशिश की और मूलस्रोत से ऐसे देश भाषा और विषयों के द्वारा भारतीय संस्कृति पर प्रकाश डालने की चेष्टा की है जिनसे प्राचीन भारत का बड़ा घनिष्ट संबन्ध रहा। इस गवेषणा के प्रसंग में उन्होंने बहुत से नये विषयों पर प्रकाश डाला है। जैसे "अतिशा" दीपंकर ज्ञान श्री की जीवनी। इस पुस्तक के ऐतिहासिक तथा पुरातत्त्व मूलक गवेषणाओं के कारण प्राचीन भारत का मूर्तिमान स्वरूप आंखों के सामने उपस्थित हो जाता है।

(२) "युरोप की सुखद स्मृतियां" को मैं दूसरा स्थान देता हूँ। युरोप की यात्रा के प्रसंग में लेखक ने युरोपीय संस्कृति की बड़ी अच्छी और सच्ची व्याख्या की है। यह हिन्दी की बहुमूल्य सम्पत्ति है।

(३) तीसरा स्थान मैं "साहित्यालोचन" को देता हूँ। इसमें लेखक ने भारतीय तथा पाश्चात्य आलोचना शास्त्र का अवलम्बन कर हिन्दी के लिये सचमुच उपादेय ग्रन्थ का निर्माण किया है। किन्तु पूर्णतया मूल ग्रन्थ नहीं होने के कारण इसे मैं पारितोषिक की दृष्टि से ऊँचा स्थान नहीं दे रहा हूँ।

जनार्दन मिश्र

१०-श्री दीनदयालु गुप्त

मेरी सम्मति में नीचे लिखी पुस्तकों ने क्रम से प्रथम, द्वितीय और तृतीय स्थान प्राप्त किया है:—

प्रथम—तुलसी-दर्शन

द्वितीय—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास

तृतीय—साहित्यालोचन

मेरे निर्णय की पुष्टि में निम्न लिखित कारण हैं :—

समालोचना, निबन्ध, व्याकरण, जीवनचरित्र, भ्रमण, यात्रा आदि भिन्न-भिन्न विषयों की पुस्तकों को एक सामान्य कसौटी पर कस कर यह कहना है कि अमुक ग्रन्थ सर्वश्रेष्ठ है, तनिक कठिन कार्य है; फिर भी विषय की गंभीरता, मौलिकता, उसके प्रतिपादन की विशेषता तथा भाषा आदि की दृष्टि से देखने पर हम कह सकते हैं

कि तुलना में अमुक ग्रन्थ सब से अधिक महत्व का है। पारितोषिक के लिये आये हुए ग्रन्थों में वैसे सभी ग्रन्थ आदरणीय हैं, परन्तु तुलना में मैंने तुलसी-दर्शन को प्रथम स्थान दिया है। इस ग्रन्थ में महात्मा तुलसीदास के सिद्धान्तों का विवेचन मौलिक और स्वतन्त्र ढंग से किया गया है। मुमकिन है कि कुछ विद्वान इस ग्रन्थ में स्थापित सिद्धान्तों से सहमत न हों और उनका ध्यान इसकी त्रुटियों की ओर भी आकृष्ट हो, जैसे संस्कृत भाषा से उद्धृत श्लोकों का हिन्दी भाषा में अनुवाद अथवा भावार्थ इस ग्रन्थ में नहीं दिया गया है आदि; फिर भी 'तुलसीमत' जैसे गम्भीर विषय पर, मेरी समझ में, य एक श्रेष्ठ स्वतन्त्र लेख है जिस पर लेखक के विस्तृत अध्ययन परिश्रम और विषय प्रतिपादन की मौलिकता की छाप प्रत्यक्ष-रूप से लगी हुई है।

'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' ग्रन्थ भी विशेषह महत्व का ग्रन्थ है। हिन्दी साहित्य के इतिहास के जितने ग्रन्थ अब तक निकले हैं, उनमें कवियों के विषय और रचनाओं के बारे में इतिहास की दृष्टि से ज्ञातव्य बातें ही अधिक दी गई हैं और कवियों की रचनाओं में व्यक्त भाव और विचारों पर विवरण कम है। पंडित रामचन्द्र शुक्ल और बाबू श्याम सुन्दर दास जी के हिन्दी साहित्य के विवेचनात्मक इतिहास ग्रन्थ उच्चकोटि के हैं। श्री रामकुमार वर्मा जी का यह हिन्दी साहित्य इतिहास ग्रन्थ केवल इतिहास कोटि में ही नहीं आता, उसमें हिन्दी के प्रमुख कवियों पर अपनी स्वतन्त्र खोज के साथ आलोचनात्मक निबन्ध भी हैं। ग्रन्थ की भाषा-शैली परिमार्जित है। विषय को प्रस्तुत करने का ढंग मौलिक और सुलझा हुआ है। मंगलाप्रसाद पारितोषिक नियमावली के नियम ५ में पारितोषिक वितरण के लिये निबन्ध—(निबन्ध, रीति, समालोचना, भाषा विज्ञान, जीवन चरित्र, भ्रमण वर्णन आदि) के अतिरिक्त इतिहास विभाग अलग दिया है। मैंने इस इतिहास ग्रन्थ को निबन्ध कोटि में ही गिना है और तुलना में इसे द्वितीय स्थान के उपयुक्त समझा है।

तृतीय स्थान में मैंने रायबहादुर श्री बाबू श्यामसुन्दरदास जी

के 'साहित्यालोचन' और परम विद्वान श्री कामताप्रसाद गुरु के 'हिन्दी व्याकरण' को रक्खा है। ये दोनों ग्रन्थ ऐसे विषयों पर लिखे गये हैं कि जिन पर हिन्दी भाषा में बहुत ही थोड़े ग्रन्थ उपलब्ध हैं। काव्य साहित्य की रीति तथा हिन्दी व्याकरण पर विस्तार से विवेचन करने वाले तो यही दो ग्रन्थ हैं। यदि लेखक के ग्रन्थ में प्रदर्शित पांडित्य, विषय की उपयोगिता और ग्रन्थ के अपने विषय पर एकाकी होने का महत्व आदि दृष्टियों से देखा जाय तो ये दोनों ग्रन्थ प्रथम और द्वितीय स्थान पाने योग्य हैं। परन्तु विषय और उसके प्रतिपादन की मौलिकता, भाषा की सरलता और शैली में प्रसादपूर्ण काव्यमयता आदि की दृष्टियों से देखने पर मुझे ये ग्रन्थ इस प्रतियोगिता में तीसरे स्थान के उपयुक्त ही जान पड़े हैं। इनमें भी मैंने अपेक्षया 'साहियालोचन' को अधिक मान दिया है।

विलम्ब के लिये क्षमा चाहता हूँ।

भवदीय
दीनदयालु गुप्त

— — —
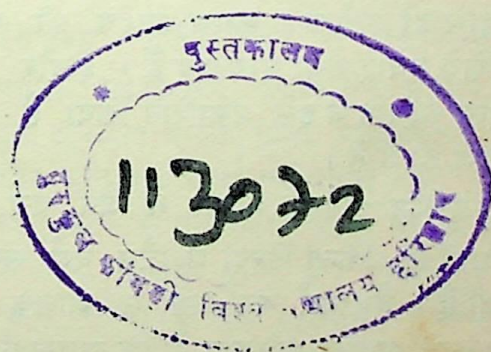
प्राप्ति स्वीकार

[लेखक—श्री जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल वैद्य, संग्रहमन्त्री]

नोट—निम्नलिखित पुस्तकें संग्रहालय में प्राप्त हुई हैं। प्रेषक महानुभावों को अनेक धन्यवाद।

मालवा में युगान्तर—यह मालवे के इतिहास का पूर्वकाल अर्थात् सन् १६९८ से १७६५ तक के समय का पहिला भाग है। इसके लेखक हैं सीतामऊ रियासत के राजकुमार डाक्टर रघुबीर सिंह एम० ए०, एल० एल० बी०। इसी का अँग्रेज़ी संस्करण लिखने पर आगरा युनिवर्सिटी ने १९३६ में आपको डाक्टर आफ़ लेटर्स की उपाधि दी थी। पुस्तक तैयार करने में लेखक ने सभी प्राप्त साधनों और ढूँढ़-खोज का उपयोग किया है। इसलिये इतिहास प्रामाणिक और पूर्ण तैयार हो सका है। प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता सर यदुनाथ सरकार एम० ए०, डी० लिट्, सी० आई ई० ने इसकी प्रामाणिकता का सर्टिफिकट दिया है और पुस्तक की भूमिका भी उन्होंने लिखी है। आशा है इसका उत्तर काल भी तैयार हो जाने पर मालवा का संपूर्ण और सच्चा इतिहास हो जावेगा। कुमार साहब को इस सफलता और परिश्रम के लिये बधाई तथा धन्यवाद हैं। इन्दौर की श्री मध्य भारत हिन्दी साहित्य समिति ने इसे प्रकाशित किया है और उसी से ४॥) में पुस्तक प्राप्त होती है।

श्रीमद्राजचन्द्र—हिन्दी प्रान्तों में जैन धर्म मानने वालों की संख्या कम नहीं है; किन्तु हिन्दी में जैन धर्म संबन्धी पुस्तकों की विपुलता नहीं है। जैन धर्म का सब से अधिक साहित्य गुजराती भाषा में है। यह आनन्द की बात है कि गुजराती से हिन्दी में जैन धर्म का साहित्य लाने का उद्योग आरम्भ हो गया है। बम्बई का परम श्रुत प्रभावक मण्डल ऐसे प्रकाशन के लिये अग्रसर हुआ है। श्रीमद्राज चन्द्र एक प्रसिद्ध महात्मा और सुलेखक हो गये हैं। महात्मा

गाँधी भी उन्हें वीतराग और विभूतिमान लिखते हैं। इस ग्रन्थ में उनके ग्रन्थों और उपदेशों का संग्रह है। उनका जीवन चरित और उनके पत्र व्यवहारादि का भी संग्रह है। अपने ग्रन्थों में उन्होंने गूढ़ तत्वों का भी ऐसी सरलता से वर्णन किया है कि उनका अनुशीलन करने वाला अवश्य धर्म का मर्म जान सकता है। हिन्दी अनुवाद भी अच्छा हुआ है। अनुवादकर्त्ता और सम्पादक श्रीयुक्त जगदीश चन्द्र शास्त्री एम० ए० हैं। जैनियों के लिये पुस्तक सर्वथा संग्रहणीय तथा जैन मत की बातें जानने की इच्छा रखने वालों के लिये भी अवलोकनीय है। दाम ६) ऊपर के मण्डल से खाराकुवां जौहरी बाज़ार बम्बई से पुस्तक प्राप्त होगी।

भक्तराज हनुमान—अंजनी कुमार हनुमान जी का इसमें संक्षिप्त जीवन चरित्र तुलसीकृत रामायण, वाल्मीकि रामायण तथा कई पुराणों के आधार पर लिखा गया है। प्रसंग प्रसंग पर कई रंगीन, कई रंग तथा एक रंग के चित्र भी दिये गये हैं। पुस्तक आकर्षक और पठनीय है। रामायण के अतिरिक्त अन्यत्र से जो प्रसंग दिये गये हैं, वे साधारण हिन्दी पाठकों को नवीन मालूम पड़ेंगे। लेखक श्रीयुक्त शान्तनु बिहारी द्विवेदी, सम्पादक श्रीयुक्त सेठ हनुमान प्रसाद जी पोद्दार। दाम ।=) पता—गीता प्रेस गोरखपुर।

सत्य प्रेमी हरिश्चन्द्र—आदर्श दानी और सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र का संक्षिप्त जीवन चरित्र कई पुरानी कथाओं के आधार पर इसमें दिया गया है। हां शुनः शुनःशेप वाली कथा अलबत्ता इसमें अलगा दी गयी है। दान और सत्य का माहात्म्य बताने तथा धर्म रक्षा के लिये पराकाष्ठा के कष्ट सहने के बाद किस उत्तम पद की प्राप्ति होती है, यह इससे अच्छी तरह मालूम होता है। लेखक पं० शान्तनु बिहारी जी द्विवेदी और सम्पादक सेठ हनुमान प्रसाद जी पोद्दार हैं। कई प्रसंगों के सुन्दर चित्रों से पुस्तक बहुत आकर्षक हो गई है। पुस्तक ।=) पांच आने में गीता प्रेस गोरखपुर से मिलती है।

श्रीभगवन्नाम कौमुदी—कोई छः सौ वर्ष पहले श्री लक्ष्मी धर

स्वामी प्रसिद्ध विद्वान हो गये हैं। उन्हीं ने इसमें भगवन्नाम की महिमा प्रतिपादित की है। इसमें भक्ति मार्ग का महत्व और भगवन्नाम स्मरण से सम्पूर्ण पापों का क्षय साथ ही वासना और प्रारब्ध का भी क्षय प्रतिपादित किया गया है। इसके तीन परिच्छेदों में से पहले में पुराणों को वेदों के समान ही बतलाकर पौराणिक वचनों का महत्व दिखाया गया है। दूसरे में यह विचार किया गया है कि नाम कीर्त्तन स्वयं ही प्रधान रूप से पाप क्षय का साधक है या किसी दूसरे पुरुषादि साधन का अंगरूप होकर? भक्ति की श्रेष्ठता बताकर नाम कीर्तन को प्रधानता दी गयी है। तीसरे परिच्छेद में कहा गया है कि एक बार के कीर्तन से प्रारब्ध भिन्न सम्पूर्ण प्राचीन पापों का नाश हो जाता है और कीर्तन की आवृत्ति से वासना का नाश होकर भविष्य में भी पापों से सम्पर्क नहीं होता तथा प्रारब्ध का भी धीरे धीरे क्षय होकर क्रमशः मुक्ति प्राप्त हो जाती है। पुस्तक महत्वपूर्ण है। पण्डित रामनारायण दत्त जी शास्त्री ने टीका भी सरल और सुबोध की है। दस आने में पुस्तक गीता प्रेस गोरखपुर से प्राप्त होगी।

रानी केतकी की कहानी—कहानी-संसार की इसे प्रथम पुस्तक समझना चाहिये। जिन दिनों हिन्दी गद्य में पुस्तक लिखना आरंभ ही हुआ था उन्हीं दिनों सैयद इंशा अल्ला खां बूढ़ियों की कहानी से ऊंचे बोल-चाल की सुथरी भाषा में अर्थात ठेठ हिन्दी में इसे लिखा था। प्रारंभिक उद्योग होने के कारण यह स्वाभाविक है कि आज कल की कलापूर्ण कहानियों के टक्कर की यह न हो; किन्तु फिर भी लेखक ने कहानी सजाने में कसर नहीं रखी। भाषा विज्ञान और कहानी के इतिहास की दृष्टि से इसका अच्छा महत्व है। काशी नागरी प्रचारणी सभा का यह उद्योग सराहनीय है। चार आने में पुस्तक सभा से ही मिलती है।

मतवाली मीरा—पण्डित तुलसी राम शर्मा दिनेश ने ३३६ A. कालवादेवी रोड बम्बई में एक मीरा मन्दिर स्थापित किया है। उसके द्वारा आप भगवद्भक्ति सम्बन्धी पुस्तकों का प्रकाशन आरंभ कर

रहे हैं। यह उसी का पहला पुष्प है। दिनेश जी ने इसे नाटक के रूप में लिखने का प्रयत्न किया है। नाट्य मन्दिर में सफलता पूर्वक खेलने योग्य यह चाहे न हो; परन्तु गिरिधर प्रेम मतवाली मीरा का भक्ति मय चरित्र अंकित करने में लेखक को अवश्य सफलता मिली है। ऊपर के पते पर पुस्तक ॥|) में मिलती है।

श्वेताश्वतरोपनिषद—उपनिषद ग्रन्थों में इसका अच्छा महत्व है। इसमें जगत्कारण मीमांसा सम्बन्धी दार्शनिक प्रश्नों की गुत्थियां हल की गयी हैं। स्वामी शंकराचार्य के भाष्य और तदनुयायी हिन्दी टीका ने पुस्तक के गूढ़तम विषयों को सरल कर दिया है। गीता प्रेस गोरखपुर ने इसे छाप कर केवल ॥|) में धार्मिकों की जिज्ञासा पूर्ति का साधन सुलभ कर दिया है।

आनन्द मय जीवन—श्रीयुक्त ठाकुर बालेश्वर प्रसाद सिंह ने प्रयाग के बाई के बाग में प्राकृतिक स्वास्थ्य गृह स्थापित किया है। उसी की ओर से स्वास्थ्य ग्रन्थ माला का प्रकाशन होता है। यह उसका तृतीय पुष्प है। इसमें दिखलाया गया है कि हम आनन्द मय जीवन किस प्रकार व्यतीत कर सकते हैं। स्वास्थ्य का ह्रास किस प्रकार और किन कारणों से होता है। पुस्तक काम की है। लेखक पं० शंकर-लाल तिवारी, सागर। पुस्तक ।=) में प्राकृतिक स्वास्थ्य सदन प्रयाग से मिलेगी।

वैदिक सन्ध्या—मैथिल समुदाय के उपयोग के लिये इस सन्ध्या पुस्तक का प्रणयन कविवर पं० इच्छालाल शर्मा ने किया और पं० रघुनाथ प्रसाद मिश्र पुरोहित जी ने सम्पादन कर मैथिल बन्धु कार्यालय अजमेर में प्रकाशित किया है। इसमें सन्ध्या की विधि और मन्त्रों के भावार्थ हिन्दी पद्य में दिये गये हैं। मूल्य –)

साहित्य सन्दर्भ—इसमें आचार्य पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी के लेखों का संग्रह छापा गया है। इसमें २० लेख संग्रहीत हुए हैं। अधिकांश समालोचनात्मक और महत्व पूर्ण हैं, कुछ में संस्कृत काव्यों की चर्चा है। सभी लेख साहित्य मर्मज्ञों के पढ़ने

सोचने और विचारने योग्य हैं। सुधा सम्पादक पण्डित दुलारेलाल भार्गव ने सम्पादन कर इसे गंगा पुस्तक माला में प्रकाशित किया है और वहीं से १।) में लखनऊ के पते पर पुस्तक मिलती है।

हिन्दी कौमुदी—पण्डित अम्बिका प्रसाद वाजपेयी चिन्तन शील व्याकरण के विचारक और लेखक हैं। आपकी शैली स्वतन्त्र और तर्क पूर्ण है। इस पुस्तक के अनुसार व्याकरण का विचार करने पर स्वतन्त्र रूप से मस्तिष्क परिचालन होता है। बारह आने में पुस्तक पण्डित तेज नारायण बाजपेयी १०२, मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट कलकत्ता से प्राप्त होती है।

कविता श्रद्धाञ्जलि—छपरा-कटरा के भारतीय साहित्य भवन में समय-समय पर जो कविता पाठ हुए हैं, इसमें उनका संग्रह है। सभी साहित्यनुरागियों को यह प्रेम-पूर्वक भेंट स्वरूप है। जिन्हें चाहिये मँगा लें।

संक्षिप्त हिन्दी व्याकरण—पण्डित कामता प्रसाद गुरु बहुत पुराने व्याकरण के पण्डित हैं। व्याकरण के सम्बन्ध में आपने बहुत कुछ सोचा-विचारा और तय किया है। आपकी शैली नागरी प्रचारिणी सभा की अनुगामिनी है। इसमें व्याकरण सम्बन्धी बहुत सी विचारपूर्ण प्रणालियों का समावेश है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा इण्डियन प्रेस प्रयाग से पुस्तक प्रकाशित हुई है और चौदह आने में वहीं से मिलती है।

प्राकृतिक विज्ञान—इसमें प्राकृतिक आहार-व्यवहार और बिना औषधियों के रोग शमन के उपाय दिये गये हैं। आरोग्य रक्षा की दृष्टि से पुस्तक महत्वपूर्ण और सब के पढ़ने योग्य है। लेखक प्राकृतिक चिकित्सक डाक्टर पी० आचार्य हैं। हिन्दी पुस्तक भण्डार हीरा बाग बम्बई नं० ४ से पुस्तक साढ़े पाँच रुपये में प्राप्त होती है। डबल क्राउन १६ पेजी के कुछ अधिक ४०० पृष्ठों की सजिल्द पुस्तक का दाम हमारी समझ में इतना बहुत अधिक है।

बन्धु भरत—पण्डित तुलसीराम शर्मा 'दिनेश' भगवद् ग्रन्थमाला

का यह दूसरा पुष्प है। यह भी नाटक के रूप में 'आदर्श बन्धु' त्यागवीर भरत जी का चरित्र-चित्रण है। पहली पुस्तक की अपेक्षा इसमें लेखक को अधिक सफलता मिली है। राम और भरत दोनों का चरित्र चित्रण उत्तम कोटि का दिखलाया गया है। पृष्ठ ३९ में "भगवती त्रिवेणी के पवित्र तटपर पितृतर्पण के समय देखी थी।" यहाँ पितृतर्पण के बदले "स्नान संकल्प" होना चाहिये। दाम ।=) पता मीरा मन्दिर कालबा देवी रोड बम्बई।

सोवियट भूमि—श्रीमान् पण्डित राहुल सांकृतायन जी एक प्रसिद्ध पर्यटक खोजी और गवेषणापूर्ण विद्वान हैं। अपनी रूस यात्रा के फलस्वरूप आपने यह पुस्तक लिखी है। सोवियट रूस के सम्बन्ध में बहुत सी भ्रान्त धारणाएँ फैलाई जाती हैं, इसके पढ़ने से भ्रांति का निरसन होकर असली रूस के विषय में सच्ची जानकारी हो सकती है। यही नहीं सन् १९१७ की क्रान्ति के बाद किस तेजी से सभी विषयों में रूस देश की कैसी उन्नति हो रही है, यह राष्ट्रीय लोगों के सोचने समझने की बात है। पुस्तक सर्वथा पठनीय और संग्रहणीय है। मूल्य ५) मिलने का पता श्री काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी है।

भूषण विमर्ष—पण्डित भगीरथ प्रसाद दीक्षित ने महाकवि भूषण के सम्बन्ध में बहुत अध्ययन किया है, बहुत खोज की है और बहुत विचार भी किया है। भूषण पर जो आक्षेप आजकल कुछ लोग करते हैं उनका उत्तर तथा अपनी खोज और विचारों का मन्थन आपने इस पुस्तक में दिया है। इस दृष्टि से यह पुस्तक बहुत महत्त्वपूर्ण है। किन्तु आप वर्षों से यह प्रतिपादित कर रहे हैं कि भूषण शिवाजी के जमाने में हुए ही नहीं वे साहू के समय में हुए हैं। इसके प्रमाण में आप कहते हैं कि शिवराज भूषण में कुछ ऐसी कविताएँ हैं जो शिवा जी के समय के अतिरिक्त साहू जी के समय की हैं। स्वयं भूषण कहते हैं कि हमने शिवराज भूषण संवत् १६३० में बनाया; परन्तु आप इस पर विश्वास नहीं करते। आप लोकनाथ कवि के इस पुराने कवित्त के

प्रमाण को भी नहीं मानते कि "भूषण निवाज्यों जैसे शिवा महाराज जू ने वारन दे बावन धरामें जस छाव हैं।" आप अपनी पुस्तकमें इन प्रवाद का भी जिक्र नहीं करते कि भूषण औरङ्गजेब के दरबार में थे और वहाँ औरंगजेब की खरी आलोचना करने के कारण वहां से उन्हें शिवाजी के दरबार में जाना पड़ा था। जो हो, आपकी आलोचना से पुराने विचारों में कुछ धक्का लगने पर भी अभी उनका निर्मूल नहीं हो सकता। जब शिवा जी से मिलकर स्वराज्य का मन्त्र पानेवाले महाराज छत्रसाल शिवाजी के समय से लेकर साहू और बाजीराव पेशवा के समय तक रह सकते हैं तब क्या शिवाजी के समय से लेकर साहू के समय तक भूषण नहीं रह सकते? संवत १७३० के बाद भी उपर्युक्त घटनाओं का लक्ष्य कर वे उदाहरण अपनी पुस्तकमें नहीं दर्ज कर सकते? भूषण और मतिराम के भाई होने की समस्या तो यों हल होती है कि भूषण मतिराम के फुफेरे भाई थे। बनपुर में भूषण का ननिहाल था। बनपुर में अब तक वत्सगोत्री तिवारियोंका घर मौजूद है। जो हो, पुस्तक उच्चश्रेणी की महत्वपूर्ण और साहित्यिकों के अवलोकन योग्य है। दीक्षित जी का परिश्रम सराहनीय है। पुस्तक २।) में सरस्वती प्रकाशन मन्दिर प्रयाग से मिलती है।

तारे—श्रीयुत रामेश्वर प्रसाद शुक्ल अञ्चलजी की एक कविता पुस्तक की प्राप्ति-स्वीकार हम कर चुके हैं। कहानी संसार में भी आपने अच्छी ख्याति प्राप्त की है। आपकी कुछ कहानियों का संग्रह "तारे" नाम से प्रकाशित हुआ है। कहानियों की भाषा शैली, चरित्र-चित्रण और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण अच्छा हुआ है। आपकी कहानियां उच्चकोटिकी और प्रायः निर्दोष हैं। एक एक कहानीमें समाज, रूढ़ि, मानव जीवन के अनाचार पूर्ण असौख्य आदि के प्रति कहीं कहीं आपने ज्वाला सी उगली है। कहानी लिखने में आपको जो उच्चकोटिकी सफलता मिली है उसके लिये हम आपको बधाई देते हैं। सब से बड़ी ख़ूबी आपकी कहानियोंमें यह है कि आपने पाप और कलमष को कहीं प्रोत्साहन नहीं दिया। सचाई के नाम पर सदाचार की हत्या नहीं की। पतितोन्मुखी स्त्रियों को समय पर आपने

सँभाल लिया है और पतिताओं का भी व्यवहार और उच्च सदाशयता दिखाकर स्त्री जाति का आपने महत्त्व बढ़ाया है। इस दृष्टि से आपका दृष्टिकोण व्यापक, उदार और सहानुभूति पूर्ण है। आप नवयुवक हैं। किन्तु आपका आदर्श प्रौढ़ों के लिये भी अपनाने की वस्तु है। मूल्य १)

हिन्दुस्तानी-मराठी शब्दकोष—पूनाकी अखिल महाराष्ट्र हिन्दी-प्रचार समिति ने यह कोष हिन्दुस्तानी शब्दों का मराठीमें अर्थ बताने वाला तैयार किया है। पांच प्रसिद्ध सम्पादकों के द्वारा यह तैयार हुआ है। कोष उत्तम और काम का है। दाम १॥) पता श्रीयुत नाना धर्माधिकारी अखिल महाराष्ट्र हिन्दी-प्रचार समिति ३७३ शनिवार पेठ, पूना।

प्रभात फेरी—श्रीयुत नरेन्द्रजी की ७७ कविताओं का इसमें संग्रह है। विविध विषयों की उत्तम कविताएं हैं। प्रकाशगृह कालाकांकर (अवध) ने प्रकाशित कर उत्तम साहित्य सेवा की है। मूल्य १।)

व्यंग कौतुक—डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के १४ मनोरंजक, परिहास पूर्ण और व्यङ्गात्मक लेखों का इसमें अनुवाद कर संग्रह किया गया है। व्यङ्ग इतने गम्भीर हैं कि कहीं परिहास नहीं होने पाया। कहीं मीठी चुटकियां हैं, कहीं ऐसा मज़ाक है जो सच्चा मालूम होता है। पुस्तक आठ आने में इण्डियन प्रेस प्रयाग से मिलती है।

भजन संग्रह-धर्मामृत—गोलेच्छा जैन ग्रन्थमाला का यह प्रथम पुष्प है। प्राचीन भक्त कवि निर्मित भजनों का इसमें संग्रह है। पण्डित बेचरदास इसके सम्पादक हैं। बारह आने में पुस्तक प्रकाशक सेठ शंकरलाल जी भानमल जी गोलेच्छा, गोलेच्छा प्रकाशक मन्दिर जोधपुर से मिलती है। पुस्तक जैनियों ही नहीं अन्य लोगों के लिये भी उपदेश देने वाली है।

कुमाऊँ का इतिहास—कूर्माञ्चल पहाड़ी देश का यह इतिहास

बहुत परिश्रम और खोज के साथ सात भागों में पण्डित बदरी दत्त जी पाण्डेय ने लिखा है। पाण्डेय जी लीडर और कैस्मोपालिटन के सम्पादक रह चुके हैं। अलमोड़ा अखबार और शक्ति के भी आप सम्पादक थे। अलमोड़ा डिस्ट्रिक्टबोर्ड के चेयरमैन और सेण्ट्रल असेम्बली के मेम्बर हैं। सम्पूर्ण प्राप्त साधनों का इसमें अच्छा उपयोग किया गया है। पहले भाग में भौगोलिक और ऐतिहासिक वर्णन, दूसरे में वैदिक और पौराणिक काल, तीसरे में कत्यूरी शासन-काल, चौथे में चन्द काल, पांचवें में गोरखाकाल, छठे में अंग्रेजी-काल और सातवें में वहां की मनुष्य जातियाँ, धर्म, रस्म रिवाज, मन्दिर आदि का वर्णन है। पाण्डेय जी को इस सफलता के लिये धन्यवाद। पुस्तक तीन रुपये में शक्ति कार्यालय देशभक्त प्रेस अलमोड़ा से मिलती है।

पिङ्गल प्रवेशिका—यह पिंगल विषयक पुस्तक ॥) में बाबू सीताराम बुकसेलर अलीगढ़ से मिलती है। बाबू प्यारे लाल वृष्णि मुख्तार इसके लेखक हैं। नये पुराने दोनों तरह के छन्दों का और उर्दू छन्दों का भी इसमें समावेश हुआ है। रस और अलंकार का भी वर्णन है। पुस्तक अच्छी है।

राष्ट्रभाषा प्रचार-सर्व संग्रह—राष्ट्रभाषा प्रचार कार्य का इसमें सम्पूर्ण दिग्दर्शन कराया गया है। हिन्दी का प्रचार किस लिये और किन उपायों से हो रहा है; इसे बतलाते हुए हिन्दी भाषा का संक्षिप्त इतिहास और हिन्दी का क्षेत्र तथा आधुनिक हिन्दी साहित्य का दिग्दर्शन हुआ है। राष्ट्रभाषा की आवश्यकता पर नेताओं के मतों का संग्रह विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं के बोलनेवालों की संख्या देकर हिन्दी साहित्य सम्मेलन और काशी नागरी प्रचारिणी सभा का परिचय दिया गया है। इसके बाद यह बतलाया गया है कि किस प्रान्त में प्रचार की दृष्टि से क्या काम हुआ और हो रहा है। श्रीमन्नारायण अग्रवाल जी का यह उद्योग स्तुत्य है। वर्धा की राष्ट्रभाषा प्रचार-समिति से दस आने में पुस्तक मिलती है।

रूस—पं० सुरेन्द्रनाथ दुबे विद्याभूषण बी० ए० प्रेम जी ने रूस देश के भौगोलिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा व्यापारिक परिचय कराने के लिये इस पुस्तक को लिखा है। रूस इस समय अपने देश का संगठन नयी विधियों से कर रहा है। उसके प्रयोगों की ओर संसार की आँखें लगी हुई हैं। ऐसे समय में इस पुस्तक की आवश्यकता थी। पुस्तक ।||) में रस्तोगी ब्रादर्स त्रिपौलिया बाज़ार जयपुर सिटी से मिलती है।

कृष्ण गीता—सत्य सन्देश के पन्द्रहवें वर्ष की यह उपहार-पुस्तक है। लेखक दरबारी लाल जी सत्यभक्त-सत्याश्रम वर्धा से बारह आने में पुस्तक प्राप्त होती है। गीता के आधार पर धर्मशास्त्र की बातें गीतों में ही इसमें कही गयी हैं। इस तरह आपने गीता के उपदेशों को सब के समझने योग्य बना दिया है।

विश्वमंच का खिलाड़ी—गोल्ड मेडलिस श्री राधाकृष्ण तोषनी-वाल (प्रफुल्ल) जी ने इसे लिखा है और अजमेर का श्री राजस्थान हिन्दी उपासना मन्दिर इसे १।।) में बेचता है। पुस्तक के डबलक्राउन १४८ पृष्ठों को देखते हुए दाम बहुत अधिक है। इसमें राजनीति, समाज-नीति और धर्मनीति सम्बन्धी ऐतिहासिक विवरण खोज और परिपूर्णता के साथ दिया गया है। पुस्तक नीति सम्बन्धी है और अच्छी है।

अंग्रेज़ हुकूमत भारत देश—यह भी तोषणीवाल जी की कृति है। संक्षेप में मुसलमानी काल की पराधीनता से लेकर मार्ग भटकने, व्यापार खोने, अँग्रेज़ों के व्यापार की नीति, राजकीय विक्षोभ आदि की बातें देकर अन्त में आशा की गयी है कि फिर भारत स्वा-धीन होगा। मूल्य तीन आना, पता ऊपर वाला।

नौकरशाही व महात्मा गांधी—विषय पुस्तक के नाम से ही प्रकट है। इसके कर्त्ता भी तोषणीवाल जी हैं। ऊपर के पते से एक आने में मिलती है।

विश्व अशान्ति, यूरोप शान्ति—इस दो पैसे की पुस्तक में तोषनीवाल जी ने यह दिखलाया है कि विश्व में अशान्ति रहते हुए यूरोप में भी शान्ति नहीं रह सकती, शान्ति के लिये महात्मा गाँधी का बताया मार्ग ही उचित है। पता ऊपर लिखा है।

जगदीश की झाँकी—विविध छन्दों में तोषनीवाल जी ने जगत्-पिता जगदीश्वर के इसमें गुणानुवाद गाये हैं। डेढ़ आने में ऊपर के पते से मिलती है।

त्रिपुरी-श्रीयुत मंगलप्रसाद विश्वकर्मा ने जबलपुर के पास त्रिपुरी प्राचीन नगरी का इसमें संक्षिप्त इतिहास लिखा है। पुस्तक सचित्र है और संक्षेप में त्रिपुरी की बातें इसमें झलका दी गयी हैं। सेठ गोविन्ददास जी ने इसकी भूमिका लिखी है। पुस्तक तीन आने में शुभचिन्तक प्रेस जबलपुर से मिलती है।

भजन भक्त विनोद—ज़िला खीरी, बड़वहा ग्राम निवासी, वत्स-गोत्री ठाकुर रतनसिंह जी ने भक्तजनों के चित्त विनोदार्थ इसमें भजन लिखे हैं। पं० शालिग्राम देव शुक्ल वैद्यशास्त्री अम्बारा पो० बिजुआ ज़िला खीरी से पुस्तक ।) में मिलती है। दाम अधिक है।

तृतीयक—तृतीयक अर्थात् अँतरा, तिजारी बुख़ार का इसमें विवेचन और निदान तथा चिकित्सा है। लेखक पं० शालिग्राम जी देव शुक्ल वैद्यशास्त्री अम्बारा पो० बिजुआ ज़िला खीरी से दो आने में मिलेगी।

हाथ की लिखावट-अहिन्दी प्रान्तों की जनता को राष्ट्रभाषा की विभिन्न लेखनशैलियों से परिचित कराने के लिये महात्मा गाँधी, बाबू राजेन्द्र प्रसाद, पं० जवाहरलाल नेहरू, श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डित आदि ४० व्यक्तियों के हस्तलेखों का संग्रह उनके विचार के साथ इसमें छापा गया है। छः आने में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा से प्राप्त होगी।

हिन्दी साहित्य पर एक दृष्टि—श्रीयुत रमणलाल जी अग्र-वाल ने वर्त्तमान हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियों पर दृष्टिपात करते हुए

यह निबन्ध लिखा है। आपका कहना है मानव समाज में सुख की ही प्रवृत्ति पायी जाती है। प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों मार्गों के सुख का विचार करते हुए संसार का अधिक आधार सांसारिक प्रवृत्ति में ही है। अतएव जन-समाज में ऐसे ही साहित्य का निर्माण होना चाहिये जिससे संसार का कल्याण हो, लोगों में उत्साह और कर्त्तव्य-जागृति हो। आपने पं० मोहनलाल महतो, श्री भगवतीचरण वर्मा श्री रामकुमार वर्मा, श्रीमती महादेवी वर्मा तथा श्री सुमित्रानन्दन-पन्त और श्री जयशंकर प्रसाद की कविताओं के उद्धरण देकर दिखाया है कि इनसे निराशा, स्वकल्याण की प्रेरणा का अभाव, अकर्मण्यता, जीवन की निस्सारता, दुःखाभ्यर्थना की प्रेरणा मिलती है। इन प्रवृत्तियों से संसार का क्या कल्याण हो सकता है? जिस साहित्य से स्वतन्त्रता प्राप्ति की समस्या सुलझे, सामाजिक एवं आर्थिक प्रश्नों का कल्याणकारी ढंग प्रकट हो और वह मानव हृदय को इस प्रकार प्रभावित करे कि वह आप ही आप बिना मस्तिष्क पर ज़ोर दिये उक्त समस्या को हल करने की ओर प्रयत्नशील हो जाय। वही साहित्य अभीष्ट है। हम आपके विचार से सहमत हैं। वर्तमान लेखक और कवियों को इस समय अधिकांश ऐसे ही प्रयत्न करने चाहिये जिनसे देश के उत्थान और स्वतन्त्रता प्राप्ति में सहायता मिले। किन्तु भिन्न रुचि और हार्दिक उमंगों को क्या कीजियेगा? निबन्ध दो आने में आप से १९१ R|4 Cavel, कालवा देवी बम्बई से प्राप्त होगा।

बाबू जयशंकर प्रसाद की पुस्तकें—स्वर्गीय बाबू जयशंकर प्रसाद जी की निम्नलिखित पुस्तकें पण्डित वाचस्पति पाठक जी की कृपा और लीडर प्रेस की उदारता से प्राप्त हुई हैं। इनकी धन्य-वाद सहित प्राप्ति हम स्वीकार करते हैं।

(१) तितली— सामाजिक उपन्यास है। ग्रामों के भारतीय समाज का चित्रण इसमें बड़ी ख़ूबी के साथ किया गया है। वर्णन सजीव है, और काल्पनिक होने पर भी सच्चा मालूम होता है। मूल्य २।।)

(२) कंकाल—यह भी सामाजिक उपन्यास है और इतना प्रसिद्ध है कि इसका परिचय कराना व्यर्थ है। इसमें समाज का खोखलापन अच्छी तरह दिखाया है। जिससे मालूम पड़ता है कि समाज के कुछ आदर्श पात्रों में भी पतन हो सकता है और समाज के कुछ तिरस्कृतों में भी महत्ता छिपी रह सकती है। मूल्य ३)

(३) अकाश दीप—इसमें प्रसाद जी की १९ कहानियों का संग्रह है। प्रत्येक कहानी अनूठे भावों और अनूठे चरित्र-चित्रण से पूर्ण है। आपका प्रकृति निरीक्षण भी अनूठा ही है। रहस्यवृत्तियां और हृदय की छिपी हुई भावनाएँ इनमें अच्छी तरह प्रस्फुटित हुई हैं। दाम १॥)

(४) राज्य श्री—कान्यकुब्जाधिपति की महारानी और उनके भाई हर्षवर्धन का चरित नाटक रूप में लिखा गया है। चीनी यात्री सुएनच्वांग के वर्णन और वाणभट्ट के हर्ष चरित्र के आधार पर यह लिखा गया है। पुस्तक छोटी ही है किन्तु घटना और विवरण संक्षेप में आ गया है। आरम्भिक भूमिका में ऐतिहासिक बातें और भी खोल दी गयी हैं। नाटक में जो गीत आये हैं अन्त में उनकी स्वरलिपि भी दे दी गयी है। प्रसाद जी की यह प्रथम नाटक-कृति है। मूल्य ॥=)

(५) ध्रुव स्वामिनी—यह भी प्रसाद जी की नाटक रचना है। द्वितीय विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त ने ध्रुव स्वामिनी नामक अपने भाई गुप्तराज की राजमहिषी की रक्षा की थी और फिर उसके साथ चन्द्रगुप्त का पुनर्विवाह हुआ था। इसी ऐतिहासिक घटना को लेकर इस नाटक की रचना हुई है। नाटक लिखने में प्रसाद जी की कुशलता सर्वश्रुत है। मूल्य ॥=)

(६) लहर—प्रसाद जी की ६५ स्फुट कविताओं का यह संग्रह है। प्रकाशक की ओर से कहा गया है कि कवि के नाते प्रसाद जी आधुनिक कविता शैली के निर्माता माने जाते हैं। अतः साहित्य-क्षेत्र में यह संग्रह यदि अपना विशेष गौरव स्थापित करे तो हमें आश्चर्य न होगा। क्योंकि अनेक दृष्टियों से यह संग्रह कविता मर्मज्ञों

को अपनी ओर आग्रह पूर्वक देखने के लिये बाध्य करेगा। मूल्य १)

(७) करुणालय—यह दृश्य नाटक गीतिकाव्य है। प्रसिद्ध सत्यवादी महाराज हरिश्चन्द्र का इसमें कथानक है। अतुकान्त मात्रिक छन्द में कविता की गयी है। मूल्य ।)

(८) प्रेम पथिक—यह भी तुकान्त विहीन एक लघु काव्य है। छोटे काव्य में अच्छे विचारों का यथेच्छ समावेश हो पाया है। मूल्य ।=)

(९) महाराणा का महत्व—महाराणा प्रतापसिंह पर यह लघु काव्य लिखा गया है। अकबर के सेनापति खानखाना रहीमखां की बेगम को उसके रक्षक वीरों के साथ युद्ध में जीत कर कुमार अमरसिंह ने क़ैद किया था। इस पर स्त्री-जाति के प्रति आदर प्रकट करते हुए महाराणा ने जो उदार भाव प्रकट किये हैं वह महत्वपूर्ण घटना प्रसाद जी की कविता से और भी अधिक महत्वपूर्ण हो गयी है। दाम ।=)

प्रसाद जी की सब पुस्तकें भारतीभण्डार लीडर प्रेस, प्रयाग से मिलती हैं।

लाल पोथी—आजकल बेसिक ट्रेनिंग के ढंग पर शिक्षा देने पर ज़ोर दिया जा रहा है। डाक्टर पी० आचार्य ने उसी ढंग का अवलम्बन कर अक्षर ज्ञान और हिन्दी शिक्षा देने के लिये इसकी रचना की है। ढंग अच्छा है सादी बातों और सरल शब्दों में पढ़ने का अभ्यास हो सकता है। अभी इसके दो भाग हमारे सामने हैं। प्रत्येक का दाम =) है। पता लाल मन्दिर हीराबाग बम्बई नं० ४।

राष्ट्रभाषा की पोथियाँ—राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा ने राष्ट्रभाषा की शिक्षा के लिये चार पोथियाँ तैयार की हैं। पहली पुस्तक राष्ट्रभाषा की प्रारम्भिक बोधनी नाम की है। जिसमें हिन्दी के अक्षरज्ञान और छोटे-छोटे वाक्य बनाने और पढ़ने का अभ्यास हो सकता है। मूल्य =), दूसरी राष्ट्रभाषा की पहली पुस्तक है। छोटे-

छोटे पाठ, सरल शब्द और उपदेश जनक वर्णन के कारण पुस्तक सुबोधगम्य है। मूल्य ।), तीसरी पोथी राष्ट्रभाषा की दूसरी पुस्तक है। शिक्षा के ढंग में क्रमशः उन्नति कर इसकी रचना हुई है। मूल्य ।-) चौथी पोथी राष्ट्रभाषा की तीसरी पुस्तक है। इसमें अक्षर छोटे, पाठ हलके; बातें महत्वपूर्ण हैं। जिनमें अहिन्दी प्रान्तों की जनता की आवश्यकताओं और कठिनाइयों का ख्याल रखा गया है। मूल्य ।=)। इनकी रचना पं० रामानन्द जी और पण्डित हरिहर शर्मा जी के द्वारा हुई है और शैली पर प्रभाव काका कालेलकर जी का पड़ा है। जिसके कारण परीक्षा-परीक्‍षा हो गयी है, बम्बई-बम्‍बई बन गयी है।

कहानी संग्रह—वर्धा की राष्ट्रभाषा प्रचार समिति ने तीन भागों में कहानी संग्रह छपवाया है। पहले भाग का संग्रह पण्डित हरिहर शर्मा श्री मुरलीधर सबनीसने किया है और पं० हृषीकेश शर्मा और पं० रामेश्वर दयालु दुबे ने सहायता पहुँचायी है। इसमें छः कहानियाँ सुदर्शन, जयशंकर प्रसाद, गिरिजा कुमार, रामननेश, जाकिर हुसेन और राजगोपालाचार्य की हैं। मूल्य ।) कहानी संग्रह के दूसरे भाग का संग्रह भी उसी तरह हुआ है। इसमें सात कहानियाँ जैनेन्द्र कुमार, भगवती प्रसाद, सुदर्शन, वृन्दावन लाल, जयशंकर प्रसाद, प्रेम चन्द और विश्वम्भर नाथ की हैं। दाम ।=) तीसरे भाग के भी संग्रहकर्ता और सहायक वे ही हैं। इसमें ऊँचे दर्जे की १२ कहानियाँ जयशङ्कर प्रसाद, भगवती चरण, सुदर्शन अज्ञेप, राजगोपालाचार्य, प्रेमचन्द, विश्वम्भरनाथ, रमरग लाल, शरच्चन्द्र, सियारामगुप्त, वामन कृष्ण चोरघटे और पण्डित बेचन शर्मा की हैं। मूल्य ॥)

गुलदस्ता—वर्धा की राष्ट्रभाषा प्रचार समिति ने कविताओं का संग्रह कर तीन गुलदस्ते बनाये हैं। पहले गुलदस्ते में रामनरेश त्रिपाठी, गया प्रसाद शुक्ल, वासित विस्वानी, अयोध्या सिंह उपाध्याय, मैथिली शरण गुप्त, सुभद्रा कुमारी चौहान और डाक्टर

मुहम्मद अकबाल की ११ कविताओं का संग्रह है। मूल्य ।) दूसरे गुलदस्ते में सुप्रसिद्ध कवियों की ३० कविताएँ हैं। अन्त में कवियों का परिचय भी दे दिया गया है। दाम ।-) तीसरे गुलदस्ते में कबीर, सूर, तुलसी, मीराबाई और रहीम के कुछ पुराने ढंग के काव्य और १५ आधुनिक कवियों के नये ढंग के पद्य हैं। अन्त में मीर, नज़ीर, ज़ौक़, ग़ालिब, हाली, अकबरत्त, चकबस, इकबाल, अजित सिंह, फलक, भुवनेश्वर दत्त आदि के उर्दू पद्य और कवियों की जीवनी, कविता का परिचय और कठिन शब्दों के शब्दार्थ हैं। दाम ॥)

निरतिवाद—वर्धा में सत्य समाज नाम की एक संस्था स्थापित है। इस संस्था की २१ सन्देश या योगों का इसमें भाष्य किया गया है। भारतीय दृष्टि से समाजवाद का क्या स्वरूप हो सकता है। इसके द्वारा एक नये ढंग की साफ़ और व्यावहारिक योजना धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक क्षेत्रों के योग्य रखी गयी है। समाज प्रस्तावों पर गम्भीरता पूर्वक विचार और मनन की आवश्यकता है। उसकी सब सामग्री इसमें मौजूद है। इसके प्रणेता श्रीयुत दरबारीलाल जी सत्यभक्त कुलपति सत्याश्रम वर्धा हैं। मूल्य ।=) है।

भावनागीत—यह भी वर्धा के सत्य समाज की ओर से प्रकाशित और श्री दरबारीलाल जी द्वारा प्रणीत है। इसमें समाज में प्रयुक्त होने वाले गीत, सत्य समाज के संघटना सूचक नियमादि दर्ज हैं। दो पैसे में समाज से मिलती है।

विवाह पद्धति—यह भी सत्य समाज की ओर से सर्व धर्मसम-भावी नवीन विवाह पद्धति बनाने वाली चार पैसे की पुस्तक श्री दरबारीलाल जी सत्यभक्त द्वारा लिखी गयी है। इसमें कन्याकाल से कुमारी या विधवा दुलहिन तक लिया गया है। दहेज की निन्दा की गयी है और वर पक्ष तथा कन्या पक्ष दोनों को समान मानने पर ज़ोर दिया गया है, इसके अनुसार विवाह किसी भी ऋतु और समय में हो सकता है। वर और कन्या की नये ढंग की प्रतिज्ञाएँ

और सप्तपदी में से प्रत्येक पद में दोनों की ओर से कुछ शर्तें दी गयी हैं।

सुखद संगीत—देहात सुधार पुस्तकमाला का यह एक पुष्प है। इसमें स्कूलों में गाने योग्य उत्साहवर्धक गीत दिये गये हैं। पुस्तक पांच अध्यायों में विभक्त है। गीत बढ़िया हैं। संग्रहकर्त्ता पं० भगवान दयाल अग्निहोत्री और बाबू रामकुमार अग्रवाल हैं। पुस्तक चार आने में गुप्ता ब्रादर्स मण्डी धनौरा, मुरादाबाद से मिलती है।

ग्रामसुधार की लहर—श्रीयुत पृथ्वीसिंह प्रेमी दोघट, मेरठ ने इसमें ग्रामसुधार सम्बन्धी बातें देहाती भाषा और देहाती तर्ज़ में गीतों के रूप में लिखी हैं। पुस्तक अच्छी है। चार आने में पं० उमादत्त शर्मा वैद्य परीक्षित गढ़, मेरठ से मिलती है।

चारुचरित माला—यह माला का प्रथम भाग है। इसमें (१) बाबू गंगापति सिंह जी, (२) कविशेखर प्रो० बदरीनाथ झा (३) पुराणभूषण सीताराम झा (४) बा० लक्ष्मीपति सिंह और (५) बाबू जानकी नन्दन सिंह जी का संक्षिप्त जीवनचरित्र दिया गया है। पुस्तक डेढ़ आने में मैथिली हिन्दी साहित्य प्रकाशन विभाग मैथिल बन्धु कार्यालय अजमेर से मिलती है।

प्रताप समीक्षा—श्रीयुत प्रेमनारायण टण्डन जी ने पण्डित प्रतापनारायण मिश्र के चुने हुए निबन्ध और उनकी जीवनी साहित्यिक आलोचना के साथ दी है। टण्डन जी का यह काम बहुत प्रशंसनीय और स्वागतयोग्य हुआ है। पुस्तक बारह आने में साहित्य-रत्न भण्डार सिविल लाइन आगरा से मिलती है।

भारतीय इतिहास की बालपोथी—इसे बालकों के पढ़ने योग्य सहज, सुबोध और सच्चा इतिहास हिन्दू मुसलिम वैर-विरोध के अनुचित बीज से रहित इतिहास पुस्तक कह सकते हैं। इसमें घटनाओं का बाहुल्य नहीं किन्तु नायक के चरित्र के रूप में वीर गाथाएँ हैं। इसमें कुछ प्राचीन और अधिकांश ऐतिहासिक नायक

और वीर स्त्रियों की गाथाएँ हैं। पुस्तक स्कूलों में चलाने योग्य और सर्वसाधारण स्त्री पुरुषों के पढ़ने योग्य है। इसके लेखक श्रीयुत परिपूर्णानन्दजी हैं। पुस्तक १।।) में पुस्तक भण्डार लहरिया सराय दरभंगा से मिलती है।

आबारे की यूरोप यात्रा—डा० सत्य नारायण पी० एच० डी० ने अपनी यूरोप यात्रा पर यह पुस्तक लिखी है। पुस्तक मनोरंजक और काम की है। पढ़ने में उपन्यास का सा आनन्द आता है। अनुभव का पुट भी मौजूद है। मूल्य २।।) मिलने का पता पुस्तक भण्डार लहरिया सराय।

लेखमणि माला—पं० अक्षयवट मिश्र बिहार के पुराने कवि और लेखक हैं। उन्हीं के लेखों और कविताओं का इसमें संग्रह है। लेख अपने ढंग के बढ़िया हैं। पुस्तक एक रुपये में पुस्तक भण्डार लहरिया सराय से मिलती है।

आत्म चरित चारू—पण्डित अक्षयवट मिश्र जी ने अपना जीवन-चरित्र गद्य-पद्य में तैयार किया है। ढंग निराला और कौतूहल-जनक है। पुस्तक १।।) में पुस्तक भण्डार लहरिया सराय से मिलेगी।

जम्बू स्वामी चरित्र—पुस्तक जैन धर्म सम्बन्धी है। हिन्दी में जैन धर्म सम्बन्धी पुस्तकों की कमी है, इस दृष्टि से इस पुस्तक का प्रकाशन स्वागत योग्य है। पण्डित राजमल्ल विरचित श्री जम्बू स्वामी का इसमें चरित वर्णन है श्रीमान ब्रह्मचारी शीतल प्रसाद ने टीका की है। अकबर के दरबार में जैन भट्टारक भी रहते थे, उस समय का भी कुछ प्रकाश इसमें है। पुस्तक अच्छी है और १।) में श्रीयुत मूलचन्द किशनदास कापड़िया, दिगम्बर जैन पुस्तकालय, सूरत से मिलेगी।

निसर्ग—श्रीमती होमवती देवी ने मचलते हुए भावों को सहेज कर यह सफल कहानियाँ लिखी हैं। आपके विचार से जीवन स्वयं एक कहानी है और वह हृदय की वस्तु न होकर केवल एक अनुभव और मस्तिष्क की सहायता से चित्रित किया हुआ जीवन की किसी विशेष घटना से सम्बन्धित एक चित्र है। इसमें आपकी ११ कहानियाँ

विविध भावों को सूचित करने वाली संगृहीत हैं। पुस्तक एक रुपये में साहित्य रत्न भण्डार सिविल लाइंस आगरा से मिलेगी।

पुरुषोत्तम—भगवद् ग्रन्थमाला का यह तीसरा पुष्प है। श्रीयुत तुलसीराम जी शर्मा दिनेश ने काव्य रूप में भगवान श्रीकृष्ण की जीवनगाथा परिमार्जित ढंग से लिखी है। काव्य अच्छा है दो रुपये में आपसे मीरा मन्दिर ३३६ ए० कालबा देवी रोड बम्बई नं० २ से मिलेगी।

भवानी दयालु सन्यासी—दक्षिण अफ्रिका के भारतीय सन्यासी भवानी दयालु जी का अंग्रेज़ी में लिखा हुआ यह जीवन-चरित्र है। लेखक हैं बाबू राम नारायण अग्रवाल एम० ए० १।।।) में पुस्तक दी इण्डियन कलोनियल असोसियेशन अजीतमल, इटावा से प्राप्त होती है। दक्षिण अफ्रिका की सब हलचलों का भी इससे पता लगता है।

सत्य संगीत—वर्धा सन्यास समाज से प्रकाशित इस पुस्तक में सत्य ब्रह्म, अहिंसा, महात्मा बुद्ध, महात्मा ईसा, महात्मा कृष्ण, उद्धारकात्मा आदि ७८ विषयों पर कविता बद्ध विचार है। इसके भी लेखक श्रीयुत दरबारीलाल जी सत्यभक्त हैं। उन्हीं से ।।≈) में पुस्तक मिलती है।

कृष्ण गीता—भगवान कृष्ण के गीता वाले उपदेशों का इसमें छन्दोबद्ध विवेचन है। श्रीयुत दरबारीलाल सत्यभक्त, सत्याश्रम वर्धा से बारह आने में मिलती है।

सुखी जीवन—ग्रामोत्थान सम्बन्धी विषयों से पूर्ण सुखी जीवन बनाने वाले उपदेशों, नियमों तथा अन्य व्यवहारिक बातों का इसमें समावेश है। जीवन सुधार में पुस्तक बहुत सहायक हो सकती है। लेखक हैं बाबू देवी प्रसाद श्रीवास्तव एम० ए०, एल-एल० बी० शिक्षक ग्राम सुधार शिक्षा केन्द्र कानपुर। डेढ़ रुपये में पुस्तक बाबू राम प्रसाद सिन्हा, पटकापुर, कानपुर से मिलती है।

हिन्दू धर्मोपदेशिका—पण्डित गोपाल शास्त्री दर्शन केसरी ने

धर्म सम्बन्धी धर्म के सामान्य स्वरूप, श्रुति स्वरूप निरूपण, वेदों के ज्ञान काण्ड, मन्वादि धर्म शास्त्र, इतिहास पुराण, ईश्वर विज्ञान, यज्ञ विज्ञान, श्राद्ध तत्व वर्णाश्रम विज्ञान आदि ३७ विषयों का परिचय कराया है पुस्तक ।≈) में पण्डित रघुनाथ प्रसाद त्रिवेदी सञ्चालक पराशर ब्रह्मचर्याश्रम बलिया से प्राप्त होगी।

विनीता—श्रीयुत जगदीश शरण मिश्र की लिखी और जगदीश उपन्यास माला कार्यालय गड़रिया मुहाल कानपुर की प्रकाशित ।।।) दाम की यह उपन्यास पुस्तक है। छः फार्म की पुस्तक का दाम ।।।) अधिक मालूम पड़ता है। उपन्यास मनोरञ्जक और अच्छा है। एक नवयुवक के हृदय में कैसी भंगुर और चलविल विचारलहरी उठती है इसका भी अच्छा दिग्दर्शन है।

मन्दाकिनी—बड़े भाई की बाल-विधवा साली मन्दाकिनी और मन्दाकिनी के बहनोई के भाई आदित्य का कथानक ही इसका आधार है। आदित्य मन्दाकिनी को चाहता है मन्दाकिनी भी चाहती तो है; परन्तु विधवा धर्म के विचार से आत्मसंयम की पराकाष्ठा दिखाती है। पुस्तक भर में इन्हीं दोनों के संवाद या एकान्त विचारधारा की ही विशेषता है। किन्तु विचारधारा स्वाभाविक है, मनोवैज्ञानिक है। यों तो पुस्तक न उपन्यास है न कहानी किन्तु दोनों है। साढ़े छः फार्म की पुस्तक का दाम १) अधिक मालूम पड़ता है। लेखक पं० जगदीश शरण मिश्र औ मिलने का पता जगदीश उपन्यास माला गड़रिया मुहाल कानपुर है।

कविता तरंग—चौधरी श्री रघुवरदयालु जी ने शृंगार, भक्ति और करुणारस के चुने हुए, छन्द और पद इसमें संग्रह किये हैं। उपदेश जनक पद्य भी अच्छे हैं। पुस्तक आप से फाजिलका ज़िला फीरोज़पुर के पते पर १) में मिलती है।

गीता तत्वाङ्क—गोरखपुर के कल्याण मासिक पत्र का यह विशेषाङ्क है। गीता के तत्वों को लेकर इसमें बड़े बड़े धुरन्धर विद्वानों के विचारपूर्ण लेख दिये गये हैं। गीता पर भाष्य करनेवाले आचार्यों

के चित्र और उनके रहस्यों पर भी प्रकाश डाला गया है। लेखों से सम्बन्ध रखने वाले अन्य कितने ही चित्र इसमें दिये गये हैं। डबल क्राउन अठपेजी साइज़ के १०५६ पृष्ठों का यह बृहत् विशेषाङ्क है। विशेषाङ्क के तीन भाग होंगे इनका दाम ही ४) है किन्तु जो ४≡) भेजकर ग्राहक बनेंगे उन्हें इन अंकों के सिवाय साल भर के कल्याण के अंक मिलेंगे।

ज्योति—मध्यप्रदेश के बैतूल ज़िले की डिस्ट्रिक्ट कौंसिल की ओर से इस नाम की एक मासिक पत्रिका निकलने लगी है। सम्पादक हैं पण्डित राम शंकर मिश्र वकील। लेख अच्छे आ रहे हैं। सम्मेलन की परीक्षाओं के लिये भी यह पत्रिका ज़िले में अच्छा उद्योग कर रही है। हम पत्रिका की सफलता चाहते हैं। वार्षिक मूल्य दो रुपये।

श्री बालकृष्ण पाण्डेय, प्रिंसिपल, कान्यकुब्ज कालेज, लखनऊ द्वारा प्राप्त हस्तलिखित ग्रन्थः—

(१) तुलसीकृत विनय पत्रिका।
(२) ,, गीतावली।
(३) ,, बालकाण्ड।
(४) ,, अरण्य काण्ड से उत्तर काण्ड तक।

सूर्य नारायण दास बी० ए०, कटक द्वारा प्राप्त ताड़ पत्र पर हस्तलिखित ग्रन्थ :—

(१) सिंहासन बत्तीसी (उड़िया भाषा में)।
(२) सारस्वत व्याकरण के कुछ भाग।

प्रेषकों को इस कृपा के लिए अनेक धन्यवाद।

संग्रह मंत्री

———

स्थायी समिति का चतुर्थ अधिवेशन

स्थायी समिति का चतुर्थ अधिवेशन भाद्रपद सौर ११, सं० ९६ तदनुसार ता० २७-८-३९ को सम्मेलन कार्यालय में श्री पुरुषोत्तम दास जी टंडन के सभापतित्व में हुआ। गत अधिवेशन की कार्यवाही स्वीकृत हो जाने के अनन्तर :—

प्रधान मंत्री ने स्वागत समिति द्वारा प्राप्त कार्यक्रम तथा लेखों की विषय सूची उपस्थित की जो निम्नलिखित रूप में स्वीकृत हुई।

लेखन माला सूची

साहित्य

१—हिन्दी में शिशु साहित्य
२—हिन्दी में बाल साहित्य
३—हिन्दी में स्त्रियोपयोगी साहित्य
४—प्रयुक्त संस्कृत तथा विदेशी शब्दों के लिंग
५—(क) राष्ट्रभाषा का रूप }
(ख) राष्ट्र लिपि का रूप } यह विषय राष्ट्रभाषा परिषद् में रखे जायँ
६—हिन्दी का भारतीय संस्कृति से सम्बन्ध
७—खड़ी बोली
८—वर्त्तमान हिन्दी कविता का दृष्टिकोण
९—हिन्दी में छायावादी कविता
१०—छायावादी कविता का विकृत रूप
११—हिन्दी और हिन्दुस्तानी में भेद
१२—हिन्दी साहित्य में उपन्यास का विकास
१३—वर्त्तमान हिन्दी साहित्य और कहानियाँ
१४—हिन्दी के दैनिक पत्र
१५—हिन्दी के साप्ताहिक पत्र

१६—हिन्दी के मासिक पत्र
१७—हिन्दी में यथार्थवाद का प्रयोग
१८—हिन्दी शब्दों में यथार्थवाद का प्रयोग
१९—हिन्दी साहित्य पर राजनीति का प्रभाव
२०—हिन्दी कविता और निराशावाद
२१—हिन्दी में अनुवाद
२२—हिन्दी भाषा पर अँग्रेजी का प्रभाव
२३—हिन्दी साहित्य की प्रगति का सिंहावलोकन
२४—वर्त्तमान हिन्दी गद्य शैली
२५—विदेशी शब्दों का हिन्दी में समावेश
२६—चलचित्र और हिन्दी
२७—हिन्दी साहित्य में अन्तर्प्रान्तीय सहयोगिता
२८—साहित्य में प्रगतिशीलता
२९—ब्रजभाषा-भूत, वर्त्तमान और भविष्य
३०—छायावाद का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव
३१—हिन्दी साहित्य पर वर्त्तमान राजनीतिक और सामाजिक प्रभाव
३२—हिन्दी में अलंकार
३३—हिन्दी के नाटकों का भविष्य या हिन्दी नाटकों की प्रगति
३४—विज्ञान की वृद्धि का हिन्दी पर प्रभाव
३५—हिन्दी में रीतिशास्त्र की उपेक्षा
३६—हिन्दी में अध्यात्मवाद या दार्शनिकता
३७—भूषण कवि
३८—काशी नागरी प्रचारिणी सभा की हिन्दी सेवा

दर्शन

१—हिन्दी में दार्शनिक ग्रन्थों की कमी
२—हिन्दी काव्य पर दार्शनिक प्रभाव

३—हिन्दी काव्य और रहस्यवाद
४—निगुर्णवाद और हिन्दी काव्य
५—कबीर का हिन्दी समाज पर प्रभाव
६—हिन्दी में भक्तिधारा का महत्त्व
७—हिन्दी कविता में अध्यात्मवाद
८—नैराश्यवाद की ओर हिन्दी कविता का झुकाव और उसका प्रतिफल
९—रस की दार्शनिक भित्ति
१०—प्रकृतिवाद और हिन्दी साहित्य
११—कला और उपयोगितावाद
१२—कला-कला के लिए
१३—साहित्य में सौन्दर्य
१४—कला और साहित्य
१५—हिन्दी में अध्यात्मवाद या दार्शनिकता
१६—हिन्दी साहित्य और कर्त्तव्यवाद (Ethies)
१७—हिन्दी साहित्य पर पाश्चात्य दर्शन का प्रभाव
१८—हिन्दी साहित्य पर मनोविश्लेषण का प्रभाव
१९—हिन्दी का दार्शनिक साहित्य
२०—भारत की वर्त्तमान दार्शनिक समस्याएँ

विज्ञान

१—हिन्दी में वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द
२—हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य का अभाव
३—आयुर्वेद में नयी खोज
४—पश्चिमीय चिकित्सा प्रणाली की प्रगति
५—नई विद्युत किरणें
६—भारतीय फल और विटैमिन
७—भारत में सिंथेटिक सुगंधित वस्तुओं के उद्योग का क्षेत्र
८—भारतीय वनस्पतियों से रंगों के बनाने का उद्योग

९ – स्वास्थ्य और खाद्य पदार्थ
१०—हिन्दी में खेती-बारी पर पुस्तकें
११—खेती-बारी पर देशी कहावतें और उनकी वैज्ञानिक सत्यता
१२—वनस्पति घी का खाद्य मूल्य
१३—भूगर्भ शास्त्र
१४—वनस्पति शास्त्र
१५—प्राणी शास्त्र
१६— मनोविज्ञान शास्त्र
१७—इंजीनीयरिंग
१८—अंक शास्त्र
१९—कवि समय में वैज्ञानिक सत्यों की खोज

इतिहास

१—हिन्दी में ऐतिहासिक ग्रन्थों की खोज
२—हिन्दी प्रेमी भारत के मुसलमान शासक
३—मध्यकालीन युग में हिन्दी की प्रगति
४—हिन्दी और मध्यकालीन युग में सामाजिक जागृति
५—भारतीय मुद्राशास्त्र में हिन्दी का स्थान
६— हिन्दी और पुरातत्त्व, शिलालेख, वस्तुशास्त्र, इत्यादि
७—हिन्दी में कला साहित्य
८—ब्रिटिश शासन का नागरी लिपि और हिन्दी पर प्रभाव
९—हिन्दी के चारण काव्य तथा इतिहास
१०—रासो की प्रामाणिकता
११—पृथ्वीराज रासो में इतिहास की सामग्री
१२– कांग्रेस तथा स्वराज्य आन्दोलन और हिन्दी
१३—हिन्दी में राजनीति शब्दावली } समाज शास्त्र परिषद में जाय
१४—आर्य समाज और हिन्दी
१५—हिन्दी में साम्यवाद

१६—अन्तर्राष्ट्रीय साहित्य में हिन्दी का स्थान
१७—वर्त्तमान हिन्दी और विश्व साहित्य
१८—विश्वविद्यालयों में हिन्दी का इतिहास, अर्थ शास्त्र, राजनीति की पुस्तकें
१९—हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का इतिहास

अधिवेशन में प्रतिनिधि भेजने के लिए अन्य संस्थाओं को अधिकार देने के संबन्ध में निश्चय हुआ कि प्रत्येक भारतीय विश्वविद्यालय को दो प्रतिनिधि तथा ऐसे प्रान्तों के कालेजों को जहाँ हिन्दी मातृभाषा है एक एक प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दिया जाय।

बाबूराम सक्सेना
एम० ए०, डी० लिट्०,
प्रधान मन्त्री

सम्पादकीय दृष्टिकोण

इति—

आज साहित्य मंत्री के पद से कार्य-समाप्ति का अन्तिम दिन है। इस क्षण मेरे समक्ष गत तीन वर्षों के अच्छे और बुरे दिन अपने उल्लास और संघर्ष को लेकर आ रहे हैं। मैंने जो कुछ भी किया, सच्चे हृदय को लेकर किया और जब साहित्य मंत्री का कार्य-भार मैं दूसरे हाथों में सौंपने जा रहा हूँ, तब यही मुझे संतोष है। मुझे इस बात का विश्वास है कि सम्मेलन ही एक ऐसी अखिल भारतीय संस्था है जिसके द्वारा भाषा और साहित्य का स्वर्ण-भविष्य अपना निर्माण कर सकेगा। ऐसी परिस्थिति में सम्मेलन के प्रत्येक कार्य-कर्ता के सामने बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है। उसके हाथों में साहित्य-सृजन की शक्ति-सम्पन्नता है। यदि उसका दुरुपयोग होता है तो वह समस्त हिन्दी भाषियों के समक्ष अपराधी है। इन्हीं भावनाओं से प्रेरित होकर मैंने गत तीन वर्षों में साहित्य मंत्री के पद पर सेवा-कार्य किया है। मुझे हार्दिक दुःख है कि मेरे पास समय और शक्ति की वैसी मात्रा नहीं थी जैसी मैं चाहता था। अपनी परिमित शक्तियों से लगभग डेढ़ दर्जन नवीन पुस्तकों का प्रकाशन और सम्मेलन पत्रिका का नियमित सम्पादन ही मैं आपके सामने उपस्थित कर सकता हूँ। मेरा ऐसा विश्वास है कि सम्मेलन पत्रिका हिन्दी साहित्य की पथप्रदर्शिका बने और साहित्य-विभाग समस्त हिन्दी साहित्य का शक्ति केन्द्र हो जिससे साहित्य की सद्प्रवृत्तियों का उदय हो और दुष्प्रवृत्तियों का विनाश। आशा है, आगे होने वाले साहित्य मंत्री इस आदर्श को सामने रक्खेंगे। इन तीन वर्षों में मुझसे अनेक भूलें हुई होंगी, उनके लिए मैं विनीत भाव से क्षमा चाहता हूँ। साहित्य मंत्री के पद से जो कुछ भी मैं कर सका हूँ उसका

समस्त श्रेय पूज्य पुरुषोत्तमदास जी टंडन को है जो सम्मेलन के प्राण हैं। कठिनाइयों में उनकी अन्तर्दृष्टि ही मेरी सहायता करती रही है। उन्हें क्या धन्यवाद दूँ ? सम्मेलन के प्रधान मंत्री डा० बाबूराम जी सक्सेना का कार्य-संचालन मुझे अधिक से अधिक सुविधाएँ दे सका है। उनके सत्परामर्शों का मैं चिरऋणी हूँ। अपने कार्य-काल में मुझे अन्य मित्रों का जो सहयोग मिला है, उसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ। मैं साधारण सदस्य के रूप में भी सम्मेलन की यथाशक्ति सेवा करता रहूँ यही मेरी आकांक्षा है।

———

नियमावली

१—सम्मेलन-पत्रिका प्रति मास प्रकाशित होगी।

२—हिन्दी सा० स० के आदर्शों की पूर्ति में सहायक होना पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है।

३—पत्रिका का वार्षिक मूल्य १) तथा एक अङ्क का =) होगा।

४—पत्रिका के संबन्ध में पत्र-व्यवहार साहित्य मन्त्री, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के पते से करना चाहिए।

५—पत्रिका-संबन्धी पत्र-व्यवहार में जवाब के लिए टिकट आने चाहिए; अन्यथा आवश्यक-अनावश्यक का विचार कर पत्रोत्तर दिया जायगा।

रजिस्टर्ड नं० ए० ६२९

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन द्वारा

प्रकाशित कुछ पुस्तकें

(१) सुलभ-साहित्य-माला

१ भूषण ग्रन्थावली २)
२ हिन्दी साहित्य का सं० इतिहास ।।)
३ भारत गीत ≡)
४ राष्ट्र भाषा ।।)
५ शिवा बावनी ≡)
६ सरल पिंगल ।)
७ भारतवर्ष का इतिहास २)
८ ब्रजमाधुरी सार ३)
९ पद्मावत पूर्वार्द्ध १)
१० सत्य हरिश्चन्द्र ।-)
११ हिन्दी-भाषा सार ।।।)
१२ सूरदास की विनय पत्रिका ≡)
१३ नवीन पद्य संग्रह ।।।)
१४ कहानी-कुञ्ज ।।=)
१५ विहारी संग्रह ≡)
१६ कवितावली १)
१७ सुदामा चरित्र ।)
१८ कबीर पदावली ।।।=)
१९ हिन्दी गद्य निर्माण १।।)
२० हिन्दी साहित्यकी रूप रेखा ।)
२१ सती कण्णकी ।।)
२२ हिन्दी पर फ़ारसी का प्रभाव ।।=)
२३ पार्वती मङ्गल ।)

(२) साहित्य रत्नमाला

१ अकबर की राज्य व्यवस्था १)

(३) वैज्ञानिक पुस्तक माला

१ सरल शरीर विज्ञान ।।), ।।।)
२ प्रारम्भिक रसायन १)
३ सृष्टि की कथा १)

(४) बाल साहित्य माला

१ बाल पद्म रत्न ।।)
२ वीर सन्तान ।=)
३ बिजली =)

(५) ओझा अभिनन्दन ग्रन्थ १६)

(६) विविध पुस्तकें

१ महात्मा गाँधी के निजी पत्र ।-)
२ टालस्टाय के विचार ।-)
३ इतना तो जानो ।-)
४ सनयाट सेन ।)
५ संजीवनी ।-)
६ नीति दर्शन ।।।)
७ लाजपतराय की जीवनी ।।।)

मुद्रक—गिरिजाप्रसाद श्रीवास्तव, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग।
प्रकाशक—साहित्य मंत्री, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

कार्तिक सम्वत् १९९९

सम्मेलन पत्रिका

[भाग २७, संख्या ३]

संपादक

ज्योतिप्रसाद मिश्र निर्मल

साहित्य-मंत्री

हिन्दी साहित्य सम्मेलन

प्रयाग

वार्षिक १)

एक प्रति =)

विषय-सूची

सम्मेलन-पत्रिका

भाग २७] कार्तिक १९९६ [संख्या ३

महाकवि केशव की 'कवि-प्रिया'

[लेखक - प्रोफ़ेसर विश्वनाथप्रसाद मिश्र एम० ए०, 'साहित्यरत्न']

केशवदास जी हिन्दी-साहित्य-संसार में किस कोटि के कवि थे इसे प्रत्येक हिन्दी साहित्यिक जानता है। केशवदास जी भी उसी समय में कविता करते थे जिस समय हिन्दी-साहित्य-संसार के दो सूर्य (सूर और तुलसी) अपनी भक्ति-भाव-पूर्ण कविता से इसे प्रकाशित कर रहे थे। यद्यपि केशवदास जी को कुछ हठी सज्जन वैसा पद नहीं देते जैसा उन्हें देना चाहिए पर इससे न तो केशवदास का पद ही नीचा होता है और न उनकी कविता ही चौपट हुई जाती है। हमारे विचार से कवियों को सीमित करना या उन्हें यह बताना कि यह अमुक श्रेणी के हैं, उनके साथ अन्याय करना है। क्योंकि सभी कवियों का मार्ग, उनकी स्थिति और उनके विचार एक विषय में समान नहीं होते। एक कवि किसी विषय पर उत्तम से उत्तम उक्ति लिख सकता है; दूसरा उस विषय पर साधारण ही उक्ति लिख सकने की क्षमता रखता है, पर वही दूसरे किसी विषय पर ऐसी चोज़दार उक्ति लिख देता है कि फिर उसकी महानता केवल एक ही छन्द बता देता है। कभी कभी सूर, तुलसी, केशव, बिहारी और देव को लेकर हमारे हिन्दी संसार में सत्यता, औचित्य, विद्वत्ता और कविता की छीछालेदर की जाती है। इस साहित्यिक-क्रांति से विद्यार्थियों की बड़ी दुर्दशा हो रही है। क्योंकि उन्हें इस बात का ठीक निश्चय नहीं होता कि हम किस की बात मानें। यदि इस प्रकार की विचित्रता-पूर्ण

आलोचनाओं से कोई हिन्दी का हित समझने का दावा करे तो यह भ्रम है क्योंकि इसके कारण कवि-कृति को क्षति पहुँचती है। हमारे विचार से तो यह अपना अपना बुद्धि-विलास है, इसमें कोई तथ्य नहीं।

इस विप्लव में केशव, बिहारी और देव पर ही विशेष टीका-टिप्पणियाँ हुई हैं। देव को कुछ विद्वान् अपने विचार-वैचित्र्य द्वारा केशव और बिहारी से ऊँचे दर्जे का कवि बतलाते हैं और उसके लिए कितने ही लेख लिखे गये और तुलनात्मक आलोचनाएँ रची गयीं। कुछ 'गाली-गुफ्ता' भी हुआ और अब भी यदा-कदा हो ही जाता है किंतु यह अच्छा नहीं है। विचारने की बात यह है कि दो कवियों की आलोचना करने का अधिकारी कौन है? हमारे विचार से दो कवियों की तुलनात्मक समालोचना करने वाले समालोचकों में उनसे बढ़कर नहीं, तो उनके समान तो योग्यता अवश्य ही होनी चाहिए और उसे स्वयं अच्छा कवि होना चाहिये। कवि का हृदय समझना, उसकी कविता की ख़ूबियाँ समझना सरल नहीं है। जिसमें कवि से कम योग्यता होगी वह आलोचना नहीं कर सकता और न उसका वह अधिकारी ही है। कविता कम योग्यता होने से समझी जा सकती है पर उसकी आलोचना करने का माद्दा नहीं हो सकता।

आलोचना करने के विषय में एक बात और विचार करने योग्य यह है कि कवि के हृदय की थाह लेनी भी परमावश्यक है। उसके सच्चे स्वभाव से परिचित हुए बिना उसपर क़लम चला देने से कवि और समालोचक दोनों की मिट्टी पलीद होती है। किसी कवि की कविता को विशेष कारण वश या रुचि अनुकूल पढ़कर और उस पर तन, मन से मुग्ध होकर अन्य कवियों को उससे उतर कर बताना न्याय-संगत नहीं। अपनी बुद्धि के बल पर अनुचित कारणों को उचित रूप देकर किसी अच्छे कवि को उससे श्रेष्ठतर कवियों के आगे सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करना अपनी विद्वत्ता का अनादर करना नहीं तो क्या है? ख़ैर, अब हमें यह बताने की आवश्यकता नहीं रह गयी

कि केशव महाकवि थे और जिन कवियों के आगे उन्हें छोटा कवि जबर्दस्ती कहा जाता है उनसे वह कहीं अच्छे थे। हम श्रेणी विभाग के विरोधी हैं। हमारे विचार से कवियों को श्रेणी-बद्ध करना या उन्हें विशेष कोटि में विभक्त करना ठीक नहीं है। हिन्दी में कितने ही रत्न हैं, यदि उचित रूप से उनके ग्रन्थों और उनकी कविताओं का अध्ययन किया जाय तो प्रत्यक्ष ज्ञात हो जायगा कि हमारे इस कथन में सत्यता का अंश कितनी अधिक मात्रा में प्रच्छन्न है। इस अध्ययन में समर्थ वही हो सकता है जो अपने सम्पूर्ण जीवन को साहित्यिक रसास्वादन के लिए न्यौछावर कर दे।

केशवदास जी हिन्दी के प्रथम आचार्य हैं। अपनी कविता द्वारा, अपने ग्रन्थों द्वारा वे हिन्दी का बड़ा हित कर गये हैं। आजकल तो कविता करने वाले स्वयंभू कवि ही अधिक होते हैं; उनकी कविता भी ऐसी वैसी नहीं होती है। एक समय वह था जब बिना गुरु के नाम के कोई किसी कवि की कविता नहीं सुनता था और अब वह समय आ गया है कि लोग ऊट-पटाँग जो कुछ बन पड़ता है लिख मारते हैं। केशवदास जी की उद्भट आचार्यता के परिचायक इनके दो ग्रन्थ हैं 'कविप्रिया' और दूसरी 'रसिकप्रिया'। रसिकप्रिया में नायिका भेद का वर्णन है और कविप्रिया में कवि-परिपाटी एवं कवि के लिए वर्णनों का औचित्य तथा अनौचित्य।

केशवदास जी से तीन ही ग्रन्थ बड़े उत्तम बन पड़े हैं, कविप्रिया, रामचन्द्रिका और रसिकप्रिया।

इन तीनों ग्रन्थों में कठिन, उत्तम और महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'कवि-प्रिया' ही है। इस ग्रन्थ के देखने से केशवदास जी की विद्वत्ता, पांडित्य और आचार्यता भली-भाँति प्रदर्शित होती है। एक 'कवि-प्रिया' ग्रन्थ ही उन्हें हिन्दी संसार में अद्वितीय महाकवि बनाने के लिए अलं है। कवियों के लिए इसके सदृश उत्तम और हितकर ग्रन्थ हिन्दी-साहित्य में कम बने हैं।

केशवदास जी ने यह ग्रन्थ संस्कृत ग्रन्थों के आधार पर लिखा है। क्योंकि केशवदास जी संस्कृत के बड़े भारी विद्वान थे। इनके पूर्वज

संस्कृत में ही कविता करते आये हैं, इसका वर्णन उन्होंने स्वयं रामचन्द्रिका में किया है। कविप्रिया या केशवदास जी के अन्य ग्रन्थों के पढ़ने से उनमें प्रत्यक्ष संस्कृत-शैली देख पड़ती है। यही कारण है कि इनके काव्य बड़े कठिन हो गये हैं। इन्हें 'कठिन काव्य के प्रेत कहना' एक प्रकार से अनुचित नहीं है। सचमुच इनके काव्यों का कोई सीधी-साधी रीति से या सरलता पूर्वक अर्थ लगा ले, यह बात नहीं है। कविप्रिया सभी ग्रन्थों में दुरूह है। कविप्रिया के आदि के कई प्रभाव (खंड) केशवदास जी ने अपना दिमाग़ खरोंच खरोंच कर लिखे हैं और शेष प्रभाव दंडी के 'काव्यादर्श' तथा राजानक रुय्यक कृत 'अलंकारसूत्र' के आधार पर लिखे हैं। इन प्रभावों में उन्होंने संस्कृत विचारों को, सिद्धान्तों को, शब्दों को बड़ी ख़ूबी के साथ हिन्दी में ढाला है। खोज करने से पता लगा है कि उपमा, यमक और आक्षेप आदि अलंकारों का वर्णन 'काव्यादर्श' से ज्यों का त्यों उठा कर रख दिया गया है। कुछ भी हो हिन्दी में यह ग्रन्थ अमूल्य-रत्न है।

कविप्रिया में १६ प्रभाव हैं। पहले दो प्रभावों में नृपवंश और कविवंश का वर्णन एवं बंदना आदि है। फिर काव्यदोष और अलंकारों का वर्णन किया गया है। अन्तिम सोलहवें प्रभाव में चित्र-काव्य का वर्णन है। कविप्रिया की उत्तमता का प्रदर्शन कराने के लिए मैं इसके कुछ छन्दों का विश्लेषण करूँगा। इसके पहले मैं कवि-प्रिया की भाषा, शैली और रसादि के विषय में कुछ थोड़ा सा लिख देना आवश्यक समझता हूँ।

कविप्रिया की भाषा कठिन और पांडित्यपूर्ण है। इससे बुंदेलखंडी और ब्रजभाषा का संमिश्रण है। केशवदास जी स्वयं बुंदेलखंड के ही रहनेवाले थे अतएव ठेठ बुंदेलखंडी शब्दों का भी प्रयोग बहुतायत से किया है। भाषा में शब्दों की तोड़-मरोड़ नहीं है। कहीं-कहीं आवश्य-कतानुसार ऐसा किया भी गया है तो कवि-परिपाटी के दायरे के ही अन्दर। हाँ, दो-एक स्थलों पर केशवदास जी ने ऐसा भी किया है जो अनुचित और भ्रामक है। इसका उदाहरण हम आगे देंगे।

कविप्रिया में विशेषकर शृंगार रस का ही वर्णन है। कवियों की सामग्री होने के कारण यद्यपि इसमें और रसों का भी वर्णन किया गया है पर उन रसों पर छन्द कम हैं। अलंकारों के उदाहरणों में प्राय: शृंगार रस के ही उदाहरण हैं। केशवदास जी का रस-परिपाक प्रशंसनीय है। जिस रस का जहाँ पर वर्णन हुआ है उसका पूर्ण निर्वाह किया गया है। रसाभास तो कहीं पर भी देखने में नहीं आता। निस्सन्देह केशवदास जी आचार्य ही थे, इसलिये रसों की सिद्धता अनुकरणीय और आदर्श है।

केशवदास जी की शैली उत्तम है। परिभाषा देकर फिर उसके उदाहरण दिये गये हैं। परिभाषा और उदाहरणों को ऐसा मिला दिया है कि परिभाषा से ठीक ठीक आप उदाहरण मिला सकते हैं; कहीं पर भी चूक नहीं मिलेगी। वर्णन कठिन होते हुए भी स्पष्ट हैं। काव्य दूषण का वर्णन ही इतना साफ़ है कि यदि उसे पढ़ने वाला हृदयंगम कर ले तो वह भली-भाँति दोषों का विश्लेषण करने में समर्थ होगा।

अब मैं उनके कुछ छन्दों पर विवेचनापूर्ण दृष्टि से विचार करता हूँ—

ग्रन्थ का पहिला दोहा है—

> **"गजमुख सनमुख होत ही विघन विमुख ह्वै जात।**
> **ज्यों पग परत पराग मग पाप पहार विलात॥"**

इस दोहे का एक-एक शब्द ख़ूब सोच-विचार कर लिखा गया है। पहली पंक्ति में गणेश जी का महत्व वर्णन किया गया है। दूसरी पंक्ति में उदाहरण द्वारा उसकी पुष्टि की गयी है। पर पढ़ने से शब्दों में कुछ असंगति सी जान पड़ती है। गणेश जी का महत्व कुछ घट कर देख पड़ता है किन्तु विवेकपूर्ण दृष्टि से विचार करने से कवि की कारीगरी पर मन मुग्ध हो जाता है। असंगति यह है कि गणेश जी के सम्मुख होने पर सब कहीं विघ्न विमुख होंगे पर प्रयाग के लिए प्रस्थान करने में पहला पग रखा कि पाप-पहाड़ गायब हो गये। इसलिए प्रयाग का महत्व गणेश जी से बढ़कर हुआ पर ऐसा कहना

ठीक नहीं है। फिर वस्तुतः यह गणेश बन्दना है। इसलिए सम्मुख शब्द का अर्थ 'हृदय में स्मरण करने का' लिया जायगा।

यहाँ पर कवि की कारीगरी यह है कि उसने पहली पंक्ति में जो बात कही है दूसरी में भी वही बात कह कर दोनों को भलीभाँति मिला दिया है। पहली पंक्ति में वर्णन है कि गणेश जी के सम्मुख होने से विघ्न-विमुख (विगत मुख) हो जाते हैं और दूसरी पंक्ति में जहाँ प्रयाग के लिए मार्ग में पैर रखा कि पाप-पहार बिलात (विगत-लात) हो जाते हैं। अर्थात् गणेश जी का ध्यान करते ही विघ्न स्मरण-कर्त्ता की ओर आँख उठाकर नहीं देखते वे मुख-विहीन हो जाते हैं और प्रयाग के लिए प्रस्थान करते समय पाप-पहार पदहीन हो जाते हैं वे फिर पीछे-पीछे नहीं घूम सकते। शब्द कैसी ख़ूबी के साथ बैठाये गये हैं! यह देखने ही योग्य है। यह केशवदास जी का व्यापक पांडित्य है। इस दोहे पर जितना ही मनन किया जाय उतने ही सुन्दर विचार निकलेंगे, उतनी ही ख़ूबियाँ देख पड़ेंगी। वस्तुतः यह दोहा हिन्दी में एक रत्न है।

आगे चल कर कविप्रिया के बारे में कवि लिखता है:--

सगुन पदारथ अर्थयुत सुवरन मय सुभ साज।
कंठमाल ज्यों कविप्रिया कंठ करो कविराज॥

उक्त दोहे में शब्द बड़ी ख़ूबी के साथ जड़ दिये गये हैं! यह विचारणीय है। 'कंठ करो' अत्यन्त सुन्दर है। इस दोहे के 'सगुन' 'सुवरन मय' शब्द भी अच्छे मौक़े पर रखे गये हैं। इनमें सुन्दर श्लेष है। कविप्रिया और कंठमाल दोनों के पक्ष में अर्थ सरलता-पूर्वक घट जाता है। सगुन के दो अर्थ—(१) सूत्र-युक्त (२) गुण युक्त (ओज, माधुर्य और प्रसाद), सुवरनमय के भी दो अर्थ हैं (१) सुवर्णमय, सोने की बनी हुई। (२) सुन्दर वर्ण से युक्त, उत्तम उत्तम अक्षरों से युक्त।

केशवदास जी श्लेषालंकार के बड़े प्रेमी थे। उन्होंने कितनी ही श्लिष्ट कविताएँ लिखी हैं। हमारे विचार से श्लेषप्रियता ही उनके महाकवि होने में सहायक हुई है। इसी अद्भुत गुण से उन्होंने काव्य को

ख़ूब अलंकृत किया है। यों तो उनकी कविता में परिसंख्या, विरोधाभास और विभावना आदि अलंकारों की भी प्रमुखता है पर श्लेष में इनकी कविता बहुत अधिक है और श्लेष भी उत्तम कोटि का है। सेनापति जी यद्यपि श्लेष के सर्वोत्तम कवि हैं पर केशवदास जी का स्थान उनसे कम नहीं है। केशवदास जी के श्लेष भी बड़े उत्तम हैं। उनकी कोई भी श्लिष्ट कविता सेनापति से टक्कर ले सकती है। श्लेष के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

श्लेष के उदाहरण देने के पहले कविप्रिया के संबंध में कुछ बात भी बता देनी आवश्यक है। केशवदास जी ने कविप्रिया अपनी साहित्य-शिष्या प्रबीणराय नामक वेश्या के लिए बनायी थी जोकि केशव के आश्रयदाता इन्द्रजीतसिंह जी की दरबारी वेश्या थी। इसके अतिरिक्त और भी कई वेश्याएँ उनके दरबार में थीं पर विशेषता प्रवीणराय की ही थी। केशव की रामचन्द्रिका में रामकलेवा प्रवीणराय का ही लिखा है। 'कविप्रिया' में कई स्थानों पर 'प्रवीन' सम्बोधन 'प्रवीणराय' के ही लिए प्रयुक्त हुआ है। केशव जी ने इसकी प्रशंसा में भी कई छन्द लिखे हैं जो श्लिष्ट हैं और श्लेष के बल पर कई रूपक बाँधे गये हैं जो अत्यन्त सुंदर हैं। प्रवीणराय की वीणा के विषय में वे एक दोहा लिखते हैं। उसमें श्लेष की सहायता से देवसभा के साथ प्रवीणराय की वीणा की तुलना करते हैं। कवि ने कितनी ख़ूबी के साथ तुलना की है, यह दर्शनीय है। इसी प्रकार और वेश्याओं की भी कई भिन्न-भिन्न वस्तुओं से अद्भुत तुलना की गयी है—

तंत्री तुंबुरु सारिका, सुद्ध सुरन सों लीन।
देव-सभा सी देखिये, रायप्रवीन-प्रवीन॥

उक्त दोहे में तंत्री, तुंबुरु, सारिका और सुरन शब्द श्लिष्ट हैं। इनके आधार पर उपमा का अच्छा चमत्कार दिखाया गया है। तंत्री के दो अर्थ तंत्रशास्त्र विज्ञ (बृहस्पति) और तार-युक्त, तुंबुरु के दो अर्थ गंधर्व और तूँबा, सारिका के दो अर्थ अप्सरा और धोरिया, सुरन के दो अर्थ देवता और सप्तस्वर हैं। अन्त में 'प्रवीन' का यमक भी सुंदर है।

इसी श्लेष की सहायता से केशव जी प्रवीणराय को सत्यभामा बनाते हैं और उससे इन्द्रजीत (कृष्ण) के प्रेम करने को उचित बतलाते हैं। इतना बड़ा बधान केवल दो शब्दों के बल पर बाँधा गया है।

सत्या राय प्रवीन युत, सुरतरु सुरतरु गेह।
इन्द्रजीत तासों बँधे, केशवदास सनेह॥

इसमें सुरतरु शब्द और इन्द्रजीत शब्द बहुत खूबी के साथ रखे गये हैं। सुरतरु का अर्थ कल्पवृक्ष है (सत्यभामा के लिए श्रीकृष्ण जी पारिजात और मदार नामक कल्पवृक्ष पृथ्वी पर लाये थे) इन्द्रजीत शब्द भी विशेष महत्व का है।

इस शब्द का एक अर्थ तो उनके आश्रयदाता का नाम ही है। दूसरा श्रीकृष्ण (इन्द्र को जीतने वाला) है। यहाँ पर 'सुरतरु' (प्रेम) और 'सुरतरु' शब्दों का यमक भी कैसा अच्छा आ गया है।

'नयन विचित्रा' नामक एक दूसरी वेश्या की समता 'चन्द्रकला' से करते हैं। केवल साधारण शब्दों के श्लिष्ट अर्थ के बल पर यह समता रची गयी है, यह देखने योग्य है।

भैरव युत गौरी सँयुत, सुर तरंगिनी लेखि।
चंद्रकला सी सोभिजै, नयनविचित्रा देखि॥

भैरव (प्रातःकालीन एक राग, शिव), गौरी (संध्याकालीन एक राग, पार्वती), सुरतरंगिनी (सप्तस्वर, गंगा) शब्द कैसे गुरुत्व के साथ लाये गये हैं।

आगे प्रवीणराय और पार्वती जी के ऐसे एक ही विशेषण रखते हैं जिसका अर्थ श्लिष्ट होने से दोनों पक्षों में सरलता पूर्वक घटित हो जाता है।

(अगले अंक में समाप्त)

आधुनिक हिन्दी कविताएँ

[लेखक—श्री सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय']

रेडियो पर बोलने में एक घाटा यह है कि जहाँ लेक्चर देते वक्त बोलनेवाले को पता होता है कि सुननेवाले किस तबीयत और कितनी शिक्षावाले लोग हैं। वहाँ रेडियो पर बोलनेवाले को यह भी पता नहीं होता कि कोई सुनता भी है या नहीं। लेकिन दूसरी ओर फ़ायदा यह है कि रेडियो सुननेवाले नाखुश होने पर पाँव पटकने या हुल्लड़ करने नहीं लगते, एक बटन दबाकर और कुछ सुनने लगते हैं।

खैर, यह मैं समझ लेता हूँ कि आप कुछ लोग सुन रहे हैं, और यह भी मान लेता हूँ कि आप समझदार और कविता-पारखी लोग हैं। इसीलिए नयी हिन्दी कविता के नमूने पेश करने से पहले दो बातें आप से कहना चाहता हूँ।

मुशायरे आपने सुने होंगे; कवि-सम्मेलनों में भी गए ही होंगे। आपने ख्याल किया होगा कि इन दोनों में मिलनेवाले रस में एक गहरा भेद है। दोनों से बिलकुल जुदा-जुदा ढंग का मज़ा मिलता है। जो इतने भाग्यवान नहीं हैं कि दोनों रसों का मज़ा ले सकें, वे किसी एक पर बहुत नाखुश भी हो सकते हैं।

एक ही ज़माने की उर्दू और हिन्दी कविता दो अलग-सी धारों में बहती जान पड़ती है। यह क्यों? अगर युगधर्म जैसी कोई चीज़ है, तो एक ही देश और काल और जीवन में रहकर यह भेद क्यों?

इसकी वजह यह है कि युगधर्म के बराबर ही महत्व रखनेवाली एक दूसरी चीज़ का असर कविता पर होता है और वह है रीति, या परम्परा, या संस्कृति की देन। हिन्दी और उर्दू कविता में इसलिए भेद है कि उनको अनुप्राणित करनेवाली संस्कृति और परंपरा भिन्न हैं। रीति या परंपरा मैं बहुत बड़े अर्थ में कहता हूँ।

कविता का ढंग, उसका विषय, उसके उद्देश्य, कवि की परिस्थिति और ज़िम्मेदारी सब उसमें आ जाते हैं। लेकिन इसकी और इससे पैदा होने वाली विशेषताओं की पड़ताल करने की यहाँ जगह नहीं है, इसलिए इसके एक ही पहलू की ओर इशारा करके सन्तोष करना होगा; और वह है हिन्दी और उर्दू के कवि के आदर्शों का भेद। उर्दू कविता के पीछे जो संस्कृति है, उसके लिए कविता सुख का एक साधन रही है; इसलिए कम से कम कोरे सिद्धान्त की दृष्टि से, कविता कोई बहुत बढ़िया चीज़ नहीं रही*। दूसरी ओर हिन्दी में कविता का साथ हमेशा कर्तव्य के साथ रहा है, और कवि की हमेशा सामाजिक ज़िम्मेदारी मानी जाती रही है। इसीलिए उर्दू कविता को हमेशा राज दरबारों से ही पनाह मिलती रही, जब कि हिन्दी कविता का साथ पहले साधु-सन्तों और सुधारकों से रहा। यों हिन्दी ने भी ऐसे दिन देखे जब वह राजों का मुँह जोहने को मजबूर हुई, और उर्दू ने सूफ़िया और औलियों का सत्संग किया; पर हम सिर्फ़ परंपरा की बात कहते हैं।

यह रीति-परंपरा का फ़र्क़ अभी तक मिटा नहीं है। सोचकर देखा जाय तो मुशायरे और कविसम्मेलन में यही भेद कारगर होता है। वैसे तो अब यूरोप से बोहेमियनिज्म का जो नया आदर्श हमारे बीच आया है, जिसके अनुसार आर्टिस्ट नाम का जीव बिलकुल आज़ाद है, उसने दोनों पर अपना रंग डाला है और हिन्दी के अन्दर ही दोनों तरह का झुकाव दीखता है।

कहने का मतलब यह है कि हिन्दी के लिए कविता अब भी मुशायरे की, मजमे की चीज नहीं है, वह अकेलेपन की, साधना की संगिनी है, हालाँकि कुछ कवि इस बात के अपवाद भी हैं, और

---

* उमर खय्याम की वह रुबाई जिसका अर्थ है—रोटी, शराब, प्यारी और कविता का साथ आकस्मिक नहीं है, वह एक संस्कृत के दृष्टिकोण की सूचक है।

उन्हें बड़ी सफलता भी मिली है। किसी को अच्छा या बुरा कहना मेरा काम नहीं है, वह अपनी-अपनी रुचि की बात है; पर बिना इस बुनियादी भेद को समझे हिन्दी कविता का मोल नहीं आँका जा सकता।

आधुनिक कवियों में मैंने कुछ नवीन और जीवित कवि ही चुने हैं, और चुनाव में भी यह मान लिया गया है कि आप दिमागी कसरत के लिए नहीं, आराम के लिए सुन रहे हैं। इसलिए यह न समझा जाय कि सब से अच्छे कवियों की सब से अच्छी कविता ही आपको सुनाई जा रही है। इन कवियों की भी इससे अच्छी कविताएँ हैं, और दूसरे बहुत अच्छे कवि भी हैं जिन्होंने श्रेष्ठ और उच्चकोटि की कविता में लिखी हैं और अभी लिख रहे हैं।

यह भाषण दिल्ली रेडियो स्टेशन से कुछ आधुनिक कविताओं के पाठ के साथ भूमिका के रूप में पढ़ा गया था। इसके साथ निम्नलिखित कविताएँ पाठ के लिए चुनी गई थीं—'झर गई कली' (पन्त); 'पराजय गान !' (नवीन); 'भिक्षुक' (निराला); 'बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ' (महादेवी वर्मा); 'हम दीवानों की क्या हस्ती— (भगवतीचरण वर्मा); 'देवता उसने कहा था' (बच्चन); 'हो गई किसी को यदि विरक्ति' (नरेन्द्र शर्मा); 'मैं भिखमंगी कुल आलम की' (अज्ञेय)

हिन्दी संसार

(श्री जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल वैद्य, संग्रहमन्त्री)

शिक्षा का माध्यम हिन्दुस्तानी--संयुक्तप्रान्तीय सरकार ने निश्चय किया है कि प्रान्तमें शिक्षाका माध्यम हिन्दुस्तानी भाषा होगी। धीरे धीरे युनिवर्सिटीमें हिन्दुस्तानी द्वारा शिक्षा दी जायगी। इस बातको लक्ष्यमें रख उस दिन आचार्य नरेन्द्रदेव जी ने लखनऊ युनिवर्सिटीके विद्यार्थियोंके सामने एक भाषण दिया और कहा कि वे हिन्दी-उर्दू दोनों पढ़ कर हिन्दुस्तानी भाषा की वृद्धि करें और जनता के सामने समझमें आ सकने वाली भाषा रखकर इस कार्य में अपना हिस्सा पूरा करें। क्योंकि जनताके कार्योंके सम्पर्कमें रहकर ही हम लोग हिन्दुस्तानी भाषाका विकास कर सकते हैं। और इससे विभिन्न प्रान्तोंके बीचमें सम्पर्क बढ़ेगा। समान भाषा बनाने के मार्गमें दो कठिनाइयाँ हैं। अर्थात् इस समय संस्कृत शब्दोंसे युक्त शुद्ध हिन्दी तथा फ़ारसीके शब्दोंसे बनी हुई ठेठ उर्दू के तरफसे दावे पेश किये जा रहे हैं। परन्तु इन दावोंको त्याग कर हमें ऐसी भाषा बनानी चाहिये जो हिन्दी और उर्दू दोनों बोलने वालों के समझ में आवे और जिसमें रोजमर्रेकी बोलचालमें आने वाले शब्द रखे जायँ। यह भाषा हिन्दुस्तानी हो सकती है। इस समय तो दोनों लिपियाँ अर्थात् उर्दू और नागरी लिखी जा सकती हैं पर वह समय आवेगा जब रोमन लिपि सब लोग स्वीकार कर लेंगे। आचार्य जीका लिपि के सम्बन्धमें यह विचार कैसे बँधा वे ही जानें। किन्तु भगवान करे भारतीय संस्कृति और सर्वोत्तम लिपि को नष्ट करनेवाला वह समय कभी न आवे।

हिन्दी कामधेनु है—कलकत्तेमें हिन्दीप्रचारके सम्बन्धमें महामना मालवीय जीने अपने विचार प्रकट किये थे। आपका कथन है कि संस्कृत भाषा की पुत्रियोंमें हिन्दी सबसे बड़ी और गौरवपूर्ण

है। इसका आधुनिक साहित्य दिन-दिन उन्नति कर रहा है। भारतवर्ष में यही राष्ट्रभाषा हो सकती है। हिन्दी बोलनेवाले जहां कहीं भी हों, उनका कर्तव्य है कि वे परिश्रम और उत्साह के साथ सभा-समाज-पाठशाला और समाचारपत्रोंके द्वारा हिन्दीके प्रचारका प्रयत्न करें। कामधेनुके समान हिन्दी का साहित्य अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष चारों पदार्थों की प्राप्तिमें सहायक होगा।

यू० पी० सरकार क्या कहती है?—बुलन्दशहरके एक वकील महोदय लिखते हैं कि युक्तप्रान्तीय सरकार उर्दू भाषा और उर्दू लिपिको प्रोत्साहित करनेमें बड़ी अग्रसर है। लगभग सभी सरकारी फ़ार्म उर्दू में ही मुद्रित होते हैं। उदाहरणत: आर्डरशीट, बयानका फ़ार्म, डिग्री का फ़ार्म, लगान इत्यादि के सभी फ़ार्म उर्दू लिपिमें ही छपते हैं। अदालतके कर्मचारी तथा वकील इत्यादि जो केवल हिन्दी ही जानते हैं, सरकारी हिन्दी फ़ार्म न होने के कारण उर्दू सीखने पर मजबूर होते हैं। जबकि हिन्दी तथा उर्दू दोनों भाषाओं को सरकार द्वारा अदालती भाषा स्वीकार किया जा चुका है, तब हिन्दी लिपिके साथ सौतेली माँ का सा व्यवहार क्यों किया जा रहा है! इस पर अर्जुनसम्पादक टिप्पणी करते हैं कि क्या युक्त प्रान्त की कांग्रेसी सरकार इस ओर ध्यान देकर सरकारी फ़ार्मों पर उर्दू लिपिहीकी भाँति हिन्दी लिपि को भी स्थान देगी? हम कहते हैं कि वकील लोग भुक्तभोगी और अनुभवी होते हैं, उनके इस कथन पर कांग्रेसी न सही कोई भी सरकार क्या करना चाहती है?

राष्ट्रभाषा और लिपि— अभी बम्बईकी हिन्दीप्रचार सभाकी "राष्ट्रभाषा" परीक्षामें उत्तीर्ण होनेवाले विद्यार्थियोंको उपाधिपत्र बांटते हुए वहां के उस समय के प्रधान-मन्त्री श्रीयुत खेरने कहा था कि भारतके लिये हिन्दी ही सर्वोतम राष्ट्रभाषा हो सकती है। यह भारतीयोंके लिये बड़े खेदकी बात है कि वे अंग्रेज़ीको अब भी अपनी माध्यम भाषा बनाये चलते हैं। प्रत्येक यूरोपीय राष्ट्रकी अपनी राष्ट्रभाषा है। उसके द्वारा उसे अपने व्यापार-व्यवसाय में ही सुविधा नहीं हुई

है, बल्कि राष्ट्रीय एकता और देश सेवाकी भावना उत्पन्न करने में भी बड़ी सहायता मिली है। हमारी जनताके ऊपर अँग्रेजीने कैसा प्रभाव जमा रखा है, मद्रासमें औरों की जाने दीजिये होटलके नौकर तक अपरिचितोंसे अँग्रेजीमें ही बात करते हैं। हम इस बातको स्पष्ट कर चुके हैं कि हिन्दुस्तानी को माध्यम भाषा बनानेमें हम किसी भी साम्प्रदायिक भावना से प्रेरित नहीं हैं। हमारा केवल यही उद्देश्य है कि हमारी माध्यम भाषा वही बनायी जाय जो हमारे लिये सबसे अधिक उपयुक्त हो।

लिपि का सवाल बहुत महत्वपूर्ण नहीं है। नागरी या उर्दू जो जिस लिपिको पसन्द करे वह उसको उपयोग करे। मैं इस बातके पक्ष में हूँ कि "हिन्दी प्रचार" सभा का नाम बदल कर "हिन्दुस्तानी प्रचार सभा" रख दिया जाय। हिन्दुस्तानीका प्रचार करनेके लिये बम्बई सरकारने एक बोर्ड, एक पाठ्य-पुस्तक कमेटी, तथा सूरत, पूना और धारवाड़में पाठशालाएँ खोली हैं। बम्बई विश्वविद्यालयकी सेनेट ने हाल में ही हिन्दुस्तानीको विश्वविद्यालय में हिन्दुस्तानी को अनिवार्य विषय बनानेके प्रस्तावको अस्वीकृत कर दिया है। विश्व-विद्यालय स्वतन्त्र है और मन्त्रि-मण्डल के प्रभावसे अलग है। इस विषयमें सेनेट पर ही इस भाषाके प्रचारके लिये जोर डालना चाहिये।

रामायणकी भाषा—पण्डित अम्बिका प्रसाद बाजपेयी जीने "मध्य भारतमें" एक लेख लिख कर रामायणकी भाषा पर विचार किया है। आपका कहना है कि आजकलके लेखक कहते हैं कि राम-चरितमानसकी भाषा अवधी है। पं० रामचन्द्र शुक्ल, डा० धीरेन्द्र वर्मा, स्वर्गीय रामदास गौड़ आदिके विचारके अनुसार कानपुरसे मुजफ्फ़रपुर तक बोली जानेवाली भाषा "अवधी" है, यद्यपि उसका मुख्यक्षेत्र अवधके ११ जिले (हरदोईको ये लोग छोड़ देते हैं) हैं। किन्तु हरदोईका पूर्वी हिस्सा स्पष्ट रूपसे अवधी या वैसवाड़ी बोलनेवाला है, इसका ये लोग विचार नहीं करते। इसके सिवा गोसाईं तुलसीदास जीने तो "अवधी" भाषा की कल्पना भी नहीं की थी;

क्योंकि उन्होंने जहाँ "अवध" शब्दका प्रयोग किया है, वहाँ अयोध्याके लिये किया है। यह ११ बारह जिलोंका तो अवध अंग्रेजी राज्यकी कल्पना है। गोसाईं जी तो यही कहते हैं कि मैं रामायण की रचना "भाषा" में करता हूँ। भाषाशास्त्रकी दृष्टिसे हिन्दीके पूर्वी और पश्चिमी दो भेद माने जाते हैं। पश्चिमी हिन्दी अन्तर्वेदकी और पूर्वी हिन्दी अवध और विहारकी भाषा है। व्रजभाषा और कनौजी बोली पश्चिमी हिन्दी के अन्तर्गत है। इसका मूल शौरसेनी प्राकृत है। अयोध्याके पास शौरसेनी और मागधीका मेल होकर "अर्द्ध मागधी" बनी यही अर्द्धमागधी अवधीकी जननी है। वैसवाड़ीमें मागधी भावकी अपेक्षा शौरसेनी भाव ही अधिक है। इस हिसाबसे पदमावतकी भी भाषा अवधी नहीं बल्कि वैसवाड़ी है। आजकलके विचारक यदि यह मानते हैं कि रामचरित मानस और पदमावतकी भाषा एक है तो रामायण की भी भाषा अवधी नहीं वैसवाड़ी है। जैसे उर्दूमें अरबी, तुर्की, फ़ारसीके शब्दोंकी भरमार होने पर भी वह हिन्दी से अलग नहीं है, उसी तरह रामायणमें भी अनेक भाषाओंके शब्द आने पर भी वह अवधी क्यों कही जाय। रामायणमें जगह जगह तृतीय विभक्ति और कर्मणिप्रयोग है, परन्तु अवधीमें इसका सर्वथा अभाव रहता है। रामायणमें "मैं" प्रथमा और तृतीया दोनों विभक्तियों में आया है। अवधी में "मैं" का प्रयोग नहीं होता फिर उसका तृतीया बनकर कर्ता का होना तो सम्भव ही नहीं। कुछ अपवाद मिल सकते हैं; किन्तु अपवाद अपवाद ही हैं। निमित्तार्थमें "कहुँ" या "कहँ" सर्वत्र देखा जाता है वह रामायणमें भी है। यदि "करे" "केरी" "कर" षष्ठी विभक्ति आने से अवधी कही जाय तो ये प्रयोग पृथ्वीराज रासो में भी आये हैं। "ते" और "सन" रामायणमें करण कारकके चिन्ह हैं और "हि" वा "हिं" तो प्रथमाको छोड़ सभी विभक्तियोंमें आता है। अवधीमें "हि" है ही नहीं। तथा करणकारक "तन" प्रत्यय आता है। रामयणमें वर्त्तमानकालमें "अह" धातुके रूपोंका प्रयोग हुआ है जो पश्चिमी भाषाके नियमके अनुसार है। अवधीमें एक वचन पुल्लिंगमें "अहउँ" स्त्रीलिङ्गमें "अहिउ" और बहुवचनमें "अहीं"

पुल्लिङ्ग और "अहिन' स्त्रीलिङ्ग है। अवधीमें अह धातुके अतिरिक्त 'वार" धातुका भी प्रयोग होता है। जिसका पुल्लिङ्ग 'बारेउँ" और स्त्रीलिङ्ग "बारिउँ तथा बहुवचन "वारी" होता है। रामायण में इन पदोंका प्रयोग नहीं है। इसलिये भी रामायणकी भाषा अवधी नहीं है। सारांश यह कि रामायण की भाषाकी धारा वही है जो उससे प्राचीनतर काव्योंकी है। गोसाईं जीने "भाषा" शब्दका प्रयोग अवधीके लिये नहीं प्राकृतकी उत्तराधिकारिणी भाषाके लिये किया है, जिसे जनसाधारण बोलते और समझते हैं। क्रियापदोंके रूप अन्तर्वेदी, बैसवाड़ी, राजपूतानी, मैथिली आदिके भी हैं। आप चाहते हैं कि इस विषयमें काफ़ी चर्चा की जाय।

बिहारकी नयी हिन्दुस्तानी भाषा—बिहारप्रान्तीय सरकारने हिन्दुस्तानी भाषा की रचना के लिये एक कमेटी क़ायम की है। बिहारके अछूतोंको इसी भाषामें शिक्षा मिलेगी। हिन्दुस्तानीमें किताब लिखनेवालाके सुभीते के लिये कमेटी पारिभाषिक शब्दोंका कोष तैयार कर रही है। हिन्दुस्तानी शब्दोंका सामान्य कोष भी तैयार कर रही है। आधुनिक ढगपर हिन्दुस्तानी व्याकरणभी तैयार कर रही है। इसी भाषामें पाठ्यपुस्तकें भी तैयार कर रही है। हिन्तुस्तानी की परिभाषा क़ायम हुई है "उत्तर भारतकी मामूली बोलचालकी वह भाषा जो हिन्दी और उर्दू दोनोंका आधार है। विज्ञान सम्बन्धी पारिभाषिक शब्द यथासम्भव भारतीय भाषाओंसे लिये जायगे। संस्कृत अरबी या फ़ारसी या अन्य किसी भाषासे ज्योंके त्यों न लिये जायगे। ऐसा न हो तो पाश्चात्य देशोंके प्रचलित शब्द लिये जायँगे। यदि यह भी न हो तो संस्कृत-अरबी, या फ़ारसीके शब्द लिये जायँगे और कोष्टकमें उनके समानार्थक उर्दू या हिन्दीके शब्द लिख दिये जायँगे। डाक्टर अब्दुलहक़के निरीक्षणमें एक बड़ा हिन्दुस्तानी कोष तैयार हो रहा है, जिसमें अरबी-फ़ारसी और संस्कृतके वे सब शब्द ले लिये जायँगे जिनका उपयोग हिन्दी और उर्दूके बड़े-बड़े लेखक करते हैं। डाक्टर अब्दुलहक़ और डाक्टर ताराचन्द एक व्याकरण भी तैयार कर रहे हैं। अच्छी बात है परन्तु हिन्दी-

संसारको यह भी देखते रहना चाहिये कि परिभाषाके अनुसार ही भाषा तैयार हो, कहीं ऐसा न हो कि वह हिन्दुस्तानी हो और न उर्दू हिन्दी ही हो बल्कि एक विचित्र स्वांगसी भाषा बना डाली जाय।

हिन्दी ही राष्ट्रभाषा है—श्री शरच्चन्द्र बसु सुभाष बाबू के बड़े भाई हैं। अपने रांचीके दौरेमें आपने इस बात पर अधिक जोर दिया कि प्रत्येक भारतीयको हिन्दी अवश्य पढ़नी चाहिये। हिन्दी राष्ट्रीय भारतकी राष्ट्रभाषा है। अपनी मातृभाषाका आदर करते हुए भी हिन्दी पढ़ना अनिवार्य है। मातृभाषाका आदर इसलिये करना चाहिये; क्योंकि उसके साथ हमारी संस्कृतिका गहनतम सम्बन्ध होता है। संकीर्ण प्रान्तीयता और प्रान्तीय दृष्टिकोणकी भावना बड़ी गन्दी है। इस दलबन्दी से चाहे थोड़ी बहुत रियायत भले ही मिल जाय किन्तु ऐसे गन्दे विचारों और भावनाओं का परिणाम आत्मघातक सिद्ध होता है।

द्विवेदीजीका स्मारक—सहयोगी "वर्तमान" ने पं० महाबीर प्रसादजी द्विवेदीके स्मारकके सम्बन्ध में एक लेख लिखा है। 'वर्तमान' सम्पादकका कहना है कि आचार्य द्विवेदीजीका स्मारक दौलतपुर और जुही कानपुरमें बनना चाहिये, क्योंकि उनका जन्मस्थान दौलतपुर, सरस्वतीका सम्पादन करनेका स्थान जुही कानपुर है। दौलतपुरमें द्विवेदीजीने एक मन्दिर बनवाया है जिसमें अपनी स्त्रीकी मूर्ति और वीणापाणि सरस्वती की मूर्ति स्थापित की है। सम्पादक जीका प्रस्ताव है कि इन दोनों मूर्तियोंके बीच द्विवेदीजी की भी मूर्ति स्थापित कर देनी चाहिये। द्विवेदीजीने दौलतपुरमें कन्या पाठशाला, प्राइमरी स्कूल, औषधालय और ग्रामपंचायत क़ायम करायी हैं। यह सब चलती रहें इसका उद्योग होना चाहिये। प्रत्येक वर्ष द्विवेदीजीकी जयन्ती उत्सवके समय इन संस्थाओंका भी सम्मिलित उत्सव हुआ करे। इस कार्यके लिये गांववालोंकी कमेटी बना दी जाय। खर्च के लिये एक फ़ण्ड इकट्ठा कर लिया जाय, उसीके ब्याजसे उत्सव हुआ करे। ऐसा प्रबन्ध होना चाहिये कि तकियाके मेलेके बादही सब दूकानें

दौलतपुर आ जावें। इसका नाम द्विवेदी मेला या महाबीरन मेला रखा जावे। इस समय साहित्यचर्चा और कविसम्मेलन भी हुआ करें। जुहीमें बैठकर द्विवेदीजीने साहित्य साधना की है अतएव वहाँ भी चार कमरे बनवा दिये जायँ। एक में द्विवेदीजी की प्रस्तर मूर्ति, दूसरेमें पुस्तकालय और शेष दो कमरे साहित्यिक शोधके लिये रखे जायें। कानपुरमें द्विवेदी जीके बहुतसे भक्त और शिष्य हैं उन्हें इसके लिये उद्योग करना चाहिये। आपका प्रस्ताव है कि जैसे पंजाब सरकारने कविवर मोहम्मद इक़बालके स्मारकके लिये पचीस हज़ार रुपये दिये हैं; उसी तरह संयुक्तप्रान्तीय सरकार भी द्विवेदीजीके स्मारकके लिये धन देवे। यू० पी० सरकारमें श्रीयुत सम्पूर्णानन्दजी, श्रीयुत टण्डनजी और श्रीयुत पन्तजी द्विवेदीजीके भक्त मौजूद हैं, उनसे ऐसी आशा रखना उचित ही है। कानपुरके म्युनिसिपलबोर्डको भी इसमें हाथ बटाना चाहिये। प्रस्ताव उचित और सामयिक है। यदि कुछ लोग इसे अपने हाथमें लेकर उद्योग आरम्भ कर दें तो यह कार्य अवश्य सिद्ध हो सकता है।

स्थायी समिति का द्वितीय अधिवेशन

स्थायी समिति की बैठक सोमवार कार्तिक सौर २७ संवत् १९९६ तारीख १३ नवम्बर १९३९ को बारह बजे दिन से कार्यालय में श्रीपुरुषोत्तमदास जी टंडन की अध्यक्षता में हुई।

१—प्रधान मंत्री ने पिछले दो अधिवेशनों की कार्यवाही पढ़-कर सुनाई जो स्वीकृत हुई।

२—प्रधान मंत्री ने काशी अधिवेशन में स्वीकृत प्रस्तावों को कार्य-रूप में परिणत करने का विषय उपस्थित किया—

१—प्रथम निश्चय के सम्बन्ध में तय हुआ कि प्रस्ताव की प्रति-लिपि दिवंगत आत्माओं के कुटुम्बियों के पास भेज दी जाय।

२—द्वितीय प्रस्ताव तांबे और चाँदी के सिक्कों पर नागरी लिपि को स्थान न दिए जाने के सम्बन्ध में था। निश्चय हुआ कि एक पत्र के साथ प्रस्ताव की प्रति केन्द्रीय भारतीय सरकार के पास भेजी जाय और श्री कृष्णकान्त मालवीय आदि किसी असेम्बली के सदस्य से प्रश्न इस विषय पर कराये जायँ कि निकेल के सिक्कों पर और करेंसी नोटों पर नागरी लिपि को स्थान दिया गया है किन्तु अन्य सिक्कों पर क्यों नहीं दिया गया।

३—तीसरे प्रस्ताव द्वारा हिन्दी भाषा भाषी प्रान्तों की सरकारों तथा अर्द्ध सरकारी संस्थाओं से अपने दफ़्तरों और कचहरियों में सब के समझने लायक सरल भाषा का प्रयोग करने के लिए अनुरोध किया गया था। निश्चय हुआ कि इस प्रस्ताव की नक़ल प्रान्तीय सरकारों के पास और आवश्यकतानुसार मध्य भारत और राज-पूताना की रियासतों के अधिकारियों के पास भेजी जाय। प्रचार-विभाग इस विषय में आवश्यक आन्दोलन करे और इन्दौर रियासत के सम्बन्ध में श्री भाई कोतवाल से सहायता ले।

४—चौथा प्रस्ताव नरेन्द्रदेव समिति की सिफारिश को अस्वी-कार करने के लिए प्रान्तीय सरकार से प्रार्थना के सम्बन्ध में था। निश्चय हुआ कि इस सम्बन्ध में प्रान्तीय सरकार को लिखा जाय।

इस प्रस्ताव के पेश होने पर काका कालेलकर जी ने समर्थकों में से अपना नाम यह कहकर वापस ले लिया कि प्रारम्भिक अवस्था में दो लिपियों का बोझ डालने से उनका मतलब बच्चे की शिक्षा के बिल्कुल प्रारम्भ से था किन्तु श्री नरेन्द्रदेव जी से बात करने के बाद मालूम हुआ कि दो लिपियाँ पाँच वर्ष की पढ़ाई के बाद अनिवार्य रूप से सिखाई जायँगी न कि उसके पहिले।

५—पाँचवाँ प्रस्ताव बिहार सरकार की संरक्षता में प्रकाशित रीडरों और 'होनहार' मासिक पत्र तथा मास लिटरेसी के मुख पत्र 'रोशनी' की भाषा और वहाँ की सरकार द्वारा नियुक्त हिन्दुस्तानी कमेटी की योजना के विरोध में था। निश्चय हुआ कि (क) भाग बिहार सरकार को भेजा जाय और बिहार प्रान्तीय सम्मेलन को लिखा जाय कि वह इसके सम्बन्ध में आन्दोलन करे। (ख) भाग हिन्दुस्तानी कमेटी को भेजा जाय और बिहार प्रान्तीय सम्मेलन को लिखा जाय कि वह आन्दोलन करके इस निश्चय के विरुद्ध यदि उपर्युक्त कमेटी कोई कार्यवाही करे तो उसका तीव्र विरोध करे।

६—छठवें निश्चय द्वारा स्थायी समिति को संवत् ९८ के अन्त तक के लिए राष्ट्र भाषा प्रचार समिति को संगठित करने का आदेश दिया गया था। सर्वसम्मति से नीचे लिखे सदस्यों की समिति निर्मित हुई।

श्री अम्बिका प्रसाद वाजपेयी सभापति, श्री राजेन्द्र प्रसाद सभापति राष्ट्रभाषा परिषद्, श्री बाबूराम सक्सेना प्रधान मन्त्री, श्री पद्मकान्त मालवीय प्रचार मन्त्री, श्री रामलखन शुक्ल प्रबन्ध मन्त्री, राष्ट्रभाषा प्रचार मन्त्री, श्री पुरुषोत्तम दास टंडन, श्री काका कालेलकर, श्री महात्मा मोहन दास कर्मचन्द गांधी, श्री जमनालाल बजाज, श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल, श्री कृष्णदास जाजू, श्री जवाहरलाल नेहरू, श्रीपेरीन बेन केप्टन, श्री बाल गंगाधर खेर, श्री शंकर राव देव।

७—सातवाँ निश्चय राष्ट्रीय जीवन में हिन्दी के स्थान और रूप के सम्बन्ध में आक्रमणों का प्रतिकार करने के विषय में था। निश्चय हुआ कि प्रचार समिति इसके अनुसार काम करे और प्रचार समिति

को यह आदेश दिया जाता है कि वह अपने साधारण कार्यों के अतिरिक्त चौथे और सातवें निश्चय पर विशेष ध्यान दे और आवश्यकता समझे तो आन्दोलन के लिए एक उपसमिति बना दे।

८—आठवां निश्चय दिल्ली विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में हिन्दी को एक स्वतंत्र और ऐच्छिक विषय रखने की ओर उक्त विश्वविद्यालय के अधिकारियों की उपेक्षा दृष्टि के सम्बन्ध में था। निश्चय हुआ कि निम्न तीन सज्जनों का प्रतिनिधि मंडल दिल्ली यूनिवर्सिटी के वाइस चांसलर से इस सम्बन्ध में मिले।

श्री प्रधान मंत्री, श्री कृष्ण कान्त मालवीय अथवा श्री श्रीप्रकाश जी, श्री देश बन्धु गुप्त (सम्पादक, 'तेज')। आवश्यकता पड़ने पर प्रधान मंत्री को अधिकार होगा कि वह कमी की पूर्ति कर लें।

९—नवां निश्चय भारत के विश्वविद्यालयों में हिन्दी को भी उच्च शिक्षा के स्वतंत्र और प्रधान विषय का स्थान देने के सम्बन्ध में था। निश्चय हुआ कि इसके सम्बन्ध में विश्वविद्यालयों को लिखा जाय।

१०—दसवां निश्चय हिन्दी भाषा भाषी प्रान्तों के विश्वविद्यालयों में हिन्दी को शिक्षा का माध्यम बनाने के सम्बन्ध में था। निश्चय हुआ कि विद्यालयों को लिखा जाय। इसी प्रस्ताव से संबंध रखने वाली श्री गुलाबराय जी की यह योजना उपस्थित की गई :—

हिन्दी भाषा को बोर्डों तथा विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षा का माध्यम बनाने के लिये सम्मेलन निम्नलिखित प्रारम्भिक कार्य आवश्यक समझता है।

१—भिन्न भिन्न विषयों के पाठ्यक्रम में आने योग्य पुस्तकों की सूची बनाना।

२—उस सूची को बोर्डों और विश्वविद्यालयों में पेश कराकर उनसे यह प्रार्थना करना कि उन पुस्तकों को अपने पाठ्यक्रम में स्वीकार कर लें या उनके पढ़े जाने की सिफ़ारिश करें।

३- विश्वविद्यालयों से प्रार्थना करे कि कम से कम दो ज्ञान-विस्तारक व्याख्यान (Extension lectures) हिन्दी में करावे।

४--तर्कशास्त्र, नागरिक शास्त्र, मनोविज्ञान आदि के हिन्दी द्वारा पढ़ाये जाने का प्रदर्शन करावे।

साहित्य सम्मेलन इस कार्य को पूरा करने के लिए एक उपसमिति बनावे जो इस कार्य को शीघ्रता से हाथ में ले।

प्रथम तीन प्रस्ताव स्वीकृत हुए। निश्चय हुआ कि विषयानुसार सूची बनाने का काम तीन सदस्यों की एक समिति करे और यह भी अच्छा होगा कि अन्य देशी भाषाओं की पुस्तकों की भी सूची बनाई जाय। उप समिति में श्री गुलाब राय, श्री रामचन्द्र टंडन, श्री परीक्षा मंत्री (संयोजक) चुने गये।

११—ग्यारहवें निश्चय द्वारा बनारस-राज्य की शासन परिषद से यह प्रार्थना की गई थी कि वह राज्य की सारी कार्यवाही नागरी-लिपि और हिन्दी भाषा द्वारा करे और राज्य के स्टैम्पों पर भी नागरी-लिपि को स्थान दे। निश्चय हुआ कि प्रस्ताव की प्रतिलिपि राज्य को भेजी जाय और साथही नागरी प्रचारिणी सभा से अनुरोध किया जाय कि वह एक प्रतिनिधि मंडल ले जाकर परिषद से मिले।

१२—बारहवें निश्चय द्वारा राष्ट्र भाषा, उसका प्रचार और उसकी योजना आदि के सम्बन्ध में हिन्दी साहित्य सम्मेलन की नीति निर्धारित करने के लिए एक समिति नियुक्त की गई थी। प्रधान मंत्री ने बताया कि समिति ने अपना कार्य आरम्भ कर दिया है। उसके एक सदस्य श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी ने अपना त्याग-पत्र भेजा है। निश्चय हुआ कि श्री चतुर्वेदी जी से अनुरोध किया जाय कि वह अपना त्याग-पत्र वापस ले कर उपसमिति को अपना बहुमूल्य सहयोग प्रदान करें।

१३—तेरहवाँ प्रस्ताव साहित्यिक कथाओं से सम्बन्ध रखने वाली फ़िल्मों का कथानक सम्मेलन की कार्यसमिति से स्वीकृत करा कर प्रकाशित करने के सम्बन्ध में था। निश्चय हुआ

कि प्रतिलिपि कम्पनियों के पास भेजी जाय।

१४—चौदहवाँ प्रस्ताव रेडियो की भाषा के विरोध के सम्बन्ध में था। निश्चय हुआ कि प्रस्ताव की प्रतिलिपि डाइरेक्टर के पास भेजी जाय और असेम्बली में प्रश्न कराये जायँ। प्रचार समिति इस सम्बन्ध में आन्दोलन करे और यदि उचित हो तो रेडियो-भाषा विरोधी दिवस भी मनाया जाय।

कार्य समिति तथा उप विभिन्न समितियों का संगठन

४—प्रधान मंत्री ने नवीन कार्य समिति तथा अन्य विभिन्न समितियों के संगठन का विषय उपस्थित किया। नियम (२२) के अनुसार नीचे लिखे कार्य समिति के सदस्य निर्वाचित हुये :—

श्री लक्ष्मीधर वाजपेयी, श्रीमती चन्द्रावती त्रिपाठी, श्री उदयनारायण तिवारी, श्री ब्रजराज, श्री रामकुमार वर्मा, श्री कृष्णदेव प्रसाद गौड़, श्री काका कालेलकर, श्री सांवलिया बिहारी लाल वर्मा, श्री बाबूराव-विष्णु पराड़कर, श्री अयोध्यानाथ शर्मा।

५—उपनियम (१८) के अनुसार विश्वविद्यालय परिषद के लिए नीचे लिखे सदस्य निर्वाचित हुए।

श्री गुरुप्रसाद टंडन, श्री मनोरंजन प्रसाद सिंह, पटना श्री बालकृष्ण पाण्डेय, श्री कृष्णदेव प्रसाद गौड़, श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, श्री गुलाब राय, श्री काका कालेलकर, श्री सांवलिया बिहारी लाल वर्मा, श्री भगवती प्रसाद वाजपेयी, श्री अयोध्यानाथ शर्मा, श्री भगीरथ प्रसाद दीक्षित, श्री नीतीश्वर प्रसादसिंह, श्री सीताराम चतुर्वेदी, श्री श्रीकृष्ण शुक्ल, श्री बेनीप्रसाद अग्रवाल, डा० सत्यप्रकाश, श्री सत्यनारायण पाण्डेय, डा० बनारसी प्रसाद सक्सेना, श्री वाचस्पति उपाध्याय, श्री शालिग्राम वर्मा

६—उपनियम (३०) के अनुसार नीचे लिखे सदस्य साहित्य-समिति के लिये चुने गए:—

श्री पुरुषोत्तमदास टंडन, श्री रामकुमार वर्मा, श्री हजारी प्रसाद

द्विवेदी, शांतिनिकेतन, बोलपुर, बंगाल, श्री लक्ष्मीधर वाजपेयी, श्री बालकृष्ण पाण्डेय।

७—उपनियम (४३) के अनुसार नीचे लिखे सदस्य संग्रह-समिति के लिए चुने गये :—

श्री प्रयागदत्त शुक्ल, श्री ब्रजमोहन व्यास, श्री रामचन्द्र टंडन, श्री वासुदेव शरण अग्रवाल, श्री नारायण चतुर्वेदी, श्री व्योहार राजेन्द्र सिंह, श्री छविनाथ पाण्डेय, डा० मोतीचन्द, श्री रायकृष्ण दास, श्री पुरुषोत्तमदास टंडन, श्री लक्ष्मीधर वाजपेयी, डा० सत्यप्रकाश, श्री बनारसी दास चतुर्वेदी, श्री गिरिधर शर्मा नवरत्न।

८—उपनियम (३६) के अनुसार प्रचार समिति के लिए निम्नलिखित सदस्य चुने गए :—

श्री पुरुषोत्तमदास टंडन, श्री काका कालेलकर, श्री भाई कोतवाल, श्री वेंकटेशनारायण तिवारी, श्री मदनमोहन सेठ, श्री बाबूराव-विष्णु पराड़कर, श्री व्योहार राजेन्द्र सिंह, श्री वाचस्पति पाठक, श्री उदयनारायण तिवारी, श्री चन्द्रबली पाण्डेय, श्री छबिनाथ पाण्डेय, श्री नीतीश्वर प्रसाद सिंह, श्री कृष्णदेव प्रसाद गौड़, श्री शिवगोविन्द मिश्र।

९—प्रधान मंत्री ने विभिन्न पारितोषिक समितियों के संगठन का विषय उपस्थित किया। सर्व सम्मति से मंगलाप्रसाद पारितोषिक समिति, सेकसरिया पारितोषिक समिति, मुरारका पारतोषिक समिति, श्री राधामोहन गोकुल जी पुरस्कार समिति, नारंग पुरस्कार समिति तथा रत्नकुमारी पुरस्कार समिति का संगठन हुआ।

१०—प्रधान मंत्री ने नियमों में कुछ संशोधनों की आवश्यकता का उल्लेख किया। निश्चय हुआ कि नीचे लिखे सदस्यों की समिति विचार कर आवश्यक प्रस्ताव पेश करे :—

श्री पुरुषोत्तम दास टंडन, श्री लक्ष्मीधर वाजपेयी, श्री प्रधान-मंत्री (संयोजक)।

११—श्री पुरुषोत्तमदास टंडन जी ने 'हिन्दी समाचार सर्विस'

काशी का अट्ठाइसवाँ सम्मेलन

हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अट्ठाइसवाँ अधिवेशन गत विजयादशमी के अवसर पर काशी में बड़े समारोह के साथ सम्पन्न हो गया। इस अवसर पर संयुक्तप्रान्त, बिहार, राजपूताना, मध्यभारत, मध्यप्रान्त, बम्बई, पंजाब, आसाम, मद्रास और बंगाल आदि के प्रसिद्ध साहित्य सेवियों, हिन्दी प्रेमियों तथा प्रतिनिधियों का अपूर्व समारोह रहा। सभी ने राष्ट्र भाषा हिन्दी के इस महोत्सव में बड़े उत्साह और सहयोग के साथ भाग लिया।

सम्मेलन के मनोनीत सभापति वयोवृद्ध पंडित अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी थे। आप के स्वागत में विशाल जुलूस निकाला गया। सभापति के आसन से वाजपेयी जी ने जो भाषण दिया वह कई दृष्टियों से बड़ा महत्वपूर्ण था। आपने हिन्दी की उन्नति और रक्षा के लिए कुछ नवीन योजनाओं का भी अपने भाषण में उल्लेख किया, जो वास्तव में हिन्दी संसार के लिए विचारणीय हैं। स्वागताध्यक्ष महामना पंडित मदनमोहन मालवीय थे।

के संगठन का विषय पेश किया और उसकी आवश्यकता बताते हुए यह अभिप्राय प्रगट किया कि सम्मेलन के तत्वावधान में एक लिमिटेड कम्पनी द्वारा यह काम कराया जाय। निश्चय हुआ कि कार्य समिति को आदेश किया जाता है कि वह योजना पर आवश्यक विचार करे। कार्य समिति को अधिकार दिया जाता है कि सम्मेलन की ओर से ३०००) तक के हिस्से उचित शर्तों पर ख़रीद ले।

बाबूराम सक्सेना,

एम० ए०, डी० लिट्, प्रधान मन्त्री

आपने अपने भाषण में राष्ट्र भाषा हिन्दी की रक्षा के लिए हिन्दी संसार का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित किया।

सम्मेलन के अधिवेशन के साथ ही साहित्य परिषद, दर्शन-परिषद, राष्ट्रभाषा परिषद, विज्ञान परिषद और समाज शास्त्र परिषद के अधिवेशन क्रमशः पण्डित सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', डाक्टर भगवानदास, डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद, डाक्टर गोरखप्रसाद और आचार्य नरेन्द्रदेव के सभापतित्व में हुए। इन परिषदों के स्वागताध्यक्ष क्रमशः पण्डित रामचन्द्र शुक्ल, प्रोफ़ेसर भीखनलाल आत्रेय, पण्डित लक्ष्मणनारायण गर्दे, डाक्टर मुकुन्दस्वरूप वर्मा और डाक्टर परमात्माशरण थे। सभापतियों और स्वागताध्यक्षों के भाषण महत्वपूर्ण हुए। इन परिषदों के साथ ही, महिला साहित्य परिषद, पत्रकार सम्मेलन, नवयुवक साहित्य परिषद, कहानी सम्मेलन, हिन्दी पुस्तक व्यवसायी सम्मेलन तथा कवि सम्मेलन के अधिवेशन भी श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान, पण्डित माखनलाल चतुर्वेदी, श्री भगवतीचरण वर्मा, श्रीयुत सुदर्शन, श्री रामलोचन शरण और पण्डित देवीदत्त शुक्ल के सभापतित्व में सफलता के साथ सम्पन्न हुए।

सम्मेलन के इस अधिवेशन में १४ महत्वपूर्ण प्रस्ताव स्वीकृत हुए। प्रस्तावों में हिन्दी भाषा के प्रचार, उसकी रक्षा तथा नागरी-लिपि की उन्नति पर विशेष ज़ोर डाला गया है।

सम्मेलन के स्वागत अधिकारियों ने आगत विद्वानों, हिन्दी प्रेमियों तथा प्रतिनिधियों का अच्छा स्वागत-सत्कार किया। इसलिए स्वागत-समिति के समस्त पदाधिकारी धन्यवाद और बधाई के पात्र हैं। उन्होंने सम्मेलन को सफल बनाने का अथक परिश्रम किया और काशी का यह अधिवेशन बड़ी सफलता पूर्वक सम्पन्न हुआ।

———

नियमावली

१—सम्मेलन-पत्रिका प्रति मास प्रकाशित होगी।

२—हिन्दी सा० स० के आदर्शों की पूर्ति में सहायक होना पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है।

३—पत्रिका का वार्षिक मूल्य १) तथा एक अङ्क का =) होगा।

४—पत्रिका के संबन्ध में पत्र-व्यवहार साहित्य-मन्त्री, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के पते से करना चाहिए।

५—पत्रिका-संबन्धी पत्र-व्यवहार में जवाब के लिए टिकट आने चाहिए; अन्यथा आवश्यक-अनावश्यक का विचार कर पत्रोत्तर दिया जायगा।

२८०.

रजिस्टर्ड नं० ए० ६२९

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन द्वारा
प्रकाशित कुछ पुस्तकें

(१) सुलभ-साहित्य-माला

१ भूषण ग्रन्थावली २)
२ हिन्दी साहित्य का सं० इतिहास ॥)
३ भारत गीत ≡)
४ राष्ट्र भाषा ॥)
५ शिवा बावनी ≡)
६ सरल पिंगल ।)
७ भारतवर्ष का इतिहास २)
८ ब्रजमाधुरी सार ३)
९ पद्मावत पूर्वार्द्ध १)
१० सत्य हरिश्चन्द्र ।–)
११ हिन्दी-भाषा सार ।॥)
१२ सूरदास की विनय पत्रिका ≡)
१३ नवीन पद्य संग्रह ।॥)
१४ कहानी-कुञ्ज ॥=)
१५ बिहारी संग्रह ≡)
१६ कवितावली १)
१७ सुदामा चरित्र ।)
१८ कबीर पदावली ।॥=)
१९ हिन्दी गद्य निर्माण १॥)
२० हिन्दी साहित्यकी रूप रेखा ।)
२१ सती करुणाकी ॥)
२२ हिन्दी पर फ़ारसी का प्रभाव ॥=)
२३ पार्वती मङ्गल ।)

(२) साहित्य रत्नमाला

१ अकबर की राज्य व्यवस्था १)

(३) वैज्ञानिक पुस्तक माला

१ सरल शरीर विज्ञान ॥), ।॥)
२ प्रारम्भिक रसायन १)
३ सृष्टि की कथा १)

(४) बाल साहित्य माला

१ बाल पद्य रत्न ॥)
२ वीर सन्तान ।=)
३ बिजली =)

(५) ओझा अभिनन्दन ग्रन्थ

१६)

(६) विविध पुस्तकें

१ महात्मा गाँधी के निजी पत्र ।–)
२ टालस्टाय के विचार ।–)
३ इतना तो जानो ।–)
४ सनयाट सेन ।)
५ संजीवनी ।–)
६ नीति दर्शन ।॥)
७ लाजपतराय की जीवनी ।॥)

मुद्रक—गिरिजाप्रसाद श्रीवास्तव, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग।
प्रकाशक— साहित्य मंत्री, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

मार्गशीर्ष, सम्वत् १९९६

सम्मेलन-पत्रिका

[भाग २७, संख्या ४]

संपादक

श्री ज्योतिप्रसाद मिश्र निर्मल

साहित्य-मंत्री

हिन्दी साहित्य सम्मेलन

प्रयाग

वार्षिक १)

एक प्रति ≈)

विषय-सूची

सम्मेलन-पत्रिका

भाग २७] मार्गशीर्ष १९९६ [संख्या ४

महाकवि केशव की 'कवि-प्रिया'

[लेखक - प्रोफ़ेसर विश्वनाथ प्रसाद मिश्र एम० ए० 'साहित्यरत्न']

(गतांक की पूर्ति)

वृषभ वाहिनो अङ्ग उर बासुकि लसत प्रवीन।
शिव सँग सोहै सर्वदा शिवा की राय प्रवीन॥

वृषभ वाहिनी (बैल पर सवार होने वाली, धर्म को वहन करने वाली—वृषभ से धर्म का रूपक बाँधा जाता है) बासुकि (नाग विशेष, सुगन्धित माला) प्रवीन (चतुर, वीणा) और शिव (महादेव, मंगलस्वरूप) शब्दों के सहारे विशेष चमत्कार दिखाया गया है। एक दोहा जो बहुत प्रचलित है उसका भी नमूना लीजिये। यह तीन पर घटेगा।

चरण धरत चिन्ता करत भावत नींद न भोर।
सुबरण को सोधत फिरत, कवि व्यभिचारी चोर॥

चरण (छन्द-पाद, पैर) और सुवरण (सुन्दर अक्षर, सुन्दर रंगवाली स्त्री, सोना) शब्द श्लिष्ट हैं। कवि ने कैसी खूबी से तीनों का समीकरण किया है।

अलंकारों का साहित्य में क्या महत्व है, इस बात को समझाने के लिए कविता और बनिता के कुछ एक ही ऐसे विशेषण रखे हैं जो श्लिष्ट हैं।

जदपि सुजाति, सुलच्छणी, सुबरन, सरस, सुवृत्त।
'भूषण' बिनुन विराजई कविता, बनिता मित्त॥

इन श्लिष्ट शब्दों के सूत्र से कैसा बँधान बँधा है ? अर्थात् सब प्रकार सब गुणों से युक्त होने पर भी जैसे स्त्री बिना गहनों के शोभित नहीं होती वैसे-

ही बिना अलंकारों के सब काव्यांगों से युक्त रहने पर भी कविता फीकी रहती है। सचमुच अलंकारों का महत्व इतना ही बड़ा है।

केशवदास जी ने षट् ऋतुओं का श्लिष्ट वर्णन किया है जैसा बाबा दीनदयाल गिरि जी ने लिखा है। बसन्त का उदाहरण देखिये—

शीतल समीर शुभ गंगा के तरंगयुत,
अंबर विहीन बपु बासुकि लसंत हैं।
सेवत मधुप गण गजमुख परभृत
बोल सुन होत सुखी संत औ असंत है॥
अमल अदल रूप मंजरी सुपद रज,
रंजित अशोक दुख देखत नसंत है।
जाके राज दिसि दिसि फूले हैं सुमन सब,
शिव को समाज कैंधों केशव बसंत है॥

इसका अर्थ शिव और बसंत दो पक्षों में लगेगा। शिव के पक्ष में अंबर का अर्थ वस्त्र, बासुकि का नाग, मधुप का देवता, परभृत का षड़ानन, अदल (अपर्णा) का पार्वती, रूपमंजरी का सुन्दरी, अशोक का शोकहीन और सुमन का अर्थ देवता है। बसंत पक्ष में शीतल का अर्थ चंदन, गंगा के तरंगयुत का ठंढी, अंबर का आकाश, विहीन वपु का कामदेव, वासुकी का पुष्पमाला, परभृत का कोकिल, अदल का सर्वोत्तम, रूपमंजरी का रूपवान स्त्री, अशोक का वृक्ष विशेष अर्थ है। इसी प्रकार अन्य ऋतुओं के उदाहरण भी समझना चाहिए। कविप्रिया में केशव जी ने जहां श्लेषालंकार के उदाहरण दिये हैं वहां दो से लेकर पांच अर्थ तक के श्लिष्ट छन्दों के उदाहरण दिये हैं। उसमें से तीन अर्थों के श्लेष वाला छन्द हम यहां अवलोकनार्थ उद्धृत करते हैं जो कि चित्तौराधिपति प्रतापसिंह जी के पुत्र अमरसिंह जी की प्रशंसा में लिखा गया है और श्लेष से वह महादेव और समुद्र के ऊपर भी घट जाता है। अमरसिंह की प्रशंसा में और भी कई छन्द इस ग्रन्थ में हैं—

परम विरोधी अविरोधी ह्वै रहत सब,
दानिन के दानि, कवि केशव प्रमान है।

अधिक अनन्त आप सोहत अनन्त सङ्ग,
अशरण शरण, निरक्षक निधान है।
हुतभुक हितमति, श्रीपति बसत हिय,
भावत है गङ्गा जल जग को निदान है।
केशौराय की सौं कहैं केशोदास देखि देखि,
रुद्र की समुद्र की अमरसिंह रान है॥

रुद्र, समुद्र और राणा अमरसिंह के पक्ष में इस छन्द का अर्थ लगेगा। इस छन्द के शब्दों का तीनों पक्ष में भिन्न भिन्न अर्थ होगा।

अलंकार शास्त्र में 'उपमा' ही सबसे मुख्य अलंकार है। इसकी ही सत्ता पर कितने ही अन्य अलंकारों का अस्तित्व निर्भर है। यदि सच पूछा जाय तो हम तो यही कहेंगे कि उपमा ही एक श्रेष्ठ अलंकार है। यही सब का राजा है। ऐसा ही प्राचीन लोगों ने माना भी है। इसी उपमा अलंकार में एक सुन्दर छन्द केशव ने सीता जी के रूप की प्रशंसा में कहा है—

को है दमयन्ती इन्दुमती रति राति दिन,
होहिं न छबीली छन छवि जो सिंगारिये।
केशव लजात जलजात, जात वेद ओप,
जातरूप वापुरो विरूपसो निहारिये॥
वदन निरूपन निरूपम निरूप भये.
चन्द बहुरूप अनुरूप कै विचारिये।
सीता जी के रूप पर देवता कुरूप कोहैं,
रूप ही के रूपक तौ बारि बारि डारिये॥

केशवदास जी ने ठीक इसे तुलसीदास जी के वर्णन से मिला दिया है। केशवदास जी ने यद्यपि खूब सोच विचार कर यह लिखा है पर तुलसीदास जी ने बालकांड में सीता जी के रूप के वर्णन की इतिश्री कर दी है। वैसा उत्तम वर्णन संसार के किसी साहित्य में नहीं है। तुलसीदास जी ने भी सरस्वती, पार्वती, लक्ष्मी और रति से सीता जी को बढ़ कर होने का कारण लिखा है; उसके पश्चात् लिखा है—

"जौं छवि-सुधा पयोनिधि होई,
परम रूप मय कच्छप सोई॥

सोभा रजु मन्दर सिंगारू,
मथइ पानि पङ्कज निज मारू ॥
एहि विधि उपजई, लच्छि जब, सुन्दरता सुख-मूल ।
तदपि सकोच समेत कवि, कसहिं सीय समतूल ॥

विरोधाभास अलंकार भी केशव ने अच्छा लिखा है। कविप्रिया में 'विरोधाभास' को प्रायः 'विरोध' अलंकार के नाम से केशव जी ने लिखा है। उदाहरण लीजिये—

पावक, फणि, विष भस्म मुख हर पवर्ग मय मान ।
देत जु हैं अपवर्ग को पारवती पति जान ॥

यह दोहा पार्वती जी के दान का वर्णन है अर्थात् अपवर्ग (मोक्ष) देने की सामर्थ्य शिव जी में पार्वती-पति होने से है नहीं तो उनका शरीर तो पवर्ग (प. फ. ब. भ. म) मय है। ऊपर का दोहा यदि निम्न संस्कृत श्लोक के भाव पर नहीं तो इसे देख कर तो अवश्य ही लिखा गया होगा। कवि ने उसको ऐसा उत्तम रूप दे दिया है कि वह खिल उठा है। श्लोक है—

"पिनाक, फणि, बालेन्दु भस्म मंदाकिनी युता ।
पवर्ग रचिता मूर्तिरपवर्ग प्रदायिनी ॥"

आगे रामचन्द्र जी के स्वभाव और कार्य का वर्णन करते हुए उसमें श्लेष के बल पर विरोध दिखाते हैं:—

परम पुरुष कुपुरुष सँग सोभियत
दिन दान शील पै कुदान ही सों रति हैं ।
सूर कुल कलश पै राहु को रहत सुख,
साधु कहैं साधु परदार प्रिय अति हैं ॥
अकर कहावत धनुष धरे देखियत,
परम कृपाल पै कृपान कर पति हैं ।
बिद्यमान लोचन द्वै, हीन वाम लोचन सों,
केशोराय राजाराम अद्भुत गति हैं ॥

श्लेष का कुछ सहारा लेकर परिसंख्या अलंकार भी कहा जाता है। इस अलंकार के वर्णन में भी केशव जी बड़े सिद्धहस्त थे। कविप्रिया में इन्होंने परिसंख्या को भी श्लेष ही के अन्तर्गत माना है। उसे 'नियम श्लेष' के नाम

से लिखा है। किसी वस्तु के धर्म को उस स्थान से उठाकर केवल विशेष-स्थान पर स्थापित करना यही परिसंख्या अलंकार है। रामचन्द्र जी के राज्य की उत्तमता में एक छन्द जो केशवदास जी ने लिखा है उसे उदाहरण-स्वरूप उद्धृत करते हैं—

बैरी गाय ब्राह्मन को कालै सब काल जहाँ,
कवि कुल ही को सुबरण हर काज है।
गुरु सेज गामी एक बालकै बिलोकियत,
मातँगनि ही को मतवारो को सो साज है।
अरि नगहीन, प्रति द्दात है अगम्या गौन,
दुर्गन ही केशोदास दुर्गति सी आज है।
राजा दशरथ सुत राजा रामचन्द्र तुम,
चिरु चिरु राज करौ जाको ऐसो राज है॥

समता करते हुए भी उपमेय को उपमान से भिन्न बताना यही 'व्यतिरेकालंकार' है। इसका भी निर्वाह केशव जी ने कविप्रिया में खूब किया है। यहाँ पर भी उनका असली अस्त्र श्लेष ही काम में आया है। केशव जी ने व्यतिरेक के दो भेद माने हैं 'युक्ति व्यतिरेक' और 'सहज व्यतिरेक'। इनमें 'युक्ति व्यतिरेक' का उदाहरण ऐसा उत्कृष्ट बन पड़ा है कि हिन्दी-साहित्य में ऐसा और किसी भी कवि से नहीं बन पड़ा। इसमें राजा इन्द्रजीतसिंह की कल्पवृक्ष और इन्द्र के साथ समता दिखायी गयी है पर अन्तिम एक चरण में भिन्नता भी दर्शायी गयी है। कवि का यह छन्द उसकी प्रतिभा का उज्ज्वल उदाहरण है।

सुन्दर सुखद अति अमल सकल विधि,
सदल सफल बहु सरस सँगीत सों।
विविधि सुबास युत केशोदास आसपास,
राजै द्विजराज तनु परम पुनीत सों।
फूले ही रहत दोऊ दीवेहेत प्रतिपल,
देत काम जानि सब मीतहू अमीत सों।
लोचन बचन गति बिनु इतनोई भेद,
इन्द्र तरुवर अरु इन्द्र इन्द्रजीत सों॥

अर्थ जरा सावधानी से लगाने से सरलता पूर्वक लग जाता है। यहां पर इन्द्रजीत शब्द को केशवदास जी ने अपने बुद्धि-विलास से सार्थक कर दिया। अब यमकालंकार की छटा देखिये।

हरित हरित हार हेरत हियो हेरात,
हारी हौं हरिन नैनी हरि न कहूँ लहौं।
बनमाली ब्रज पर बरसत बनमाली,
बनमाली दूर दुख केशव कैसे सहौं।
हृदयकमल नैन, देखिकै कमल नैन,
होहुँगी कमल नैनो, और हौं कहा कहौं।
आप घने घनस्याम, घन ही से होत घन,
सावन के द्यौस घनस्याम बिनु क्यों रहौं॥

यमक की अद्भुत शोभा, पहले चरण में हकार का अनुप्रास, और कितना सुन्दर शब्द संगठन है। साथ ही करुणा-विरह का करुण-क्रन्दन भी हृदय को बेध रहा है। कवित्त सुनने के पश्चात् ही श्रोता विरहनी का करुण-स्वर हृदयंगम कर लेता है।

केशव का विरह वर्णन भी बहुत अच्छा है। दो एक उदाहरण देखिये—

मेह कि हैं सखि आँसू उसाँसनि साथ निसासु बिसासिनि बाढ़ी।
हाँसी गयी उड़ि हंसिनि ज्यों चपला सम नींद भई गति काढ़ी॥
चातकि ज्यौं पिउ पिउ रटै चढ़ी ताप तरंगिनि ज्यों तन गाढ़ी।
केशव वाकी दसा सुनि हौं अब आगि विना अँग अंगन डाढ़ी॥

पद्माकर ने इसी भाव को लेकर उसे कुछ बढ़ाकर लिखा है।

"ताके तन ताप की तो बात ही कहा मैं कहूँ.
मेरेई छुए ते तुम्हें ताप चढ़ि आवैगी।

पति के जाने में नायिका जो जो कारण बता कर उसे विदेश गमन से रोकती है उसे केशवदाज जी ने आक्षेपालंकार के अन्तर्गत माना है। उसमें के कुछ आक्षेप सुनने और समझने लायक़ हैं। राधिका जी की 'चित्रा' सखी कृष्ण से उनके प्रवासित होने के सम्बन्ध में आक्षेप करती है—

गुनन वलित, कल सुरन कलित गान,
ललिता ललित गीत श्रवण रचाइ हैं।

चित्रिनी हौं चित्रन मैं परम विचित्र तुम्हैं,
चित्रन मैं देखि देखि नैनन नवाइ हैं ॥
काम के विरोधी मत शोधि शोधि साधि सिद्धि,
बोधि बोधि अवध के बासर गँवाई हैं ॥
केसोराम की सौं मोहि कठिन यहै है बाकी,
रसनै रसिक लाल पान को खवाइ हैं ?

केशवदास जी की सुकुमारता का वर्णन देखिये। जिसके भाव लेकर या जिसे देखकर अन्य परवर्ती कई कवियों ने अपने स्वतंत्र छन्द रचे हैं।

दूरिहै क्यों भूपन बसन दुति यौवन की,
देह ही की ज्योति होति द्यौस ऐसी राति है।
नाह की सुवास लागै ह्वै है कैसी केशव,
सुभाव ही की वास भौंर भीर फोर खाति है ॥
देखि तेरी मूरति की सूरत बिसूरति हौं
लालन को दृग देखिबे को ललचाति है।
चलगै क्यों चन्द्रमुखी कुचनि के भार भये,
कचन के भार तें लचकि लंक जाति है ॥

इसी प्रकार, विहारी, देव, पद्माकर आदि ने भी भाव लिए हैं।

संसार झूठा है पर सच्चा क्यों देख पड़ता है ? इसका सटीक (ठीक) कारण केशवदास जी बताते हैं—

अनही ठीक को ठग, जानै ना कुठौर ठौर,
ताही वै ठगावै ठेलि जाही को ठगतु है।
याके डर तू निडर ! डग न डगत डरि,
डर के डरन डगि डोंगी ज्यों डगतु है।
ऐसे वसोवास ते उदास होय केशोदास,
केशो न भजतु कहि काहे की खगतु है।
झूठो है रे झूठा जग राम की दोहाई काहू,
साँचे को कियो है ताते साँचो सो लगतु है ॥

सुन्दर दार्शनिक विचार और कविपांडित्य का कैसा संमिश्रण किया गया है ! सचमुच सच्चे परमात्मा की कृति होने से ही संसार सच्चा जान पड़ता है।

कवि-प्रतिभा के बल पर केशवदास जी ने कैसी खूबी के साथ इस बात को साबित कर दिया है जो विचारणीय है।

केशवदास जी ने कविप्रिया में 'दीपकालंकार' के अन्तर एक 'मणि-दीपक' अलंकार बतलाया है। उसमें किसी अच्छी वस्तु का उत्तम वर्णन करना ही 'मणि दीपक' अलंकार माना है। इसका मुख्य तात्पर्य उचित प्रयोग से है जिसे उर्दू में 'मौजूनियत' कहते हैं। उर्दू के कवि जिस प्रकार मौजूँ शब्दों का प्रयोग करते हैं उसी का बहुत अच्छा वर्णन केशव ने किया है। इस अलंकार के उदाहरण में दो छन्द दिये गये हैं। दोनों में औचित्य का इतना ख्याल रखा गया है कि उसे केशव की उत्तम कृति में स्थान देना उचित है। उन दोनों में से मैं यहां एक छन्द उद्धृत करता हूँ।

दक्षिण पवन दक्षि दक्षिणी रमण लगि,
लोलन करत लौंग लवली लता को फरु।
केशोदास केसर कुसुम कोश रस कण,
तनु तनु तिनहूँ को सहत सकल भरु।
क्यों हू कहूँ होत हठि साहस विलास वश,
चंपक चमेली मिलि मालती सुबास हरु।
शीतल सुगन्ध मन्द गति नन्द नन्दकी सौं,
पावत कहाँ ते तेज तोरिबो को मान तरु॥

बसंत की वायु का कैसा उत्तम वर्णन है। उस पवन को दक्षिण नायक के साथ मिलाया गया है। लोलन करत (हिलाता है, कँपा देता है), विलास वश होत और सुवास (सुगन्ध और सुन्दर वस्त्र) हरत शब्द कैसे उत्तम प्रयुक्त हुए हैं। इन्होंने कविता में जान डाल दी है। कैसे सच्चे हेतु बतलाये गये हैं। फिर भी वह पवन वृक्ष तोड़ने की शक्ति कहां से पाता है इसका स्पष्टीकरण नहीं हुआ।

\+ \+ \+

यद्यपि केशवदास जी आचार्य थे। फिर भी वे कहीं कहीं कुछ साधारण गलतियां भी कर गये हैं। हो सकता है उन्होंने दोष का उदाहरण भी अपने इस कर्तव्य द्वारा दिया हो। पर फिर भी यह बात उन दोषों को पूर्ण रूपेण निर्मूल करने में समर्थ नहीं है। यह बात भी मानी जा सकती है कि केशव-

दास जी की कविताओं की प्रतिलिपि करने वाले लेखकों ने कविता में इस प्रकार की भूलें भ्रम से कर दी हों पर यह भी हम नहीं मान सकते। मनुष्य से भूलें होती हैं, केशवदास जी से भूलें होना आश्चर्य नहीं।

केशव का चित्र-काव्य भी कम नहीं है। जो कुछ है वह अच्छा है। एक अक्षर के शब्दों के संयोग से बना हुआ दोहा भी विचित्र है। इसका अर्थ लोग अपने अपने विचारानुकूल लगाते हैं।

> **गो, गो, गं, गो, गी, अ, आ, श्री, ध्रो, ह्री, भी, भा, न।**
> **भु, ख, वि, स्व, ज्ञ', द्यौ, हि, हा, नौ, ना, सं, भं मा, न॥**

इस प्रकार केवल एक अक्षर के शब्दों से छन्द रचना की गयी है। और भी चित्र-काव्य के कितने ही उदाहरण हैं पर वे बड़े जटिल हो गये हैं। एक तो केशव की कविता जटिल, उस पर चित्र-काव्य जटिल विषय, दोनों की जटिलता ने मिलकर छन्द के प्रसाद और माधुर्य गुणों पर पानी फेर दिया है।

एक स्थान पर निम्न छन्द निरोष्ट के उदाहरण में दिया गया है। पर उसमें नियम का पालन नहीं है।

> **लोक लाक नीकी, लाज लीलत हैं नन्दलाल,**
> **लोचन ललित लोल लीला के निकेत हैं।**
> **सोंहन को सोच न सकोच लोका लोकनि को,**
> **देत सुख ताको सखी दूनो दुख देत हैं।**
> **केशोदास कान्हर कनेर ही के करेरक से,**
> **वाह्य रंग राते अँग, अंतस में सेत हैं।**
> **देखि देखि हरि की हरनता हरिन नैनी,**
> **देखत ही देखो नहीं हियो हरि लेत हैं॥**

रेखांकित सस्वर अक्षरों का उदाहरण संस्कृत के नियमानुसार ओठों की सहायता के बिना हो ही नहीं सकता। जैसे "उपूपाध्मानी यायां ओष्ठौ" "ओदौतौ कंठोष्टम्" "वकारस्य दंतोष्टम्" आदि। केशवदास जी ने परिभाषा में लिखा है—

पढ़त न लागै अधरसों, अधर वरण त्यो मंडि।
और वरण वरणै सवै 'उप' वर्गहिं सब छंडि॥

किन्तु इस परिभाषा के अनुसार भी देखने पर 'सुख', 'दूनों' 'दुख' और 'में' शब्दों में 'उप' मौजूद है। हो सकता है इसका पाठ ही गलत हो।

इसी प्रकार केशवदास जी ने एक स्थान में 'भाव' के लिए 'भव' रखा है जो बड़ा भ्रामक और दूषित प्रयोग हो गया है। केशवदास जी ने और भी दो-एक शब्दों को विकृत किया है पर उनका रूप इतना बिगड़ा नहीं है। कुछ लोग कहते हैं कि इनकी कविता में रस-परिपाक अच्छा नहीं है, ये हृदय-हीन कवि थे। पर न्याय की दृष्टि से और सहृदय बनकर देखने से इनकी कविता में रस का अद्भुत परिपाक देख पड़ा है। दुर्बोधता के कारण, रसका परिपाक अच्छा हुआ है या नहीं यह बात शायद नहीं मालूम होती। अर्थ समझ लेने पर रस-परिपाक पूर्ण दीख पड़ता है।

केशवदासदास जी शृंगारी कवि थे। इस कारण शृंगार वर्णन इनसे बहुत अच्छा बन पड़ा है। अन्य रसों में वे सिद्धहस्त तो थे ही पर उतनी सिद्धहस्तता नहीं थी जितनी शृंगार में। किसी वस्तु का वर्णन करना और उस पर नाना प्रकार की उत्प्रेक्षाएँ करना केशव का विशेष कार्य था। केवश की उपमाएँ बड़े मार्के की और उत्प्रेक्षाएँ बड़ी मनोमुग्ध-कारी हुई हैं।

केशवदास जी अनुप्रास के तो उतने प्रेमी नहीं थे, पर यमक उन्हें अधिक प्रिय था। कहीं कहीं उन्होंने यमक को भी श्लेष का रूप दिया है। केशवदास जीकी विवेचन शक्ति बड़ी उत्तम है। शब्दों का उचित प्रयोग भी इन्होंने खूब ही किया है। ऊपर जितना विवरण दिया गया है, उससे केशवदास जी की पूरी प्रतिभा प्रकट हो जाती है।

केशवदास जी के विषय में कुछ अधिक कहना अनधिकार चेष्टा है। क्योंकि जब तक कवि से अधिक विद्वत्ता न हो और कम से कम उसके बराबर माद्दा न हो तब तक उसकी उत्कृष्ट आलोचना नहीं हो सकती। पर इतना होते हुए भी काव्य-सामग्रियों की कसौटी पर कवि की कृति भली-भांति कसी जा सकती है और उसका अधिकार काव्य से प्रेम रखने वाले सभी मनुष्यों को है। इनके ग्रन्थों का मनन करने से हम जिस सिद्धान्त पर पहुँचे हैं वह यह है कि इनके ऐसे पण्डित कवि हिन्दी में बहुत कम हुए हैं। श्लेष का इन्हें सम्राट कहना चाहिए। आशा है आधुनिक साहित्य-प्रेमी जन केशव के ग्रन्थों का अध्ययन करके अपने हृदय को आनन्द पहुँचायेंगे। क्योंकि अर्थ-क्लिष्टता का झगड़ा प्राचीन काव्य-मर्मज्ञ स्वर्गीय लाला भगवान दीन जी की टीकाओं से बहुत कुछ मिट गया है। कवियों, लेखकों और समालोचकों के लिए केशव की 'कविप्रिया' पढ़ने योग्य है।

* * *

लेखकों और विद्वानों से

हिन्दी साहित्य सम्मेलन की मुखपत्रिका 'सम्मेलन पत्रिका' आप के पास जाती रहती है। हम चाहते हैं कि 'सम्मेलन पत्रिका' प्रतिमास ठीक समय पर प्रकाशित हो तथा साहित्यिक पाठ्य सामग्री तथा प्राचीन और वर्तमान काव्यों की आलोचनाओं, प्रगतिशील साहित्यिक और खोजपूर्ण लेखों से युक्त हो। ऐसी दशा में आप ऐसे विद्वानों की सहायता की आवश्यकता है। इसलिये शीघ्र ही कोई श्रेष्ठ साहित्यिक लेख भेजने का कष्ट कीजिये। साथ ही आप से निवेदन है कि अपने इष्ट मित्रों तथा हिन्दी प्रेमियों को इसका ग्राहक भी बनवावें। यदि इसकी संख्या पर्याप्त हो गई तो पृष्ठ संख्या और पाठ्य सामग्री में भी वृद्धि की जा सकेगी।

विनीत

ज्योतिप्रसाद मिश्र निर्मल

साहित्यमंत्री

हिन्दी-संसार

[लेखक, पंडित जगन्नाथप्रसाद शुक्ल वैद्य, संग्रह मन्त्री]

भारत की भाषा उर्दू है—यह तो माना जा सकता है कि सर तेज-बहादुर सप्रू ने लड़कपन से उर्दू सीखी है, उसे ही वह जानते और उसे ही पसन्द करते हैं; परन्तु यह कैसे माना जाय कि यह सत्य भी उनसे छिपा है कि पञ्जाब और संयुक्तप्रान्त के कुछ भाग को छोड़ भारत के अन्य भागों में उर्दू समझने वाले लोग अधिक नहीं हैं। इतना होने पर भी समय समय पर आप यह कहने से नहीं चूकते कि भारत की भाषा उर्दू है। अभी कुछ दिन पहले आप काश्मीर में थे। उस समय एक कवि-सम्मेलन के सभापति पद से आपने कहा कि भारत की बोलचाल की भाषा केवल उर्दू हो सकती है। आपने यहां तक कह डाला कि "इस समय भाषाओं के सम्बन्ध में बड़ा विवाद चल रहा है। पेशावर से लेकर सी० पी० तक और बम्बई के भी कुछ भागों में यदि किसी भाषा को समझा जा सकता है तो वह उर्दू है। मैं यह स्वीकार करने से इन-कार करता हूँ कि उर्दू मुसलमानों की भाषा है। यदि मुसलमान यह दावा करते हैं कि उर्दू उनकी भाषा है तो मैं उनके इस दावे को स्वीकार करने से इनकार करता हूँ, क्योंकि हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ने ही उसका निर्माण किया है। कोई कारण नहीं कि हिन्दू उर्दू से घृणा करें। इस समस्या को सुलझाने में हिन्दुस्तानी शब्द ने और भी कठिनाइयां उत्पन्न कर दी हैं। वास्तव में हिन्दु-स्तानी कोई भाषा नहीं है। तामिल तथा तेलगू को भी हिन्दुस्तानी भाषा कहा जा सकता है। यदि हिन्दुस्तानी का अर्थ वह भाषा है जो अब से ५० वर्ष पहले दिल्ली में बोली जाती थी और अब भी लखनऊ में प्रचलित है तो मैं उसे स्वीकार करने के लिये तैयार हूँ। उर्दू एक बपौती है जिसे भारत ने अपने पूर्वजों से प्राप्त किया है। मैं एक हिन्दू होने के नाते यह कहने में झिझक अनुभव नहीं करता कि उर्दू हमारी मातृभाषा है। हिन्दू तथा मुसलमानों को बांधने वाला केवल एक बन्धन है और वह है उर्दू भाषा। इस बन्धन को

तोड़ना पाप होगा।" मालूम नहीं सर तेजबहादुर सप्रू साहब हिन्दी का अस्तित्व भी स्वीकार करते हैं या नहीं ?

हिन्दुस्तानी राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती—अभी गणेशोत्सव के अवसर पर में इलाहाबाद युनिवर्सिटी के वाइस चांसलर पण्डित अमरनाथ झा ने ग्वालियर में एक भाषण दिया था। उसमें अन्य बातों के साथ राष्ट्रभाषा पर बोलते हुए आपने कहा "भारत की राष्ट्रभाषा बनने के लिये यह आवश्यक है कि वह भाषा संस्कृत से सम्बन्धित हो। आजकल एक ऐसी भाषा निकालने का प्रयत्न हो रहा है जिसे हम अशुद्ध हिन्दी का रूप या बेढङ्गी उर्दू कह सकते हैं। कुछ संस्कृत के शब्द और कुछ फारसी के शब्द मिला कर एक ऐसी भाषा बनायी जा रही है जिसका कुछ भी महत्व नहीं और जिसे हिन्दुस्तानी के नाम से पुकारा जाता है। अगर हिन्दुस्तानी अपना अस्तित्व स्थिर रख सकती है तो यह आवश्यक है कि वह जनता की भाषा हो। एक नयी भाषा को जन्म देने के प्रयत्न में तथा हिन्दी और उर्दू को मिटाने में इस भाषा के जन्मदाताओं के सम्मुख ऐसी विषम परिस्थितियां तथा कठिनाइयां उत्पन्न होंगी जो किसी प्रकार सुलझायी नहीं जा सकतीं। उत्तरी भारत में क़रीब १५० वर्ष से उर्दू शहरी भाषा रही है। जहां मुसलमानी सभ्यता का प्रभाव था, वहां राज भाषा होने के कारण उर्दू उन लोगों की भाषा बन गयी जो राज-काज से सम्बन्ध रखते थे। इसमें भारतीयता का कुछ अंश नहीं था और न ग्रामीण जनता से इसका कुछ भी सम्बन्ध रहा। संयुक्तप्रान्त से बाहर के मुसलमान भी उर्दू से अनभिज्ञ रहे। हिन्दी का सम्पर्क सदैव जन समुदाय से ही रहा। हिन्दी भाषा साहित्य की दृष्टि से भी बहुत धनी है। इसमें महात्माओं की वाणियाँ, भक्तमाल की रचनाएँ तथा महाभारत और रामायण जैसी श्रेष्ठ साहित्यिक पुस्तकें मौजूद हैं। इसका विशेष महत्व इस बात में है कि इसका आदि मूल संस्कृत है, और संस्कृत से ही ली जाने के कारण इसका सम्बन्ध बंगाली, मराठी, गुजराती, तामिल, तेलगू, कनाड़ी आदि भाषाओं से है। मद्रास और मैसूर में जो सफलता इसे मिल रही है वह इस कारण नहीं कि यह आसानी से सीखी जा सकती है। कारण यह है कि यह भारत के सब से अधिक भाग की बोलचाल की और समझी जाने वाली भाषा है। परि-

स्थितियों में यह सम्भव नहीं कि हिन्दुस्तानी को हिन्दी या उर्दू की जगह अपनाया जावे। दोनों का अस्तित्व आवश्यक है।"

हिन्दी का भविष्य--अभी कुछ दिन पहले बनारस ज़िले का हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन हुआ था। उसमें बोलते हुए संयुक्तप्रान्तीय शिक्षा-मन्त्री श्रीयुत सम्पूर्णानन्द जी ने हिन्दी के भविष्य के सम्बन्ध में कहा था "आजकल कुछ लोगों के मन में हिन्दी के भविष्य के सम्बन्ध में शङ्का उत्पन्न हो गयी है। मगर मैं समझ नहीं पाता कि उनमें ऐसी कमज़ोरी क्यों आ गयी है? जिस भाषा में राष्ट्र का भाव होगा वही राष्ट्र भाषा होगी और वही राष्ट्र भाषा रह भी सकेगी। चाहे कोई गवर्नमेंट किसी भाषा को राष्ट्र भाषा भी बना दे तो भी इसे रोक नहीं सकती। कोई सरकार या लेखक किसी भाषा को रूप नहीं दे सकता। लेखक चाहे तो उसे सुन्दर भले ही बना दे या कृत्रिम कर दे। भाषा को तो राष्ट्र ही रूप दे सकता है। ऐसी दशा में उसमें राष्ट्रीयता रहेगी ही। हमारे यहां राष्ट्रीय भावना बढ़ती जा रही है; इसलिये उसकी द्योतक और उसका विकास करनेवाली भाषा ही राष्ट्र भाषा होगी। इसमें कोई चिन्ता करने की बात नहीं है। पहले की सरकार का हिन्दी से विशेष प्रेम नहीं था तो भी हिन्दी पढ़ायी जाती थी। हिन्दी लेकर इम्तिहान देने वालों की संख्या बढ़ती ही जाती थी। अब तो राष्ट्र के भावों के अनुकूल चलने वाली गवर्नमेंट है। फिर हिन्दी के भविष्य के विषय में भय कैसा? युक्तप्रान्त की सरकार ने एक लाख से अधिक की हिन्दी पुस्तकें खरीदी हैं और उन्हें देहाती पुस्तकालयों को दिया है। इससे हिन्दी प्रचार में सहायता ही मिलेगी। हमें तो हिन्दी-साहित्य का भविष्य उज्ज्वल ही मालूम पड़ता है।"

राष्ट्रभाषा सीखिये—कुछ दिन पहले पण्डित जवाहरलाल नेहरू लखनऊ गये थे। वहां के विश्वविद्यालय के छात्रों के बीच आपके भाषण हुए। एक दिन आपने विद्यार्थियों के अनुरोध करने पर हिन्दी के साथ ही अँग्रेज़ी में भी भाषण किया। दूसरे दिन फिर आपको बोलना पड़ा, तब भी कुछ विद्यार्थियों ने कहा कि आप भाषण अँग्रेज़ी में दें; क्योंकि कुछ लोग हिन्दुस्तानी नहीं समझेंगे। इसके उत्तर में आपने कहा कि कल की सभा में भी इसी प्रकार का अनुरोध किया गया था; किन्तु बाद मैंने अँग्रेज़ी बोलने की

गल्ती को महसूस किया। ऐसे अवसरों पर अँग्रेज़ी में भाषण देने का सिद्धान्त ही गलत है। जितना ही मैं विदेशों में भ्रमण करता हूँ उतना ही मुझे यह अनुभव होता है कि जब तक हम किसी देश की भाषा नहीं समझते, हम उसकी भावनाओं को भलीभांति समझ नहीं सकते। जब मैं चीन गया तो मुझे सर्व प्रथम यही ख्याल पैदा हुआ कि यदि मुझे वहां कई महीना रहना हो तो बगैर चीनी भाषा के ज्ञान के मैं वहां की विचार धारा और भावनाओं को ग्रहण नहीं कर सकूँगा। यह आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति हिन्दुस्तानी जाने अन्यथा वह भारत की भावनाओं और विचार धारा से अपरिचित रहेगा। जो लोग अन्य प्रान्तों से विद्योपार्जन के लिये आये हैं उन्हें महसूस करना चाहिये कि हिन्दुस्तानी अर्थात् राष्ट्रभाषा सीखने का यही उपयुक्त अवसर है। देखिये बाबू सुभाषचन्द्र बोस की मातृभाषा यद्यपि बँगला है किन्तु वे भली भांति हिन्दुस्तानी बोल लेते हैं।

पाठ्य पुस्तकें—— महात्मा गांधी जी 'हरिजन' में लिखते हैं—कोर्स की किताबों को हमेशा बदलते रहने का पागलपन शिक्षा के दृष्टिकोण से कोई अच्छी बात नहीं है। यदि कोर्स की किताबों को ही शिक्षा का साधन मान लिया जावे, तो जीते-जागते अध्यापक के अध्यापन की उपयोगिता बहुत कम रह जाती है। जो अध्यापक कोर्स की किताबों की मार्फत पढ़ाता है, वह अपने विद्यार्थियों में मौलिकता नहीं पैदा कर सकता। वह खुद कोर्स की किताबों का गुलाम हो जाता है और अपनी मौलिकता दिखाने का उसे कोई अवसर या मौक़ा नहीं मिलता। इसलिए यह प्रतीत होता कि कोर्स की किताबें जितनी कम हों, विद्यार्थियों और अध्यापकों के लिए उतना ही अच्छा है। ऐसा मालूम होता है कि कोर्स की किताबें व्यापार की चीज़ बन गई हैं। कोर्स की किताबों को लिखने वाले लेखक और छापनेवाले प्रकाशक अपने पैसे बनाने के लिए किताबों की जल्दी-जल्दी तब्दीली में खास दिलचस्पी लेते हैं। बहुत दफ़ा तो अध्यापक और परीक्षक स्वयं ही कोर्स की किताबों के लेखक होते हैं। यह स्वाभाविक ही है कि वे अपने स्वार्थ की दृष्टि से अपनी किताबों को बहुत बेचना चाहें। फिर चुनाव बोर्ड में भी स्वभावतः ऐसे ही लोग होते हैं और इस तरह यह दुष्ट चक्र पूरा बन जाता है और माता-पिता आदि संरक्षकों के लिए

हर साल नई किताबों के लिए पैसा खर्च करना कठिन हो जाता है। जब लड़के और लड़कियां किताबों का भारी गट्ठर लिये, जिसे उठाना उनके लिए मुश्किल होता है, स्कूल जाते हैं, तब उन्हें देखकर दुःख होता है। सारी की सारी पद्धति को ही बिलकुल बदलने की जरूरत है। इसमें से व्यापारिक भावना को तो बिलकुल नष्ट कर देना चाहिए और सारे सवाल पर विद्यार्थियों के दृष्टिकोण से ही विचार करना चाहिए। ऐसा करने पर हम देखेंगे कि कोर्स की ७५ फीसदी किताबें रद्दी की टोकरी में फेंक देनी होंगी। यदि मेरे हाथ में होता, तो मैं ज्यादातर ऐसी ही किताबें बनवाता जो विद्यार्थियों की अपेक्षा अध्यापकों को ज्यादा मदद दें। जो किताबें विद्यार्थियों के लिए निहायत जरूरी हों, उन्हें कई साल तक नहीं बदलना चाहिए, ताकि वे इतने कम खर्च में विद्यार्थियों तक पहुँच सकें, जिसे मध्यश्रेणी के ज्यादातर लोग आसानी से बरदाश्त कर सकें। इस दिशा में पहला कदम शायद यह है कि सरकार कोर्स की किताबों का मुद्रण और प्रकाशन अपने हाथ में ले ले। इससे पुस्तकों की वृद्धि खुदबखुद कुछ रुक जायगी।

मातृभाषा का महत्त्व--मद्रास समबलम छात्र संघ के अधिवेशन में मद्रास असेम्बली के अध्यक्ष माननीय साम्बमूर्ति ने भाषण किया था। उसमें आपने कहा कि विश्वविद्यालयों का कर्तव्य है कि छात्रों को मातृभाषा द्वारा शिक्षा देने की व्यवस्था करें। देश में लोकतन्त्र का भाव बढ़ रहा है और भाषाओं के आधार पर प्रान्तों का विभाजन होने लगा है। ऐसी स्थिति में मातृभाषा द्वारा शिक्षा देना ही स्वाभाविक व्यवस्था होगी। जब तक किसी प्रान्त विशेष की मातृभाषा राजभाषा नहीं बन जाती तब तक कोई भी प्रान्तीय भाषा अँग्रेज़ी को स्थानच्युत करने में सफल नहीं हो सकती।

पद्माकर अनुसन्धान--हिन्दी आज नहीं सदियों पहले से भारत की राष्ट्रभाषा रही है। बंगाली जिन्हें अपना आदि कवि मानते हैं वे विद्यापति हिन्दी के ही कवि हैं। गुजरात के नरसी मेहता आदि हिन्दी में पद्य रचना करते थे। पुष्टिमार्ग प्रवर्तक गोस्वामी वल्लभाचार्यजी ने अपने मत प्रचार के लिये हिन्दी को अपनाया। मराठी कवियों में भी हिन्दी का प्रभाव

पड़ा। महाकवि पद्माकर, कुमारमणि और गदाधर भट्ट दक्षिण भारतीय थे। बीकानेर में ढू ढ़ खोज करते समय एक श्लोक मिला है, जिससे मालूम पड़ता है कि २५० वर्ष पहले सं० १७४७ के समय ही छन्दशास्त्र के निष्णात विद्वान गदाधर भट्ट जैसों ने हिन्दी भाषा के साथ ही नागरी अक्षरों को भी प्रोत्साहन दिया है। "म्ये मद्वंश्यः आसते तत्र विप्राः तेष्व स्माकं सन्तु नित्यं प्रमाणाः। स्वीयं वृत्तं सर्वदा प्रापणीयम् पत्र द्वारा नागरैर-र्क्षकरैनः॥" इन उदाहरणों से उत्साहित होकर साहित्याचार्य श्रीयुक्त भालचन्द्र राव तैलङ्ग ने प्रस्ताव किया है कि बांदा के जिस बलखण्डी नाका में महाकवि पद्माकर का निवास था, वहां १५०×७० क्षेत्रफल के भूभाग पर एक पद्माकर अनुसन्धान शाला स्थापित की जाय, जिसमें एक संग्रहालय, एक तन्त्रालय और एक पाठशाला का आयोजन हो। हमारी समझ में ऐसे महाकवियों के स्थान, जीवन चरित्र, उनकी कृति और सम्मान के दरबारों का पता लगाकर आवश्यक सामग्री की खोज तो अवश्य होनी चाहिये; किन्तु यदि संग्रहालय अलग स्थापित न भी हो सकें तो हिन्दी साहित्य सन्मेलन का संग्रहालय तो है ही, उसमें ऐसी वस्तुओं की सुरक्षा का अच्छा प्रबन्ध है। आशा है हिन्दी-प्रेमी ऐसी अनुसन्धान समिति के स्थापन पर अवश्य ध्यान देंगे।

प्रान्तीय साहित्य सम्मेलन— श्रीयुत बनारसीदास चतुर्वेदी प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनों के सम्बन्ध में बराबर ज़ोर दिया करते हैं। अभी मध्यप्रदेश के कार्यकर्ताओं को भी आपने परामर्श दिया है। आपकी राय में प्रान्तिक सम्मेलनों का महत्व अखिल भारतीय सम्मेलनों से कम नहीं है। ये केन्द्रीय संस्था से कहीं अधिक उपयोगी बनाये जा सकते हैं। इनके पहले प्रचार की दृष्टि से प्रान्त के भिन्न भिन्न भागों में साहित्यिक विषयों में भाषण हों, ज़िलों और नगरों में हिन्दी परिषद या हिन्दी मण्डल स्थापित हों। आवश्यकता है कि अन्य प्रान्तों के नेता भी प्रान्तीय सम्मेलनों के अवसर पर बुलाये जावें जिससे वे प्रान्तीय जागृति में सहायक हों। देहाती स्कूलों के अध्यापकों में साहित्य प्रेम उत्पन्न किया जाय और ग्राम पुस्तकालय स्थापित कराये जायँ। ग्रामगीतों, ग्रामीण कहानियों और मुहाविरों का संग्रह किया जाय। इसके लिये तीन छोटे छोटे पुरस्कार भी दिये जावें। प्रान्तीय साहित्य-क्षेत्र का सर्वे होना आवश्यक है जिससे मालूम पड़े कि कहां क्या काम हुआ है और क्या होना आवश्यक है? प्रान्त के प्रतिभाशाली युवक लेखकों और

कवियों को प्रोत्साहन दिया जाय और प्रान्त के बाहर लोगों में भी उनका परिचय बढ़ाया जाय। सम्मेलन के अधिवेशन के एक दिन पहले साहित्य सेवियों की एक मीटिंग होनी चाहिये जिसमें प्रान्त के साहित्यिक शिक्षा सम्बन्धी तथा सांस्कृतिक प्रश्नों पर गम्भीरता पूर्वक विचार हों और आगामी कार्य क्रम निश्चित हो। अन्तर्प्रान्तीय साहित्यिक संगठन और सहयोग का भी प्रयत्न हो। ऐसे अवसर पर प्रान्तीय पत्रों के विशेषांक निकाले जावें। सम्मेलन समयके साधारण जनता के मनोरञ्जनार्थ नाटक, कवि सम्मेलन और कवि दरबार की योजना होनी चाहिये। सम्मेलन के समाचार पत्रों में छपने चाहियें। यदि बाहर से आये हुए सज्जन प्रान्त में चार पांच दिन तक दौरा भी करें तो अच्छा होगा। सम्मेलन के समय प्रोग्राम बहुत ठसाठस न रखा जाय। प्रान्त के साहित्य-सेवियों को कुछ न कुछ रचनात्मक कार्य सौंपा जाय। सभापति ऐसे सज्जन को बनाना चाहिये जो कम से कम तीन चार महीने अवश्य काम कर सकें। वयोवृद्धों का सम्मान अधिवेशन के उद्‌घाटन संस्कार कराकर किया जा सकता है। प्रान्त के सुन्दर प्राकृतिक स्थलों की यात्रा भी ऐसे अवसर पर की जा सकती है।

———

सम्मेलन-परीक्षकों, केन्द्र-व्यवस्थापकों और परीक्षार्थियों से—

हिन्दी-साहित्य सम्मेलन की मुख पत्रिका 'सम्मेलन पत्रिका' पिछले कई वर्षों से प्रकाशित हो रही है। इसमें समम समय पर, लेंखों के सिवा सम्मेलन की लोकप्रिय परीक्षाओं के परीक्षाफल तथा अन्य आवश्यक सूचनाएँ प्रकाशित होती रहती हैं। हम चाहते हैं कि पत्रिका आगे से और भी सुन्दर रूप में प्रकाशित हो। विशेष कर परीक्षार्थियों के लिये उपयोगी और पठनीय लेखों से इसका कलेवर अलंकृत हो। इसलिये उनसे हमारा विशेष अनुरोध है कि वह इसके प्रचार में हमारी सहायता करें। वे स्वयं तो ग्राहक बनें ही साथ ही अपने मित्रों तथा हिन्दी प्रेमियों को भी बनावें। यदि दो-तीन सौ १) वाले ग्राहक 'पत्रिका' को और प्राप्त हो जायें तो इसकी कलेवर वृद्धि अवश्यम्भावी है। 'पत्रिका' हिन्दी प्रेमियों के लिये और भी अधिक उपयोगी सिद्ध होगी। हमें आशा है कि हिन्दी प्रेमी इस ओर समुचित ध्यान देकर 'पत्रिका' को अधिक उन्नतिशील बनाने में हमारा सहयोग करेंगे। —साहित्य-मन्त्री

प्राप्ति-स्वीकार

[लेखक, पं० जगन्नाथप्रसाद शुक्ल वैद्य, संग्रह मन्त्री]

निम्नलिखित पुस्तकें हिन्दी संग्रहालय के लिये प्राप्त हुई हैं। इसके लिये पुस्तक लेखक और प्रकाशक महोदयों को अनेक धन्यवाद।

अपराजिता—श्रीयुत रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' प्रतिभाशाली कवि हैं। अपराजिता में उनकी मर्म स्पर्शी मधुर कविताओं का संग्रह है। अंचल जी की प्रथम प्रकाशित कविताओं से इसमें क्रम-विकास का अच्छा परिचय मिलता है। इस संग्रह की कविताएँ अधिक भावोत्पादक, गम्भीर और कवि के उच्च हृदय का परिचय देने वाली हैं। छायावाद में भी छाया ही नहीं शरीर का, जीवन का और अनुभूति का भी पता लग जाता है। केवल कल्पना ही नहीं सहृदता का भी पुट है। आशा है आपकी अगली कृति अधिक साहस फूँकने वाली, ओजमयी और उच्च कर्तव्य की प्रेरणा देने वाली होगी। मूल्य २)। इसका प्रकाशक छात्र हितकारी पुस्तक माला दारागञ्ज प्रयाग है।

हिन्दी साहित्य का इतिहास—माननीय मिश्रबन्धु रावराजा डाक्टर श्यामविहारी मिश्र एम० ए० डी० लिट्० और रायबहादुर पण्डित शुकदेव बिहारी मिश्र रचित यह हिन्दी साहित्य का इतिहास है। मिश्रबन्धु विनोद में हिन्दी कवियों का इतिहास है और इसमें साहित्यिक दृष्टि से इतिहास लिखा गया है। इससे हिन्दी की क्रमोन्नति का प्रर्याप्त ज्ञान हो सकता है। हिन्दी की उत्पत्ति, धार्मिक विकास, चन्द के पूर्व और रासोकाल, प्रारम्भिक, पूर्व माध्यमिक, सौरकाल, तुलसीकाल, पूर्वालंकृत काल, उत्तरालंकृतकाल, परिवर्तन काल, वर्तमान काल, पूर्वनूतन काल और उत्तर नूतन काल नामक खण्डों में पुस्तक विभाजित है। पुस्तक सर्वथा पठनीय है। दाम १॥) पता—गंगा ग्रंथागार, अमीनाबाद पार्क लखनऊ।

संसार-रहस्य—सांसारिक जीवन धन-विलास-अधिकार-विभव और मान बड़ाई से पूर्ण रहता है। अतःकरण और ईमान का नाम कितने ही ज़ोर से क्यों न लिया जाय किन्तु उसके भीतर विभव और अधिकार का ही विस्तार दिखाता है। जीवन में तर्क-भाव और सुख दुःख के अनुभव समाविष्ट हैं। भौतिक जीवन और आध्यात्मिक जीवन की दशाएँ भी भिन्न भिन्न हैं। इस तरह के द्वन्द्वमय जीवन की कल्पना, विचार और अनुभव की कसौटी में उतार कर यह संसार-रहस्य उपन्यास रूप में लिखा गया है। वर्णन आकर्षक और मनोरञ्जक हुआ है। लेखक हैं ठाकुर प्रसिद्ध नारायण सिंह बी० ए० एम० एल० सी०। १॥) में गङ्गा ग्रन्थागार लाटूश रोड लखनऊ से मिल सकता है।

महाभारत—महाभारत के मूल कथा-भाग को पण्डित सूर्यकान्त त्रिपाठो 'निराला' ने अठारहों पर्वों के सारांश रूप में इसे लिखा है। ३६४ पृष्ठों में महाभारत रूपी सागर को निराला जी ने गागर में भर दिया है। यही नहीं कथा भाग का सारांश अच्छी तरह व्यक्त कर दिया गया है। पुस्तक सर्वथा सुपाठ्य और संग्रहणीय है। दाम २) पता—गङ्गा ग्रन्थागार लाटूश रोड लखनऊ।

मकरन्द—श्रीमती रामेश्वरी देवी 'चकोरी' की कविताओं का इसमें संग्रह है। चकोरी जी की कविताएँ साहित्य-क्षेत्र में आदर की वस्तु समझी जाने लगी थीं; किन्तु दुःख की बात है कि असमय में ही वे स्वर्गवासिनी हो गयीं। यह उनकी कविताओं का दूसरा संग्रह है। विचार सौष्ठव, कल्पना-गाम्भीर्य और प्रसाद-गुण की दृष्टि से कविताओं में कवियित्री जी को अच्छी सफलता मिली थी। इसका संकलन उन्हीं के पति पं० लक्ष्मी शंकर मिश्र 'अरुण' ने किया है। मूल्य ॥=) मिलने का पता—गंगा ग्रन्थागार लाटूशरोड, लखनऊ।

शिशुपालन—श्रीयुत अत्रिदेव गुप्त एक मननशील उच्चमना वैद्य लेखक हैं। आपने ही शिशुपालन विषय में यह पुस्तक लिखी है। दस प्रकरणों में इस सम्बन्ध की सभी आवश्यक बातों का इसमें विवेचन हुआ है।

पुस्तक प्रत्येक स्त्री के पढ़ने योग्य है। मूल्य २) मिलने का पता—गङ्गा ग्रन्थागार लाटूशरोड लखनऊ।

सुखी जीवन—कहानी और उपन्यास संसार में कौतूहल उत्पन्न करने वाले आयुर्वेदाचार्य श्रीयुत चतुरसेन शास्त्री जी की यह कृति है। आपकी वर्णनशैली सजीव और आकर्षक होती है। सुखी जीवन बनाने के लिये पति-पत्नी को क्या करना चाहिये इसी का इसमें २४ विषयों में विभक्त कर वर्णन किया गया है। दाम ।।।) मिलने का पता—गंगा ग्रन्थागार अमीनाबाद लखनऊ।

ला मज़हब—सात कहानियों का संग्रह है। कहानियां हृदय हिलोड़ने वाली हैं। स्वछन्द विचार किन्तु नैतिकता की रक्षा करते हुए कहानी का स्रोत चलता गया है। इसके लेखक श्रीयुत बलभद्र दीक्षित हैं। ।।।) में प्रकाशक पटना पब्लिशर्स बांकीपुर पटना से मिल सकती है।

रजकण—श्रीमती शकुन्तला श्रीवास्तव की कविताओं का संग्रह है। स्त्री सुलभ विचारों और भावों का सुरम्य संग्रह है। सच्ची आह और सहानुभूति का सामान है। कुल ४८ कविताएँ हैं। श्रीमती शकुन्तलाजी कानपुर के मज़दूर-सेवक श्रीयुत हरिहरनाथ जी शास्त्री की अर्धाङ्गिनी हैं। दाम ।।) पत प्रकाशक पटना पब्लिशर्स बांकीपुर पटना।

सिंहगढ़ विजय—यह सिंहगढ़ विजय की ऐतिहासिक पुस्तक नहीं बल्कि १० कहानियों का एक संग्रह है, जिसमें एक कहानी सिंहगढ़ विजय भी है। लेखक हैं आयुर्वेदाचार्य श्रीयुत चतुरसेन जी शास्त्री, भाषा ओजपूर्ण और कल्पना वेदना विह्वल भाव प्रकट करने वाली है। दाम १) अधिक मालूम पड़ता है। पता, प्रकाशक पटना पब्लिशर्स बांकीपुर पटना।

अपराधी कौन—श्रीयुत इन्द्र विद्या वाचस्पति का लिखा हुआ यह तहलका मचा देने वाला क्रान्तिकारी उपन्यास है। दाम १।।) पता, विजय पुस्तक भण्डार, अर्जुन प्रेस, दिल्ली।

राष्ट्रभाषा और हिन्दी

[लेखक, प्रिंसिपल श्री हरिकृष्णदास मलकानी एम० ए०, काशी]

सिन्धी और राष्ट्रभाषा के सम्बन्ध में मेरा विचार है कि हिन्दी ही को राष्ट्रभाषा का पद मिलना चाहिए। यद्यपि सिन्धी और हिन्दी के इतिहास का अध्ययन किया जाय तो ज्ञात होता है कि सिन्धी हिन्दी की बड़ी बहिन है। क्योंकि सिन्धी का विकास साक्षात ब्राचड़ अपभ्रंश से है और हिन्दी के आधुनिक रूप एवं आधुनिक हिन्दी के मूल अपभ्रंश के बीच में कई कड़ियाँ हैं। तथापि छोटी बहिन—हिन्दी बड़ी—सिन्धी से बढ़ गई है। सिन्धी भाषा का क्षेत्र भारतवर्ष का पश्चिमी प्रान्त है। वहीं के निवासी सिन्धी बोलते और लिखते हैं पर हिन्दी का प्रचार भारतवर्ष के एक विस्तृत भूभाग में पाया जाता है। धीरे-धीरे सभी प्रान्तों में हिन्दी भाषा को समझने वाले लोग बढ़ते जा रहे हैं। अतः सिन्धी की अपेक्षा हिन्दी का प्रचार-क्षेत्र बड़ा है। एक ही कुटुम्ब की दो लड़कियाँ दो कुटुम्बों में व्याह दी जाती हैं। बड़ी लड़की एक साधारण कुटुम्ब में ब्याही जाने के कारण केवल अपने आसपास ही प्रसिद्ध रहती है लेकिन छोटी लड़की एक प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित कुल में ब्याही जाकर अत्यन्त प्रसिद्ध हो जाती है। उसकी प्रतिष्ठा और उसका आदर छोटी होने पर भी अधिक होता है। यही स्थिति सिन्धी और हिन्दी की है। छोटी बहिन होने पर भी हिन्दी अधिक प्रसिद्ध हो गई है।

मूल सिन्धी के ऊपर अनेक कठिनाइयाँ भी आ चुकी हैं जिनके कारण आधुनिक सिन्धी का रूप ही दूसरा हो गया है। भौगोलिक स्थिति के कारण सिन्ध और पश्चिमी पंजाब सदा से मुसलमानी आक्रमणों का शिकार होता रहा है। इसका प्रभाव वहाँ की भाषा पर भी पड़ा। मुसलमानों के संसर्ग से सिन्धी में अरबी और फ़ारसी के बहुत से शब्द आ गये हैं। सिन्धी की लिपि भी अरबी लिपि के प्रभाव से परिवर्तित हो गई है। किन्तु इतना सब होने पर भी यदि प्राचीन हिन्दी को देखा जाय तो उसकी भाषा और लिपि दोनों अन्य भारतीय आर्यभाषाओं के समान हो है। अरबी लिपि में लिखी जाने वाली सिन्धी भाषा भाषियों का कारबार और बहीखाता आज भी नागरी लिपि में ही लिखा जाता है। यही नहीं सारे संसार में भारतवर्ष के बाहर भी फैले हुये सिन्ध के व्यापारियों का अपना कार-बार और हिसाब-किताब नागरी में ही होता है।

यद्यपि आज की सिन्धी में फ़ारसी और अरबी के अनेक शब्द आ गये हैं, ऐसे शब्दों की संख्या अधिक है तथापि सम्पूर्ण सिन्धी के शब्द कोष का विचार और मनन करने पर यही पाया जाता है कि सिन्धी शब्दों में भी अधिकता उन्हीं शब्दों की है जो या तो संस्कृत के शब्द हैं या संस्कृत के शब्दों से व्युत्पन्न हैं। ऐसे शब्द सम्भवतः सत्तर प्रतिशत होंगे। इसके अतिरिक्त सिन्धी का व्याकरण पूर्णतः भारतीय है। सिन्धी फ़ारसी या अरबी व्याकरण से अनुशासित नहीं होती है। उसके व्याकरण के नियम भारतीय आर्य भाषाओं के पूर्णतः समान है। सिन्धी के क्रियापद, सर्वनाम, धातु रूपावली, शब्द रूपावली आदि भी पूर्णतः भारतीय हैं।

ऐसी स्थिति में सिन्धी भाषा भाषियों के लिये हिन्दी समझ लेना या बोल लिख लेना कोई बहुत कठिन कार्य न होगा। अतः मेरी समझ में उपर्युक्त बातों का ध्यान रखते हुये हिन्दी को ही राष्ट्रभाषा का पद देना उचित है।*

अपनी बात—

सम्मेलन पत्रिका—'सम्मेलन पत्रिका' का यह आश्विन का अङ्क पाठकों के पास पहुँच रहा है। पौष का अङ्क भी आधे पौष तक पहुँच जायेगा। इसी प्रकार प्रतिमास ठीक समय पर पत्रिका नियमित रूप से प्रकाशित करने का हम उद्योग कर रहे हैं। हमारी इच्छा है कि सम्मेलन ऐसी सर्वमान्य संस्था की मुख-पत्रिका और भी अधिक सुचारु तथा सुन्दर रूप में प्रकाशित हो। इसकी कलेवर वृद्धि हो और उपयोगी साहित्यिक निबंध्यों तथा हिन्दी संसार की सामयिक प्रगति पर भी इसमें समय समय पर प्रकाश डाला जाता रहे। किन्तु इस कार्य में हिन्दी प्रेमियों, विद्वानों तथा साहित्यिकों के पूर्ण सहयोग की हम विशेष आशा रखते हैं। यदि हिन्दी प्रेमी इसके एक-एक ग्राहक भी बना दें तो इसकी और भी आशातीत उन्नति हो सकती है।

पत्रिका का वार्षिक मूल्य केवल १) वार्षिक इतना कम रखा गया है कि इसके ग्राहक बनने में हिन्दी प्रेमी किसी विशेष कठिनाई का अनुभव नहीं कर

* काशी हिन्दी साहित्य सम्मेलन में पठित।

सकते। हिन्दी साहित्य सम्मेलन ऐसी सर्वमान्य संस्था के प्रेमियों की संख्या इतनी अधिक है, और इसीसे हमें आशा है कि इस कार्य में सहानुभूति प्राप्त होने में कोई कठिनाई नहीं प्रतीत होगी। साथ ही विद्वान लेखकों, आलोचकों, अन्वेषकों तथा हिन्दी लेखकों से हमारा अनुरोध है कि वे अपनी सुन्दर से सुन्दर कृतियाँ 'पत्रिका' के लिये सयय समय पर भेजते रहें जिससे इसकी पाठ्य सामग्री भी उन्नत होगी और हिन्दी प्रेमी पाठकों को प्रतिमास महत्वपूर्ण साहित्यिक रचनाएँ भी पढ़ने तथा अध्ययन करने को मिलेंगी। इस कार्य से सम्मेलन की एक प्रकार से सहायता ही होगी। यदि हमारे अनुरोध स्वीकार हुए और कम से कम ५०० ग्राहक हमें स्थायी रूप से और प्राप्त हो गये तो हम 'पत्रिका' को और अधिक आकर्षक और सुन्दर रूप में प्रकाशित करने के लिये समर्थ होंगे। हमें आशा है कि हिन्दी प्रेमी इधर अवश्य ध्यान देने की कृपा करेंगे।

सबकी बोली—राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा से 'सबकी बोली' नाम का सुन्दर मासिक-पत्र पिछले नवम्बर महीने से प्रकाशित होना प्रारम्भ हुआ है। इसके सम्पादक आचार्य काका कालेलकर और श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल हैं। पत्र के प्रारम्भ में काका साहब ने 'कार्य की दिशा' सुंदर लेख में हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार और संरक्षण के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण और विचारणीय विचार प्रगट किये हैं। 'कहानी कला' पर भी काका साहब ने सूक्ष्मता तथा गम्भीरता से प्रकाश डाला है। इनके सिवा राष्ट्रभाषा बनाम अँग्रेज़ी, सबकी बोली का सब को अभय दान, दादा धर्माधिकारी का लिखा हुआ 'राष्ट्र संगठन की भाषा कौन तथा सी', हिन्दी शब्दों की लिंग-व्यवस्था आदि लेख भी बड़े महत्व के हैं। पत्र का नाम 'सबकी बोली' जितना प्रगतिशील और सामयिक है उतने ही इसमें प्रकाशित लेख भी सुरुचि पूर्ण, रोचक और ज्ञानवर्द्धक हैं। इसकी भाषा हिन्दी है किन्तु लिपि में अवश्य काका साहब के व्यक्तित्व की छाप है। हमें आशा है कि ऐसे सुन्दर पत्र के प्रकाशन से राष्ट्रभाषा के प्रचार में उपयोगी सहायता प्राप्त होगी। 'सबकी बोली' का वार्षिक मूल्य १।) और प्रति अंक =) है।

———

नियमावली

१—सम्मेलन-पत्रिका प्रति मास प्रकाशित होती है।

२—हिन्दी साहित्य सम्मेलन के आदर्शों की पूर्ति में सहायक होना पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है।

३—पत्रिका का वार्षिक मूल्य १) तथा एक अङ्क का ≈) है।

४—पत्रिका के सम्बन्ध में पत्र-व्यवहार साहित्य-मन्त्री, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के पते से करना चाहिए।

५—पत्रिका-संबन्धी पत्र-व्यवहार में जवाब के लिए टिकट आने चाहिए; अन्यथा आवश्यक-अनावश्यक का विचार कर पत्रोत्तर दिया जायगा।

सम्मेलन-पत्रिका के ग्राहकों से—

हिन्दी साहित्य सम्मेलन की मुख-पत्रिका 'सम्मेलन-पत्रिका' पिछले कई वर्षों से प्रकाशित होती आई है। समय समय पर उसमें सुन्दर और विचार-पूर्ण लेखों के साथ सम्मेलन की स्थायी समिति तथा अन्यान्य समितियों के कार्य-विवरण प्रकाशित होते रहे हैं। हिन्दी के प्रेमियों, विद्वानों तथा स्थायी समिति के सदस्यों से यह अविदित नहीं है। किंतु अब हम चाहते हैं कि 'सम्मेलन-पत्रिका' प्रति मास ठीक समय पर प्रकाशित हो। साथ ही सुन्दर और श्रेष्ठ साहित्यिक लेख प्रकाशित किये जायँ जिससे हिन्दी के प्रति अनुराग रखने वाले सुदूर प्रांतों के हिन्दी-प्रेमी और विद्यार्थी भी उससे लाभ उठा सकें। इसके सिवा 'साहित्य-रत्न' 'मध्यमा' तथा 'प्रथमा' परीक्षाओं में सम्मिलित होने वाले विद्यार्थियों को साहित्य-अध्ययन में समय समय पर सहायता प्राप्त होती रहे। इसलिये हम प्रत्येक हिन्दी प्रेमी तथा विद्यार्थी से अनुरोध करते हैं कि वह 'सम्मेलन-पत्रिका' के स्वयं ग्राहक बनें और अपने मित्रों को भी बनावें। यदि एक हज़ार भी ग्राहक हमको मिल गये तो 'पत्रिका' का आकार प्रकार भी बड़ा कर दिया जायगा और विद्वानों के श्रेष्ठ साहित्यिक लेखों से भी इसका कलेवर अलंकृत होता रहेगा। आशा है हिन्दी-प्रेमी इस निवेदन की ओर ध्यान देने की कृपा करेंगे। सम्मेलन प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी की संस्था है और इसीलिये हम उनसे हर प्रकार के सहयोग और सहायता की पूर्ण आशा रखते हैं। जिन ग्राहकों का वार्षिक चंदा समाप्त हो गया है वे कृपया १) मनीआर्डर से शीघ्र भेज दें।

साहित्य-मंत्री

रजिस्टर्ड नं० ए० ६२०

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन द्वारा
प्रकाशित कुछ पुस्तकें

(१) सुलभ-साहित्य-माला

१ भूषण ग्रन्थावली २)
२ हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास ॥)
३ भारत गीत ≡)
४ राष्ट्र भाषा ॥)
५ शिवा बावनी ≡)
६ सरल पिंगल ।)
७ भारतवर्ष का इतिहास भाग १ २॥)
८ " " " " २ २।)
९ ब्रजमाधुरी सार २॥)
१० पद्मावत पूर्वार्द्ध १।)
११ सत्य हरिश्चन्द्र ।-)
१२ हिन्दी-भाषा सार ॥।)
१३ सूरदास की विनय पत्रिका ≡)
१४ नवीन पद्य-संग्रह ॥।)
१५ कहानी-कुञ्ज ॥=)
१६ बिहारी संग्रह ≡)
१७ कवितावली ॥।)
१८ सुदामा चरित्र ।)
१९ कबीर पदावली ॥।=)
२० हिन्दी गद्य-निर्माण १॥)
२१ हिन्दी साहित्य की रूप-रेखा ।)
२२ सती करुणकी ॥)
२३ हिन्दी पर फ़ारसी का प्रभाव ॥=)
२४ पार्वती मङ्गल ।)

(२) साहित्य रत्नमाला

१ अकबर की राज्यव्यवस्था १)

(३) वैज्ञानिक-पुस्तकमाला

१ सरल शरीर विज्ञान ॥), ॥।)
२ प्रारम्भिक रसायन १)
३ सृष्टि की कथा १)

(४) बाल-साहित्य-माला

१ बाल पञ्चरत्न ॥)
२ वीर सन्तान ।=)
३ बिजली =)

(५) ओझा अभिनन्दन ग्रन्थ १६)

(६) विविध पुस्तकें

१ महात्मा गाँधी के निजी पत्र ।-)
२ टालस्टाय के विचार ।-)
३ इतना तो जानो ।-)
४ सनयाट सेन ।)
५ संजीवनी ।-)
६ नीति दर्शन ॥।)
७ लाजपतराय की जीवनी ॥।)

मुद्रक—गिरिजा प्रसाद श्रीवास्तव, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग।
प्रकाशक—साहित्य-मंत्री, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

2-2-40

मार्गशीर्ष, सम्वत् १९९६

सम्मेलन-पत्रिका

[भाग २७, संख्या ४]

संपादक

श्री ज्योतिप्रसाद मिश्र निर्मल

साहित्य-मंत्री

हिन्दी साहित्य सम्मेलन

प्रयाग

वार्षिक २)

एक प्रति ॥)

विषय-सूची

# सम्मेलन-पत्रिका

भाग २७]　　　मार्गशीर्ष १९९६　　　[संख्या ४

महाकवि केशव की 'कवि-प्रिया'

[लेखक - प्रोफ़ेसर विश्वनाथ प्रसाद मिश्र एम० ए० 'साहित्यरत्न']

(गतांक की पूर्ति)

वृषभ वाहिनी अङ्ग उर बासुकि लसत प्रवीन।
शिव सँग सोहै सर्वदा शिवा की राय प्रवीन॥

वृषभ वाहिनी (बैल पर सवार होने वाली, धर्म को वहन करने वाली—वृषभ से धर्म का रूपक बाँधा जाता है) बासुकि (नाग विशेष, सुगन्धित माला) प्रवीन (चतुर, वीणा) और शिव (महादेव, मंगलस्वरूप) शब्दों के सहारे विशेष चमत्कार दिखाया गया है। एक दोहा जो बहुत प्रचलित है उसका भी नमूना लीजिये। यह तीन पर घटेगा।

चरण धरत चिन्ता करत भावत नींद न भोर।
सुबरण को सोधत फिरत, कवि व्यभिचारी चोर॥

चरण (छन्द-पाद, पैर) और सुवरण (सुन्दर अक्षर, सुन्दर रंगवाली स्त्री, सोना) शब्द श्लिष्ट हैं। कवि ने कैसी खूबी से तीनों का समीकरण किया है।

अलंकारों का साहित्य में क्या महत्व है, इस बात को समझाने के लिए कविता और बनिता के कुछ एक ही ऐसे विशेषण रखे हैं जो श्लिष्ट हैं।

जदपि सुजाति, सुलच्छणी, सुबरन, सरस, सुवृत्त।
'भूषण' बिनु न विराजई कविता, बनिता मित्त॥

इन श्लिष्ट शब्दों के सूत्र से कैसा बँधान बँधा है ? अर्थात् सब प्रकार सब गुणों से युक्त होने पर भी जैसे स्त्री बिना गहनों के शोभित नहीं होती वैसे-

ही बिना अलंकारों के सब काव्यांगों से युक्त रहने पर भी कविता फीकी रहती है। सचमुच अलंकारों का महत्व इतना ही बड़ा है।

केशवदास जी ने षट् ऋतुओं का शिलष्ट वर्णन किया है जैसा बाबा दीनदयाल गिरि जी ने लिखा है। बसन्त का उदाहरण देखिये—

शीतल समीर शुभ गंगा के तरंगयुत,
अंबर विहीन बपु बासुकि लसंत हैं।
सेवत मधुप गण गजमुख परभृत
बोल सुन होत सुखी संत औ असंत है॥
अमल अदल रूप मंजरी सुपद रज,
रंजित अशोक दुख देखत नसंत है।
जाके राज दिसि दिसि फूले हैं सुमन सब,
शिव को समाज कैंधों केशव बसंत है॥

इसका अर्थ शिव और बसंत दो पक्षों में लगेगा। शिव के पक्ष में अंबर का अर्थ वस्त्र, बासुकि का नाग, मधुप का देवता, परभृत का षड़ानन, अदल (अपर्णा) का पार्वती, रूपमंजरी का सुन्दरी, अशोक का शोकहीन और सुमन का अर्थ देवता है। बसंत पक्ष में शीतल का अर्थ चंदन, गंगा के तरंगयुत का ठंढी, अंबर का आकाश, विहीन वपु का कामदेव, वासुकी का पुष्पमाला, परभृत का कोकिल, अदल का सर्वोत्तम, रूपमंजरी का रूपवान स्त्री, अशोक का वृक्ष विशेष अर्थ है। इसी प्रकार अन्य ऋतुओं के उदाहरण भी समझना चाहिए। कविप्रिया में केशव जी ने जहां श्लेषालंकार के उदाहरण दिये हैं वहां दो से लेकर पांच अर्थ तक के शिलष्ट छन्दों के उदाहरण दिये हैं। उसमें से तीन अर्थों के श्लेष वाला छन्द हम यहां अवलोकनार्थ उद्धृत करते हैं जो कि चित्तौराधिपति प्रतापसिंह जी के पुत्र अमरसिंह जी की प्रशंसा में लिखा गया है और श्लेष से वह महादेव और समुद्र के ऊपर भी घट जाता है। अमरसिंह की प्रशंसा में और भी कई छन्द इस ग्रन्थ में हैं—

परम विरोधी अविरोधी ह्वै रहत सब,
दानिन के दानि, कवि केशव प्रमान है।

अधिक अनन्त आप सोहत अनन्त सङ्ग,
अशरण शरण, निरक्षक निधान है।
हुतभुक हितमति, श्रीपति बसत हिय,
भावत है गङ्गा जल जग को निदान है।
केशौराय की सौं कहैं केशोदास देखि देखि,
रुद्र की समुद्र की अमरसिंह रान है॥

रुद्र, समुद्र और राणा अमरसिंह के पक्ष में इस छन्द का अर्थ लगेगा। इस छन्द के शब्दों का तीनों पक्ष में भिन्न भिन्न अर्थ होगा।

अलंकार शास्त्र में 'उपमा' ही सबसे मुख्य अलंकार है। इसकी ही सत्ता पर कितने ही अन्य अलंकारों का अस्तित्व निर्भर है। यदि सच पूछा जाय तो हम तो यही कहेंगे कि उपमा ही एक श्रेष्ठ अलंकार है। यही सब का राजा है। ऐसा ही प्राचीन लोगों ने माना भी है। इसी उपमा अलंकार में एक सुन्दर छन्द केशव ने सीता जी के रूप की प्रशंसा में कहा है—

को है दमयन्ती इन्दुमती रति राति दिन,
होहिं न छबीली छन छवि जो सिंगारिये।
केशव लजात जलजात, जात वेद ओप,
जातरूप वापुरो विरूपसो निहारिये॥
वदन निरूपन निरूपम निरूप भये
चन्द बहुरूप अनुरूप कै विचारिये।
सीता जी के रूप पर देवता कुरूप कोहैं,
रूप ही के रूपक तौ बारि बारि डारिये॥

केशवदास जी ने ठीक इसे तुलसीदास जी के वर्णन से मिला दिया है। केशवदास जी ने यद्यपि खूब सोच विचार कर यह लिखा है पर तुलसीदास जी ने बालकांड में सीता जी के रूप के वर्णन की इतिश्री कर दी है। वैसा उत्तम वर्णन संसार के किसी साहित्य में नहीं है। तुलसीदास जी ने भी सरस्वती, पार्वती, लक्ष्मी और रति से सीता जी को बढ़ कर होने का कारण लिखा है; उसके पश्चात् लिखा है—

"जौं छवि-सुधा पयोनिधि होई,
परम रूप मय कच्छप सोई॥

सोभा रजु मन्दर सिंगारू,
मथइ पानि पङ्कज निज मारू ॥
एहि विधि उपजई, लच्छि जब, सुन्दरता सुख-मूल ।
तदपि सकोच समेत कवि, कसहिं सीय समतूल ॥

विरोधाभास अलंकार भी केशव ने अच्छा लिखा है। कविप्रिया में 'विरोधाभास' को प्रायः 'विरोध' अलंकार के नाम से केशव जी ने लिखा है। उदाहरण लीजिये—

पावक, फणि, विष भस्म मुख हर पवर्ग मय मान ।
देत जु हैं अपवर्ग को पारवती पति जान ॥

यह दोहा पार्वती जी के दान का वर्णन है अर्थात् अपवर्ग (मोक्ष) देने की सामर्थ्य शिव जी में पार्वती-पति होने से है नहीं तो उनका शरीर तो पवर्ग (प. फ. ब. भ. म) मय है। ऊपर का दोहा यदि निम्न संस्कृत श्लोक के भाव पर नहीं तो इसे देख कर तो अवश्य ही लिखा गया होगा। कवि ने उसको ऐसा उत्तम रूप दे दिया है कि वह खिल उठा है। श्लोक है—

"पिनाक, फणि, बालेन्दु भस्म मंदाकिनी युता ।
पवर्ग रचिता मूर्तिरपवर्ग प्रदायिनी ॥"

आगे रामचन्द्र जी के स्वभाव और कार्य का वर्णन करते हुए उसमें श्लेष के बल पर विरोध दिखाते हैं:—

परम पुरुष कुपुरुष सँग सोभियत
दिन दान शील पै कुदान ही सों रति हैं ।
सूर कुल कलश पै राहु को रहत सुख,
साधु कहैं साधु परदार प्रिय अति हैं ॥
अकर कहावत धनुष धरे देखियत,
परम कृपाल पै कृपान कर पति हैं ।
विद्यमान लोचन द्वै, हीन वाम लोचन सों,
केशोराय राजाराम अद्भुत गति हैं ॥

श्लेष का कुछ सहारा लेकर परिसंख्या अलंकार भी कहा जाता है। इस अलंकार के वर्णन में भी केशव जी बड़े सिद्धहस्त थे। कविप्रिया में इन्होंने परिसंख्या को भी श्लेष ही के अन्तर्गत माना है। उसे 'नियम श्लेष' के नाम

से लिखा है। किसी वस्तु के धर्म को उस स्थान से उठाकर केवल विशेष-स्थान पर स्थापित करना यही परिसंख्या अलंकार है। रामचन्द्र जी के राज्य की उत्तमता में एक छन्द जो केशवदास जी ने लिखा है उसे उदाहरण-स्वरूप उद्धृत करते हैं--

बैरी गाय ब्राह्मन को कालै सब काल जहाँ,
कवि कुल ही को सुबरण हर काज है।
गुरु सेज गामी एक बालकै बिलोकियत,
मातँगनि ही को मतवारो को सो साज है।
अरि नगहीन, प्रति होत है अगम्या गौन,
दुर्गन ही केशोदास दुर्गति सी आज है।
राजा दशरथ सुत राजा रामचन्द्र तुम,
चिरु चिरु राज करौ जाको ऐसो राज है॥

समता करते हुए भी उपमेय को उपमान से भिन्न बताना यही 'व्यतिरेकालंकार' है। इसका भी निर्वाह केशव जी ने कविप्रिया में खूब किया है। यहाँ पर भी उनका असली अस्त्र श्लेष ही काम में आया है। केशव जी ने व्यतिरेक के दो भेद माने हैं 'युक्ति व्यतिरेक' और 'सहज व्यतिरेक'। इनमें 'युक्ति व्यतिरेक' का उदाहरण ऐसा उत्कृष्ट बन पड़ा है कि हिन्दी-साहित्य में ऐसा और किसी भी कवि से नहीं बन पड़ा। इसमें राजा इन्द्रजीतसिंह की कल्पवृक्ष और इन्द्र के साथ समता दिखायी गयी है पर अन्तिम एक चरण में भिन्नता भी दर्शायी गयी है। कवि का यह छन्द उसकी प्रतिभा का उज्ज्वल उदाहरण है।

सुन्दर सुखद अति अमल सकल विधि,
सदल सफल बहु सरस सँगीत सों।
त्रिविधि सुबास युत केशोदास आसपास,
राजै द्विजराज तनु परम पुनीत सों।
फूले ही रहत दोऊ दीवेहेत प्रतिपल,
देत काम जानि सब मीतहू अमीत सों।
लोचन बचन गति बिनु इतनोई भेद,
इन्द्र तरुवर अरु इन्द्र इन्द्रजीत सों॥

अर्थ जरा सावधानी से लगाने से सरलता पूर्वक लग जाता है। यहां पर इन्द्रजीत शब्द को केशवदास जी ने अपने बुद्धि-विलास से सार्थक कर दिया। अब यमकालंकार की छटा देखिये।

हरित हरित हार हेरत हियो हेरात,
हारी हौं हरिन नैनी हरि न कहूँ लहौं।
बनमाली ब्रज पर बरसत बनमाली,
बनमाली दूर दुख केशव कैसे सहौं।
हृदयकमल नैन, देखिकै कमल नैन,
होहुँगी कमल नैनो, और हौं कहा कहौं।
आप घने घनस्याम, घन ही से होत घन,
सावन के द्यौस घनस्याम बिनु क्यों रहौं॥

यमक की अद्भुत शोभा, पहले चरण में हकार का अनुप्रास, और कितना सुन्दर शब्द संगठन है। साथ ही करुणा-विरह का करुण-क्रन्दन भी हृदय को वेध रहा है। कवित्त सुनने के पश्चात् ही श्रोता विरहनी का करुण-स्वर हृदयंगम कर लेता है।

केशव का विरह वर्णन भी बहुत अच्छा है। दो एक उदाहरण देखिये—

मेह कि हैं सखि आँसू उसाँसनि साथ निसासु बिसासिनि बाढ़ी।
हाँसी गयी उड़ि हंसिनि ज्यों चपला सम नींद भई गति काढ़ी॥
चातकि ज्यौं पिउ पिउ रटै चढ़ी ताप तरंगिनि ज्यों तन गाढ़ी।
केशव वाकी दसा सुनि हौं अब आगि विना अँग अंगन डाढ़ी॥

पद्माकर ने इसी भाव को लेकर उसे कुछ बढ़ाकर लिखा है।

"ताके तन ताप की तो बात ही कहा मैं कहूँ.
मेरेई छुए ते तुम्हें ताप चढ़ि आवैगी।

पति के जाने में नायिका जो जो कारण बता कर उसे विदेश गमन से रोकती है उसे केशवदाज जी ने आक्षेपालंकार के अन्तर्गत माना है। उसमें के कुछ आक्षेप सुनने और समझने लायक़ हैं। राधिका जी की 'चित्रा' सखी कृष्ण से उनके प्रवासित होने के सम्बन्ध में आक्षेप करती है—

गुनन वलित, कल सुरन कलित गान,
ललिता ललित गीत श्रवण रचाइ हैं।

चित्रिनी हौं चित्रन मैं परम विचित्र तुम्हैं,
चित्रन मैं देखि देखि नैनन नवाइ हैं ॥
काम के विरोधी मत शोधि शोधि साधि सिद्धि,
बोधि बोधि अवध के बासर गँवाई हैं ॥
केसोराम की सौं मोहि कठिन यहै है बाकी,
रसनै रसिक लाल पान को खवाइ हैं ?

केशवदास जी की सुकुमारता का वर्णन देखिये। जिसके भाव लेकर या जिसे देखकर अन्य परवर्ती कई कवियों ने अपने स्वतंत्र छन्द रचे हैं।

दूरिहै क्यों भूषन बसन दुति यौवन की,
देह ही की ज्योति होति द्यौस ऐसी राति है।
नाह की सुवास लागै ह्वै है कैसी केशव.
सुभाव ही की वास भौंर भीर फोर खाति है ॥
देखि तेरी मूरति की सूरत बिसूरति हौं
लालन को दृग देखिबे को ललचाति है।
चलगै क्यों चन्द्रमुखी कुचनि के भार भये,
कचन के भार तें लचकि लंक जाति है ॥

इसी प्रकार, विहारी, देव, पद्माकर आदि ने भी भाव लिए हैं।

संसार झूठा है पर सच्चा क्यों देख पड़ता है ? इसका सटीक (ठीक) कारण केशवदास जी बताते हैं—

अनही ठीक को ठग. जानै ना कुठौर ठौर,
ताही वै ठगावै ठेलि जाही को ठगतु है।
याके डर तू निडर ! डग न डगत डरि,
डर के डरन डगि डोंगी ज्यों डगतु है।
ऐसे वसोवास ते उदास होय केशोदास,
केशो न भजतु कहि काहे को खगतु है।
झूठो है रे झूठो जग राम की दोहाई काहू,
साँचे को कियो है ताते साँचो सो लगतु है ॥

सुन्दर दार्शनिक विचार और कविपांडित्य का कैसा संमिश्रण किया गया है ! सचमुच सच्चे परमात्मा की कृति होने से ही संसार सच्चा जान पड़ता है।

कवि-प्रतिभा के बल पर केशवदास जी ने कैसी खूबी के साथ इस बात को साबित कर दिया है जो विचारणीय है।

केशवदास जी ने कविप्रिया में 'दीपकालंकार' के अन्तर एक 'मणि-दीपक' अलंकार बतलाया है। उसमें किसी अच्छी वस्तु का उत्तम वर्णन करना ही 'मणि दीपक' अलंकार माना है। इसका मुख्य तात्पर्य उचित प्रयोग से है जिसे उर्दू में 'मौजूनियत' कहते हैं। उर्दू के कवि जिस प्रकार मौजूँ शब्दों का प्रयोग करते हैं उसी का बहुत अच्छा वर्णन केशव ने किया है। इस अलंकार के उदाहरण में दो छन्द दिये गये हैं। दोनों में औचित्य का इतना ख्याल रखा गया है कि उसे केशव की उत्तम कृति में स्थान देना उचित है। उन दोनों में से मैं यहां एक छन्द उद्धृत करता हूँ।

दक्षिण पवन दक्षि दक्षिणी रमण लगि,
लोलन करत लौंग लवली लता को फरु।
केशोदास केसर कुसुम कोश रस कण,
तनु तनु तिनहूँ को सहत सकल भरु।
क्यों हू कहूँ होत हठि साहस विलास वश,
चंपक चमेली मिलि मालती सुबास हरु।
शीतल सुगन्ध मन्द गति नन्द नन्दकी सौं,
पावत कहाँ ते तेज तोरिबो को मान तरु॥

वसंत की वायु का कैसा उत्तम वर्णन है। उस पवन को दक्षिण नायक के साथ मिलाया गया है। लोलन करत (हिलाता है, कँपा देता है), विलास वश होत और सुवास (सुगन्ध और सुन्दर वस्त्र) हरत शब्द कैसे उत्तम प्रयुक्त हुए हैं। इन्होंने कविता में जान डाल दी है। कैसे सच्चे हेतु बतलाये गये हैं। फिर भी वह पवन वृक्ष तोड़ने की शक्ति कहां से पाता है इसका स्पष्टीकरण नहीं हुआ।

+ + +

यद्यपि केशवदास जी आचार्य थे। फिर भी वे कहीं कहीं कुछ साधारण गलतियां भी कर गये हैं। हो सकता है उन्होंने दोष का उदाहरण भी अपने इस कर्तव्य द्वारा दिया हो। पर फिर भी यह बात उन दोषों को पूर्ण रूपेण निर्मूल करने में समर्थ नहीं है। यह बात भी मानी जा सकती है कि केशव-

दास जी की कविताओं की प्रतिलिपि करने वाले लेखकों ने कविता में इस प्रकार की भूलें भ्रम से कर दी हों पर यह भी हम नहीं मान सकते। मनुष्य से भूलें होती हैं, केशवदास जो से भूलें होना आश्चर्य नहीं।

केशव का चित्र-काव्य भी कम नहीं है। जो कुछ है वह अच्छा है। एक अक्षर के शब्दों के संयोग से बना हुआ दोहा भी विचित्र है। इसका अर्थ लोग अपने अपने विचारानुकूल लगाते हैं।

गो, गो, गं, गो, गी, अ, आ, श्री, धो, ही, भी, भा, न।
भृ, ख, वि, स्व, ज्ञ, द्यौ, हि, हा, नौ, ना, सं, भं, मा, न॥

इस प्रकार केवल एक अक्षर के शब्दों से छन्द रचना की गयी है। और भी चित्र-काव्य के कितने ही उदाहरण हैं पर वे बड़े जटिल हो गये हैं। एक तो केशव की कविता जटिल, उस पर चित्र-काव्य जटिल विषय, दोनों की जटिलता ने मिलकर छन्द के प्रसाद और माधुर्य गुणों पर पानी फेर दिया है।

एक स्थान पर निम्न छन्द निरोष्ट के उदाहरण में दिया गया है। पर उसमें नियम का पालन नहीं है।

लोक लाक नीकी, लाज लीलत हैं नन्दलाल,
लोचन ललित लोल लीला के निकेत हैं।
सोंहन को सोच न सकोच लोका लोकनि को,
देत सुख ताको सखी दूनो दुख देत हैं।
केशोदास कान्हर कनेर ही के करेरक से,
वाह्य रंग राते अँग, अंतस में सेत हैं।
देखि देखि हरि की हरनता हरिन नैनी,
देखत ही देखो नहीं हियो हरि लेत हैं॥

२

रेखांकित सस्वर अक्षरों का उदाहरण संस्कृत के नियमानुसार ओठों की सहायता के बिना हो ही नहीं सकता। जैसे "उपूपाध्मानी यायां ओष्ठौ" "ओदौतौ कंठोष्टम्" "वकारस्य दंतोष्टम्" आदि। केशवदास जी ने परिभाषा में लिखा है—

पढ़त न लागै अधरसों, अधर वरण त्यो मंडि।
और वरण वरणै सबै 'उप' वर्गहिं सब छंडि॥

किन्तु इस परिभाषा के अनुसार भी देखने पर 'सुख', 'दूनो' 'दुख' और 'में' शब्दों में 'उप' मौजूद है। हो सकता है इसका पाठ ही गलत हो।

इसी प्रकार केशवदास जी ने एक स्थान में 'भाव' के लिए 'भव' रखा है जो बड़ा भ्रामक और दूषित प्रयोग हो गया है। केशवदास जी ने और भी दो-एक शब्दों को विकृत किया है पर उनका रूप इतना बिगड़ा नहीं है। कुछ लोग कहते हैं कि इनकी कविता में रस-परिपाक अच्छा नहीं है, ये हृदय-हीन कवि थे। पर न्याय की दृष्टि से और सहृदय बनकर देखने से इनकी कविता में रस का अद्भुत परिपाक देख पड़ा है। दुर्बोधता के कारण, रसका परिपाक अच्छा हुआ है या नहीं यह बात शायद नहीं मालूम होती। अर्थ समझ लेने पर रस-परिपाक पूर्ण दीख पड़ता है।

केशवदासदास जी शृंगारी कवि थे। इस कारण शृंगार वर्णन इनसे बहुत अच्छा बन पड़ा है। अन्य रसों में वे सिद्धहस्त तो थे ही पर उतनी सिद्धहस्तता नहीं थी जितनी शृंगार में। किसी वस्तु का वर्णन करना और उस पर नाना प्रकार की उत्प्रेक्षाएँ करना केशव का विशेष कार्य था। केवश की उपमाएँ बड़े मार्के की और उत्प्रेक्षाएँ बड़ी मनोमुग्ध-कारी हुई हैं।

केशवदास जी अनुप्रास के तो उतने प्रेमी नहीं थे, पर यमक उन्हें अधिक प्रिय था। कहीं कहीं उन्होंने यमक को भी श्लेष का रूप दिया है। केशवदास जी की विवेचन शक्ति बड़ी उत्तम है। शब्दों का उचित प्रयोग भी इन्होंने खूब ही किया है। ऊपर जितना विवरण दिया गया है, उससे केशवदास जी की पूरी प्रतिभा प्रकट हो जाती है।

केशवदास जी के विषय में कुछ अधिक कहना अनधिकार चेष्टा है। क्योंकि जब तक कवि से अधिक विद्वत्ता न हो और कम से कम उसके बराबर माद्दा न हो तब तक उसकी उत्कृष्ट आलोचना नहीं हो सकती। पर इतना होते हुए भी काव्य-सामग्रियों की कसौटी पर कवि की कृति भली-भांति कसी जा सकती है और उसका अधिकार काव्य से प्रेम रखने वाले सभी मनुष्यों को है। इनके ग्रन्थों का मनन करने से हम जिस सिद्धान्त पर पहुँचे हैं वह यह है कि इनके ऐसे पण्डित कवि हिन्दी में बहुत कम हुए हैं। श्लेष का इन्हें सम्राट कहना चाहिए। आशा है आधुनिक साहित्य-प्रेमी जन केशव के ग्रन्थों का अध्ययन करके अपने हृदय को आनन्द पहुँचायेंगे। क्योंकि अर्थ-क्लिष्टता का झगड़ा प्राचीन काव्य-मर्मज्ञ स्वर्गीय लाला भगवान दीन जी की टीकाओं से बहुत कुछ मिट गया है। कवियों, लेखकों और समालोचकों के लिए केशव की 'कविप्रिया' पढ़ने योग्य है।

* * *

लेखकों और विद्वानों से

हिन्दी साहित्य सम्मेलन की मुखपत्रिका 'सम्मेलन पत्रिका' आप के पास जाती रहती है। हम चाहते हैं कि 'सम्मेलन पत्रिका' प्रतिमास ठीक समय पर प्रकाशित हो तथा साहित्यिक पाठ्य सामग्री तथा प्राचीन और वर्तमान काव्यों की आलोचनाओं, प्रगतिशील साहित्यिक और खोजपूर्ण लेखों से युक्त हो। ऐसी दशा में आप ऐसे विद्वानों की सहायता की आवश्यकता है। इसलिये शीघ्र ही कोई श्रेष्ठ साहित्यिक लेख भेजने का कष्ट कीजिये। साथ ही आप से निवेदन है कि अपने इष्ट मित्रों तथा हिन्दी प्रेमियों को इसका ग्राहक भी बनवावें। यदि इसकी संख्या पर्याप्त हो गई तो पृष्ठ संख्या और पाठ्य सामग्री में भी वृद्धि की जा सकेगी।

विनीत

ज्योतिप्रसाद मिश्र निर्मल

साहित्यमंत्री

हिन्दी-संसार

[लेखक, पंडित जगन्नाथप्रसाद शुक्ल वैद्य, संग्रह मन्त्री]

भारत की भाषा उर्दू है— यह तो माना जा सकता है कि सर तेज़-बहादुर सप्रू ने लड़कपन से उर्दू सीखी है, उसे ही वह जानते और उसे ही पसन्द करते हैं; परन्तु यह कैसे माना जाय कि यह सत्य भी उनसे छिपा है कि पञ्जाब और संयुक्तप्रान्त के कुछ भाग को छोड़ भारत के अन्य भागों में उर्दू समझने वाले लोग अधिक नहीं हैं। इतना होने पर भी समय समय पर आप यह कहने से नहीं चूकते कि भारत की भाषा उर्दू है। अभी कुछ दिन पहले आप काश्मीर में थे। उस समय एक कवि-सम्मेलन के सभापति पद से आपने कहा कि भारत की बोलचाल की भाषा केवल उर्दू हो सकती है। आपने यहां तक कह डाला कि "इस समय भाषाओं के सम्बन्ध में बड़ा विवाद चल रहा है। पेशावर से लेकर सी० पी० तक और बम्बई के भी कुछ भागों में यदि किसी भाषा को समझा जा सकता है तो वह उर्दू है। मैं यह स्वीकार करने से इनकार करता हूँ कि उर्दू मुसलमानों की भाषा है। यदि मुसलमान यह दावा करते हैं कि उर्दू उनकी भाषा है तो मैं उनके इस दावे को स्वीकार करने से इनकार करता हूँ, क्योंकि हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ने ही उसका निर्माण किया है। कोई कारण नहीं कि हिन्दू उर्दू से घृणा करें। इस समस्या को सुलझाने में हिन्दुस्तानी शब्द ने और भी कठिनाइयां उत्पन्न कर दी हैं। वास्तव में हिन्दुस्तानी कोई भाषा नहीं है। तामिल तथा तेलगू को भी हिन्दुस्तानी भाषा कहा जा सकता है। यदि हिन्दुस्तानी का अर्थ वह भाषा है जो अब से ५० वर्ष पहले दिल्ली में बोली जाती थी और अब भी लखनऊ में प्रचलित है तो मैं उसे स्वीकार करने के लिये तैयार हूँ। उर्दू एक बपौती है जिसे भारत ने अपने पूर्वजों से प्राप्त किया है। मैं एक हिन्दू होने के नाते यह कहने में झिझक अनुभव नहीं करता कि उर्दू हमारी मातृभाषा है। हिन्दू तथा मुसलमानों को बांधने वाला केवल एक बन्धन है और वह है उर्दू भाषा। इस बन्धन को

तोड़ना पाप होगा।" मालूम नहीं सर तेजबहादुर सप्रू साहब हिन्दी का अस्तित्व भी स्वीकार करते हैं या नहीं ?

हिन्दुस्तानी राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती—अभी गणेशोत्सव के अवसर पर में इलाहाबाद युनिवर्सिटी के वाइस चांसलर पण्डित अमरनाथ झा ने ग्वालियर में एक भाषण दिया था। उसमें अन्य बातों के साथ राष्ट्रभाषा पर बोलते हुए आपने कहा "भारत की राष्ट्रभाषा बनने के लिये यह आवश्यक है कि वह भाषा संस्कृत से सम्बन्धित हो। आजकल एक ऐसी भाषा निकालने का प्रयत्न हो रहा है जिसे हम अशुद्ध हिन्दी का रूप या बेढङ्गी उर्दू कह सकते हैं। कुछ संस्कृत के शब्द और कुछ फारसी के शब्द मिला कर एक ऐसी भाषा बनायी जा रही है जिसका कुछ भी महत्व नहीं और जिसे हिन्दुस्तानी के नाम से पुकारा जाता है। अगर हिन्दुस्तानी अपना अस्तित्व स्थिर रख सकती है तो यह आवश्यक है कि वह जनता की भाषा हो। एक नयी भाषा को जन्म देने के प्रयत्न में तथा हिन्दी और उर्दू को मिटाने में इस भाषा के जन्मदाताओं के सम्मुख ऐसी विषम परिस्थितियां तथा कठिनाइयां उत्पन्न होंगी जो किसी प्रकार सुलझायी नहीं जा सकतीं। उत्तरी भारत में क़रीब १५० वर्ष से उर्दू शहरी भाषा रही है। जहां मुसलमानी सभ्यता का प्रभाव था, वहां राज भाषा होने के कारण उर्दू उन लोगों की भाषा बन गयी जो राज-काज से सम्बन्ध रखते थे। इसमें भारतीयता का कुछ अंश नहीं था और न ग्रामीण जनता से इसका कुछ भी सम्बन्ध रहा। संयुक्तप्रान्त से बाहर के मुसलमान भी उर्दू से अनभिज्ञ रहे। हिन्दी का सम्पर्क सदैव जन समुदाय से ही रहा। हिन्दी भाषा साहित्य की दृष्टि से भी बहुत धनी है। इसमें महात्माओं की वाणियाँ, भक्तमाल की रचनाएँ तथा महाभारत और रामायण जैसी श्रेष्ठ साहित्यिक पुस्तकें मौजूद हैं। इसका विशेष महत्व इस बात में है कि इसका आदि मूल संस्कृत है, और संस्कृत से ही ली जाने के कारण इसका सम्बन्ध बंगाली, मराठी, गुजराती, तामिल, तेलगू, कनाड़ी आदि भाषाओं से है। मद्रास और मैसूर में जो सफलता इसे मिल रही है वह इस कारण नहीं कि यह आसानी से सीखी जा सकती है। कारण यह है कि यह भारत के सब से अधिक भाग की बोलचाल की और समझी जाने वाली भाषा है। परि-

स्थितियों में यह सम्भव नहीं कि हिन्दुस्तानी को हिन्दी या उर्दू की जगह अपनाया जावे। दोनों का अस्तित्व आवश्यक है।"

हिन्दी का भविष्य--अभी कुछ दिन पहले बनारस ज़िले का हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन हुआ था। उसमें बोलते हुए संयुक्तप्रान्तीय शिक्षा-मन्त्री श्रीयुत सम्पूर्णानन्द जी ने हिन्दी के भविष्य के सम्बन्ध में कहा था "आजकल कुछ लोगों के मन में हिन्दी के भविष्य के सम्बन्ध में शङ्का उत्पन्न हो गयी है। मगर मैं समझ नहीं पाता कि उनमें ऐसी कमज़ोरी क्यों आ गयी है? जिस भाषा में राष्ट्र का भाव होगा वही राष्ट्र भाषा होगी और वही राष्ट्र भाषा रह भी सकेगी। चाहे कोई गवर्नमेंट किसी भाषा को राष्ट्र भाषा भी बना दे तो भी इसे रोक नहीं सकती। कोई सरकार या लेखक किसी भाषा को रूप नहीं दे सकता। लेखक चाहे तो उसे सुन्दर भले ही बना दे या कृत्रिम कर दे। भाषा को तो राष्ट्र ही रूप दे सकता है। ऐसी दशा में उसमें राष्ट्रीयता रहेगी ही। हमारे यहां राष्ट्रीय भावना बढ़ती जा रही है; इसलिये उसकी द्योतक और उसका विकास करनेवाली भाषा ही राष्ट्र भाषा होगी। इसमें कोई चिन्ता करने की बात नहीं है। पहले की सरकार का हिन्दी से विशेष प्रेम नहीं था तो भी हिन्दी पढ़ायी जाती थी। हिन्दी लेकर इम्तिहान देने वालों की संख्या बढ़ती ही जाती थी। अब तो राष्ट्र के भावों के अनुकूल चलने वाली गवर्नमेंट है। फिर हिन्दी के भविष्य के विषय में भय कैसा? युक्तप्रान्त की सरकार ने एक लाख से अधिक की हिन्दी पुस्तकें खरीदी हैं और उन्हें देहाती पुस्तकालयों को दिया है। इससे हिन्दी प्रचार में सहायता ही मिलेगी। हमें तो हिन्दी-साहित्य का भविष्य उज्ज्वल ही मालूम पड़ता है।"

राष्ट्रभाषा सीखिये—कुछ दिन पहले पण्डित जवाहरलाल नेहरू लखनऊ गये थे। वहां के विश्वविद्यालय के छात्रों के बीच आपके भाषण हुए। एक दिन आपने विद्यार्थियों के अनुरोध करने पर हिन्दी के साथ ही अँग्रेज़ी में भी भाषण किया। दूसरे दिन फिर आपको बोलना पड़ा, तब भी कुछ विद्यार्थियों ने कहा कि आप भाषण अँग्रेज़ी में दें; क्योंकि कुछ लोग हिन्दुस्तानी नहीं समझेंगे। इसके उत्तर में आपने कहा कि कल की सभा में भी इसी प्रकार का अनुरोध किया गया था; किन्तु बाद मैंने अँग्रेज़ी बोलने की

गल्ती को महसूस किया। ऐसे अवसरों पर अँग्रेज़ा में भाषण देने का सिद्धान्त ही गलत है। जितना ही मैं विदेशों में भ्रमण करता हूँ उतना ही मुझे यह अनुभव होता है कि जब तक हम किसी देश की भाषा नहीं समझते, हम उसकी भावनाओं को भलीभांति समझ नहीं सकते। जब मैं चीन गया तो मुझे सर्व प्रथम यही ख्याल पैदा हुआ कि यदि मुझे वहां कई महीना रहना हो तो बगैर चीनी भाषा के ज्ञान के मैं वहां की विचार धारा और भावनाओं को ग्रहण नहीं कर सकूँगा। यह आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति हिन्दुस्तानी जाने अन्यथा वह भारत की भावनाओं और विचार धारा से अपरिचित रहेगा। जो लोग अन्य प्रान्तों से विद्योपार्जन के लिये आये हैं उन्हें महसूस करना चाहिये कि हिन्दुस्तानी अर्थात् राष्ट्रभाषा सीखने का यही उपयुक्त अवसर है। देखिये बाबू सुभाषचन्द्र बोस की मातृभाषा यद्यपि बँगला है किन्तु वे भली भांति हिन्दुस्तानी बोल लेते हैं।

पाठ्य पुस्तकें-- महात्मा गांधी जी 'हरिजन' में लिखते हैं—कोर्स की किताबों को हमेशा बदलते रहने का पागलपन शिक्षा के दृष्टिकोण से कोई अच्छी बात नहीं है। यदि कोर्स की किताबों को ही शिक्षा का साधन मान लिया जावे, तो जीते-जागते अध्यापक के अध्यापन की उपयोगिता बहुत कम रह जाती है। जो अध्यापक कोर्स की किताबों की मार्फत पढ़ाता है, वह अपने विद्यार्थियों में मौलिकता नहीं पैदा कर सकता। वह खुद कोर्स की किताबों का गुलाम हो जाता है और अपनी मौलिकता दिखाने का उसे कोई अवसर या मौक़ा नहीं मिलता। इसलिए यह प्रतीत होता कि कोर्स की किताबें जितनी कम हों, विद्यार्थियों और अध्यापकों के लिए उतना ही अच्छा है। ऐसा मालूम होता है कि कोर्स की किताबें व्यापार की चीज़ बन गई हैं। कोर्स की किताबों को लिखने वाले लेखक और छापनेवाले प्रकाशक अपने पैसे बनाने के लिए किताबों की जल्दी-जल्दी तब्दीली में खास दिलचस्पी लेते हैं। बहुत दफ़ा तो अध्यापक और परीक्षक स्वयं ही कोर्स की किताबों के लेखक होते हैं। यह स्वाभाविक ही है कि वे अपने स्वार्थ की दृष्टि से अपनी किताबों को बहुत बेचना चाहें। फिर चुनाव बोर्ड में भी स्वभावतः ऐसे ही लोग होते हैं और इस तरह यह दुष्ट चक्र पूरा बन जाता है और माता-पिता आदि संरक्षकों के लिए

हर साल नई किताबों के लिए पैसा खर्च करना कठिन हो जाता है। जब लड़के और लड़कियां किताबों का भारी गट्ठर लिये, जिसे उठाना उनके लिए मुश्किल होता है, स्कूल जाते हैं, तब उन्हें देखकर दुःख होता है। सारी की सारी पद्धति को ही बिलकुल बदलने की जरूरत है। इसमें से व्यापारिक भावना को तो बिलकुल नष्ट कर देना चाहिए और सारे सवाल पर विद्यार्थियों के दृष्टिकोण से ही विचार करना चाहिए। ऐसा करने पर हम देखेंगे कि कोर्स की ७५ फीसदी किताबें रद्दी की टोकरी में फेंक देनी होंगी। यदि मेरे हाथ में होता, तो मैं ज्यादातर ऐसी ही किताबें बनवाता जो विद्यार्थियों की अपेक्षा अध्यापकों को ज्यादा मदद दें। जो किताबें विद्यार्थियों के लिए निहायत जरूरी हों, उन्हें कई साल तक नहीं बदलना चाहिए, ताकि वे इतने कम खर्च में विद्यार्थियों तक पहुँच सकें, जिसे मध्यश्रेणी के ज्यादातर लोग आसानी से बरदाश्त कर सकें। इस दिशा में पहला कदम शायद यह है कि सरकार कोर्स की किताबों का मुद्रण और प्रकाशन अपने हाथ में ले ले। इससे पुस्तकों की वृद्धि खुदबखुद कुछ रुक जायगी।

मातृभाषा का महत्व--मद्रास ममबलम छात्र संघ के अधिवेशन में मद्रास असेम्बली के अध्यक्ष माननीय साम्बमूर्ति ने भाषण किया था। उसमें आपने कहा कि विश्वविद्यालयों का कर्तव्य है कि छात्रों को मातृभाषा द्वारा शिक्षा देने की व्यवस्था करें। देश में लोकतन्त्र का भाव बढ़ रहा है और भाषाओं के आधार पर प्रान्तों का विभाजन होने लगा है। ऐसी स्थिति में मातृभाषा द्वारा शिक्षा देना ही स्वाभाविक व्यवस्था होगी। जब तक किसी प्रान्त विशेष की मातृभाषा राजभाषा नहीं बन जाती तब तक कोई भी प्रान्तीय भाषा अँग्रेज़ी को स्थानच्युत करने में सफल नहीं हो सकती।

पद्माकर अनुसन्धान--हिन्दी आज नहीं सदियों पहले से भारत की राष्ट्रभाषा रही है। बंगाली जिन्हें अपना आदि कवि मानते हैं वे विद्यापति हिन्दी के ही कवि हैं। गुजरात के नरसी मेहता आदि हिन्दी में पद्य रचना करते थे। पुष्टिमार्ग प्रवर्तक गोस्वामी वल्लभाचार्यजी ने अपने मत प्रचार के लिये हिन्दी को अपनाया। मराठी कवियों में भी हिन्दी का प्रभाव

पड़ा। महाकवि पद्माकर, कुमारमणि और गदाधर भट्ट दक्षिण भारतीय थे। बीकानेर में ढूंढ़ खोज करते समय एक श्लोक मिला है, जिससे मालूम पड़ता है कि २५० वर्ष पहले सं० १७४७ के समय ही छन्दशास्त्र के निष्णात विद्वान गदाधर भट्ट जैसों ने हिन्दी भाषा के साथ ही नागरी अक्षरों को भी प्रोत्साहन दिया है। "म्ये मद्वंश्यः आसते तत्र विप्राः तेष्व स्माकं सन्तु नित्यं प्रमाणाः। स्वीयं वृत्तं सर्वदा प्रापणीयम् पत्र द्वारा नागरैर्-रैक्षकैर्नः॥" इन उदाहरणों से उत्साहित होकर साहित्याचार्य श्रीयुक्त भालचन्द्र राव तैलङ्ग ने प्रस्ताव किया है कि बांदा के जिस बलखण्डी नाका में महाकवि पद्माकर का निवास था, वहां १५० × ७० क्षेत्रफल के भूभाग पर एक पद्माकर अनुसन्धान शाला स्थापित की जाय, जिसमें एक संग्रहालय, एक तन्त्रालय और एक पाठशाला का आयोजन हो। हमारी समझ में ऐसे महाकवियों के स्थान, जीवन चरित्र, उनकी कृति और सम्मान के दरबारों का पता लगाकर आवश्यक सामग्री की खोज तो अवश्य होनी चाहिये; किन्तु यदि संग्रहालय अलग स्थापित न भी हो सकें तो हिन्दी साहित्य सन्मेलन का संग्रहालय तो है ही, उसमें ऐसी वस्तुओं की सुरक्षा का अच्छा प्रवन्ध है। आशा है हिन्दी-प्रेमी ऐसी अनुसन्धान समिति के स्थापन पर अवश्य ध्यान देंगे।

प्रान्तीय साहित्य सम्मेलन—श्रीयुत बनारसीदास चतुर्वेदी प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनों के सम्बन्ध में बराबर ज़ोर दिया करते हैं। अभी मध्यप्रदेश के कार्यकर्ताओं को भी आपने परामर्श दिया है। आपकी राय में प्रान्तिक सम्मेलनों का महत्व अखिल भारतीय सम्मेलनों से कम नहीं है। ये केन्द्रीय संस्था से कहीं अधिक उपयोगी बनाये जा सकते हैं। इनके पहले प्रचार की दृष्टि से प्रान्त के भिन्न भिन्न भागों में साहित्यिक विषयों में भाषण हों, ज़िलों और नगरों में हिन्दी परिषद या हिन्दी मण्डल स्थापित हों। आवश्यकता है कि अन्य प्रान्तों के नेता भी प्रान्तीय सम्मेलनों के अवसर पर बुलाये जावें जिससे वे प्रान्तीय जागृति में सहायक हों। देहाती स्कूलों के अध्यापकों में साहित्य प्रेम उत्पन्न किया जाय और ग्राम पुस्तकालय स्थापित कराये जायँ। ग्रामगीतों, ग्रामीण कहानियों और मुहाविरों का संग्रह किया जाय। इसके लिये तीन छोटे छोटे पुरस्कार भी दिये जावें। प्रान्तीय साहित्य-क्षेत्र का सर्वे होना आवश्यक है जिससे मालूम पड़े कि कहां क्या काम हुआ है और क्या होना आवश्यक है? प्रान्त के प्रतिभाशाली युवक लेखकों और

कवियों को प्रोत्साहन दिया जाय और प्रान्त के बाहर लोगों में भी उनका परिचय बढ़ाया जाय। सम्मेलन के अधिवेशन के एक दिन पहले साहित्य सेवियों की एक मीटिंग होनी चाहिये जिसमें प्रान्त के साहित्यिक शिक्षा सम्बन्धी तथा सांस्कृतिक प्रश्नों पर गम्भीरता पूर्वक विचार हों और आगामी कार्य क्रम निश्चित हो। अन्तर्प्रान्तीय साहित्यिक संगठन और सहयोग का भी प्रयत्न हो। ऐसे अवसर पर प्रान्तीय पत्रों के विशेषांक निकाले जावें। सम्मेलन समयके साधारण जनता के मनोरञ्जनार्थ नाटक, कवि सम्मेलन और कवि दरबार की योजना होनी चाहिये। सम्मेलन के समाचार पत्रों में छपने चाहियें। यदि बाहर से आये हुए सज्जन प्रान्त में चार पांच दिन तक दौरा भी करें तो अच्छा होगा। सम्मेलन के समय प्रोग्राम बहुत ठसाठस न रखा जाय। प्रान्त के साहित्य-सेवियों को कुछ न कुछ रचनात्मक कार्य सौंपा जाय। सभापति ऐसे सज्जन को बनाना चाहिये जो कम से कम तीन चार महीने अवश्य काम कर सकें। वयोवृद्धों का सम्मान अधिवेशन के उद्घाटन संस्कार कराकर किया जा सकता है। प्रान्त के सुन्दर प्राकृतिक स्थलों की यात्रा भी ऐसे अवसर पर की जा सकती है।

———

सम्मेलन-परीक्षकों, केन्द्र-व्यवस्थापकों और परीक्षार्थियों से—

हिन्दी-साहित्य सम्मेलन की मुख पत्रिका 'सम्मेलन पत्रिका' पिछले कई वर्षों से प्रकाशित हो रही है। इसमें समम समय पर, लेखों के सिवा सम्मेलन की लोकप्रिय परीक्षाओं के परीक्षाफल तथा अन्य आवश्यक सूचनाएँ प्रकाशित होती रहती हैं। हम चाहते हैं कि पत्रिका आगे से और भी सुन्दर रूप में प्रकाशित हो। विशेष कर परीक्षार्थियों के लिये उपयोगी और पठनीय लेखों से इसका कलेवर अलंकृत हो। इसलिये उनसे हमारा विशेष अनुरोध है कि वह इसके प्रचार में हमारी सहायता करें। वे स्वयं तो ग्राहक बनें ही साथ ही अपने मित्रों तथा हिन्दी प्रेमियों को भी बनावें। यदि दो-तीन सौ १) वाले ग्राहक 'पत्रिका' को और प्राप्त हो जायें तो इसकी कलेवर वृद्धि अवश्यम्भावी है। 'पत्रिका' हिन्दी प्रेमियों के लिये और भी अधिक उपयोगी सिद्ध होगी। हमें आशा है कि हिन्दी प्रेमी इस ओर समुचित ध्यान देकर 'पत्रिका' को अधिक उन्नतिशील बनाने में हमारा सहयोग करेंगे। —साहित्य-मन्त्री

प्राप्ति-स्वीकार

[लेखक, पं० जगन्नाथप्रसाद शुक्ल वैद्य, संग्रह मन्त्री]

निम्नलिखित पुस्तकें हिन्दी संग्रहालय के लिये प्राप्त हुई हैं। इसके लिये पुस्तक लेखक और प्रकाशक महोदयों को अनेक धन्यवाद।

अपराजिता—श्रीयुत रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' प्रतिभाशाली कवि हैं। अपराजिता में उनकी मर्म स्पर्शी मधुर कविताओं का संग्रह है। अंचल जी की प्रथम प्रकाशित कविताओं से इसमें क्रम-विकास का अच्छा परिचय मिलता है। इस संग्रह की कविताएँ अधिक भावोत्पादक, गंम्भीर और कवि के उच्च हृदय का परिचय देने वाली हैं। छायावाद में भी छाया ही नहीं शरीर का, जीवन का और अनुभूति का भी पता लग जाता है। केवल कल्पना ही नहीं सहृदता का भी पुट है। आशा है आपकी अगली कृति अधिक साहस फूँकने वाली, ओजमयी और उच्च कर्तव्य की प्रेरणा देने वाली होगी। मूल्य २)। इसका प्रकाशक छात्र हितकारी पुस्तक माला दारागञ्ज प्रयाग है।

हिन्दी साहित्य का इतिहास—माननीय मिश्रबन्धु रावराजा डाक्टर श्यामविहारी मिश्र एम० ए० डी० लिट्० और रायबहादुर पण्डित शुकदेव विहारी मिश्र रचित यह हिन्दी साहित्य का इतिहास है। मिश्रबन्धु विनोद में हिन्दी कवियों का इतिहास है और इसमें साहित्यिक दृष्टि से इतिहास लिखा गया है। इससे हिन्दी की क्रमोन्नति का प्रर्याप्त ज्ञान हो सकता है। हिन्दी की उत्पत्ति, धार्मिक विकास, चन्द के पूर्व और रासोकाल, प्रारम्भिक, पूर्व माध्यमिक, सौरकाल, तुलसीकाल, पूर्वालंकृत काल, उत्तरालंकृतकाल, परिवर्तन काल, वर्तमान काल, पूर्वनूतन काल और उत्तर नूतन काल नामक खण्डों में पुस्तक विभाजित है। पुस्तक सर्वथा पठनीय है। दाम १॥) पता---गंगा ग्रंथागार, अमीनाबाद पार्क लखनऊ।

संसार-रहस्य—सांसारिक जीवन धन-विलास-अधिकार-विभव और मान बड़ाई से पूर्ण रहता है। अतःकरण और ईमान का नाम कितने ही ज़ोर से क्यों न लिया जाय किन्तु उसके भीतर विभव और अधिकार का ही विस्तार दिखाता है। जीवन में तर्क-भाव और सुख दुःख के अनुभव समाविष्ट हैं। भौतिक जीवन और आध्यात्मिक जीवन की दशाएँ भी भिन्न भिन्न हैं। इस तरह के द्वन्द्वमय जीवन की कल्पना, विचार और अनुभव की कसौटी में उतार कर यह संसार-रहस्य उपन्यास रूप में लिखा गया है। वर्णन आकर्षक और मनोरञ्जक हुआ है। लेखक हैं ठाकुर प्रसिद्ध नारायण सिंह बी० ए० एम० एल० सी०। १॥) में गङ्गा ग्रन्थागार लाटूश रोड लखनऊ से मिल सकता है।

महाभारत—महाभारत के मूल कथा-भाग को पण्डित सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने अठारहों पर्वों के सारांश रूप में इसे लिखा है। ३६४ पृष्ठों में महाभारत रूपी सागर को निराला जी ने गागर में भर दिया है। यही नहीं कथा भाग का सारांश अच्छी तरह व्यक्त कर दिया गया है। पुस्तक सर्वथा सुपाठ्य और संग्रहणीय है। दाम २) पता—गङ्गा ग्रन्थागार लाटूश रोड लखनऊ।

मकरन्द—श्रीमती रामेश्वरी देवी 'चकोरी' की कविताओं का इसमें संग्रह है। चकोरी जी की कविताएँ साहित्य-क्षेत्र में आदर की वस्तु समझी जाने लगी थीं; किन्तु दुःख की बात है कि असमय में ही वे स्वर्गवासिनी हो गयीं। यह उनकी कविताओं का दूसरा संग्रह है। विचार सौष्ठव, कल्पना-गाम्भीर्य और प्रसाद-गुण की दृष्टि से कविताओं में कवियित्री जी को अच्छी सफलता मिली थी। इसका संकलन उन्हीं के पति पं० लक्ष्मी शंकर मिश्र 'अरुण' ने किया है। मूल्य ॥=) मिलने का पता—गंगा ग्रन्थागार लाटूशरोड, लखनऊ।

शिशुपालन—श्रीयुत अत्रिदेव गुप्त एक मननशील उच्चमना वैद्य लेखक हैं। आपने ही शिशुपालन विषय में यह पुस्तक लिखी है। दस प्रकरणों में इस सम्बन्ध की सभी आवश्यक बातों का इसमें विवेचन हुआ है।

पुस्तक प्रत्येक स्त्री के पढ़ने योग्य है। मूल्य २) मिलने का पता—गङ्गा ग्रन्थागार लाटूशरोड लखनऊ।

सुखी जीवन——कहानी और उपन्यास संसार में कौतूहल उत्पन्न करने वाले आयुर्वेदाचार्य श्रीयुत चतुरसेन शास्त्री जी की यह कृति है। आपकी वर्णनशैली सजीव और आकर्षक होती है। सुखी जीवन बनाने के लिये पति-पत्नी को क्या करना चाहिये इसी का इसमें २४ विषयों में विभक्त कर वर्णन किया गया है। दाम ।।।) मिलने का पता—गंगा ग्रन्थागार अमीनाबाद लखनऊ।

ला मज़हब—सात कहानियां का संग्रह है। कहानियां हृदय हिलोड़ने वाली हैं। स्वछन्द विचार किन्तु नैतिकता की रक्षा करते हुए कहानी का स्रोत चलता गया है। इसके लेखक श्रीयुत बलभद्र दीक्षित हैं। ।।।) में प्रकाशक पटना पब्लिशर्स बांकीपुर पटना से मिल सकती है।

रजकण—श्रीमती शकुन्तला श्रीवास्तव की कविताओं का संग्रह है। स्त्री सुलभ विचारों और भावों का सुरम्य संग्रह है। सच्ची आह और सहानुभूति का सामान है। कुल ४८ कविताएँ हैं। श्रीमती शकुन्तलाजी कानपुर के मज़दूर-सेवक श्रीयुत हरिहरनाथ जी शास्त्री की अर्धाङ्गिनी हैं। दाम ।।) पत प्रकाशक पटना पब्लिशर्स बांकीपुर पटना।

सिंहगढ़ विजय—यह सिंहगढ़ विजय की ऐतिहासिक पुस्तक नहीं बल्कि १० कहानियों का एक संग्रह है, जिसमें एक कहानी सिंहगढ़ विजय भी है। लेखक हैं आयुर्वेदाचार्य श्रीयुत चतुरसेन जी शास्त्री, भाषा ओजपूर्ण और कल्पना वेदना विह्वल भाव प्रकट करने वाली है। दाम १) अधिक मालूम पड़ता है। पता, प्रकाशक पटना पब्लिशर्स बांकीपुर पटना।

अपराधी कौन—श्रीयुत इन्द्र विद्या वाचस्पति का लिखा हुआ यह तहलका मचा देने वाला क्रान्तिकारी उपन्यास है। दाम १।।) पता, विजय पुस्तक भण्डार, अर्जुन प्रेस, दिल्ली।

———

राष्ट्रभाषा और हिन्दी

[लेखक, प्रिंसिपल श्री हरिकृष्णदास मलकानी एम० ए०, काशी]

सिन्धी और राष्ट्रभाषा के सम्बन्ध में मेरा विचार है कि हिन्दी ही को राष्ट्रभाषा का पद मिलना चाहिए। यद्यपि सिन्धी और हिन्दी के इतिहास का अध्ययन किया जाय तो ज्ञात होता है कि सिन्धी हिन्दी की बड़ी बहिन है। क्योंकि सिन्धी का विकास साक्षात ब्राचड़ अपभ्रंश से है और हिन्दी के आधुनिक रूप एवं आधुनिक हिन्दी के मूल अपभ्रंश के बीच में कई कड़ियाँ हैं। तथापि छोटी बहिन—हिन्दी बड़ी—सिन्धी से बढ़ गई है। सिन्धी भाषा का क्षेत्र भारतवर्ष का पश्चिमी प्रान्त है। वहीं के निवासी सिन्धी बोलते और लिखते हैं पर हिन्दी का प्रचार भारतवर्ष के एक विस्तृत भूभाग में पाया जाता है। धीरे-धीरे सभी प्रान्तों में हिन्दी भाषा को समझने वाले लोग बढ़ते जा रहे हैं। अतः सिन्धी की अपेक्षा हिन्दी का प्रचार-क्षेत्र बड़ा है। एक ही कुटुम्ब की दो लड़कियाँ दो कुटुम्बों में व्याह दी जाती हैं। बड़ी लड़की एक साधारण कुटुम्ब में ब्याही जाने के कारण केवल अपने आसपास ही प्रसिद्ध रहती है लेकिन छोटी लड़की एक प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित कुल में ब्याही जाकर अत्यन्त प्रसिद्ध हो जाती है। उसकी प्रतिष्ठा और उसका आदर छोटी होने पर भी अधिक होता है। यही स्थिति सिन्धी और हिन्दी की है। छोटी बहिन होने पर भी हिन्दी अधिक प्रसिद्ध हो गई है।

मूल सिन्धी के ऊपर अनेक कठिनाइयाँ भी आ चुकी हैं जिनके कारण आधुनिक सिन्धी का रूप ही दूसरा हो गया है। भौगोलिक स्थिति के कारण सिन्ध और पश्चिमी पंजाब सदा से मुसलमानी आक्रमणों का शिकार होता रहा है। इसका प्रभाव वहाँ की भाषा पर भी पड़ा। मुसलमानों के संसर्ग से सिन्धी में अरबी और फ़ारसी के बहुत से शब्द आ गये हैं। सिन्धी की लिपि भी अरबी लिपि के प्रभाव से परिवर्तित हो गई है। किन्तु इतना सब होने पर भी यदि प्राचीन हिन्दी को देखा जाय तो उसकी भाषा और लिपि दोनों अन्य भारतीय आर्यभाषाओं के समान ही है। अरबी लिपि में लिखी जाने वाली सिन्धी भाषा भाषियों का कारबार और बहीखाता आज भी नागरी लिपि में ही लिखा जाता है। यही नहीं सारे संसार में भारतवर्ष के बाहर भी फैले हुये सिन्ध के व्यापारियों का अपना कार-बार और हिसाब-किताब नागरी में ही होता है।

यद्यपि आज की सिन्धी में फ़ारसी और अरबी के अनेक शब्द आ गये हैं, ऐसे शब्दों की संख्या अधिक है तथापि सम्पूर्ण सिन्धी के शब्द कोष का विचार और मनन करने पर यही पाया जाता है कि सिन्धी शब्दों में भी अधिकता उन्हीं शब्दों की है जो या तो संस्कृत के शब्द हैं या संस्कृत के शब्दों से व्युत्पन्न हैं। ऐसे शब्द सम्भवतः सत्तर प्रतिशत होंगे। इसके अतिरिक्त सिन्धी का व्याकरण पूर्णतः भारतीय है। सिन्धी फ़ारसी या अरबी व्याकरण से अनुशासित नहीं होती है। उसके व्याकरण के नियम भारतीय आर्य भाषाओं के पूर्णतः समान है। सिन्धी के क्रियापद, सर्वनाम, धातु रूपावली, शब्द रूपावली आदि भी पूर्णतः भारतीय हैं।

ऐसी स्थिति में सिन्धी भाषा भाषियों के लिये हिन्दी समझ लेना या बोल लिख लेना कोई बहुत कठिन कार्य न होगा। अतः मेरी समझ में उपर्युक्त बातों का ध्यान रखते हुये हिन्दी को ही राष्ट्रभाषा का पद देना उचित है।*

अपनी बात—

सम्मेलन पत्रिका—'सम्मेलन पत्रिका' का यह आश्विन का अङ्क पाठकों के पास पहुँच रहा है। पौष का अङ्क भी आधे पौष तक पहुँच जायेगा। इसी प्रकार प्रतिमास ठीक समय पर पत्रिका नियमित रूप से प्रकाशित करने का हम उद्योग कर रहे हैं। हमारी इच्छा है कि सम्मेलन ऐसी सर्वमान्य संस्था की मुख-पत्रिका और भी अधिक सुचारु तथा सुन्दर रूप में प्रकाशित हो। इसकी कलेवर वृद्धि हो और उपयोगी साहित्यिक निबंधों तथा हिन्दी संसार की सामयिक प्रगति पर भी इसमें समय समय पर प्रकाश डाला जाता रहे। किन्तु इस कार्य में हिन्दी प्रेमियों, विद्वानों तथा साहित्यिकों के पूर्ण सहयोग की हम विशेष आशा रखते हैं। यदि हिन्दी प्रेमी इसके एक-एक ग्राहक भी बना दें तो इसकी और भी आशातीत उन्नति हो सकती है।

पत्रिका का वार्षिक मूल्य केवल १) वार्षिक इतना कम रखा गया है कि इसके ग्राहक बनने में हिन्दी प्रेमी किसी विशेष कठिनाई का अनुभव नहीं कर

---

* काशी हिन्दी साहित्य सम्मेलन में पठित।

सकते। हिन्दी साहित्य सम्मेलन ऐसी सर्वमान्य संस्था के प्रेमियों की संख्या इतनी अधिक है, और इसीसे हमें आशा है कि इस कार्य में सहानुभूति प्राप्त होने में कोई कठिनाई नहीं प्रतीत होगी। साथ ही विद्वान लेखकों, आलोचकों, अन्वेषकों तथा हिन्दी लेखकों से हमारा अनुरोध है कि वे अपनी सुन्दर से सुन्दर कृतियाँ 'पत्रिका' के लिये समय समय पर भेजते रहें जिससे इसकी पाठ्य सामग्री भी उन्नत होगी और हिन्दी प्रेमी पाठकों को प्रतिमास महत्वपूर्ण साहित्यिक रचनाएँ भी पढ़ने तथा अध्ययन करने को मिलेंगी। इस कार्य से सम्मेलन की एक प्रकार से सहायता ही होगी। यदि हमारे अनुरोध स्वीकार हुए और कम से कम ५०० ग्राहक हमें स्थायी रूप से और प्राप्त हो गये तो हम 'पत्रिका' को और अधिक आकर्षक और सुन्दर रूप में प्रकाशित करने के लिये समर्थ होंगे। हमें आशा है कि हिन्दी प्रेमी इधर अवश्य ध्यान देने की कृपा करेंगे।

सबकी बोली—राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा से 'सबकी बोली' नाम का सुन्दर मासिक-पत्र पिछले नवम्बर महीने से प्रकाशित होना प्रारम्भ हुआ है। इसके सम्पादक आचार्य काका कालेलकर और श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल हैं। पत्र के प्रारम्भ में काका साहब ने 'कार्य की दिशा' सुंदर लेख में हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार और संरक्षण के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण और विचारणीय विचार प्रगट किये हैं। 'कहानी कला' पर भी काका साहब ने सूक्ष्मता तथा गम्भीरता से प्रकाश डाला है। इनके सिवा राष्ट्रभाषा बनाम अँग्रेज़ी, सबकी बोली का सब को अभय दान, दादा धर्माधिकारी का लिखा हुआ 'राष्ट्र संगठन की भाषा कौन तथा सी', हिन्दी शब्दों की लिंग-व्यवस्था आदि लेख भी बड़े महत्व के हैं। पत्रका नाम 'सबकी बोली' जितना प्रगतिशील और सामयिक है उतने ही इसमें प्रकाशित लेख भी सुरुचि पूर्ण, रोचक और ज्ञानवर्द्धक हैं। इसकी भाषा हिन्दी है किन्तु लिपि में अवश्य काका साहब के व्यक्तित्व की छाप है। हमें आशा है कि ऐसे सुन्दर पत्र के प्रकाशन से राष्ट्रभाषा के प्रचार में उपयोगी सहायता प्राप्त होगी। 'सबकी बोली' का वार्षिक मूल्य १।) और प्रति अंक =) है।

———

नियमावली

१—सम्मेलन-पत्रिका प्रति मास प्रकाशित होती है।

२—हिन्दी साहित्य सम्मेलन के आदर्शों की पूर्ति में सहायक होना पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है।

३—पत्रिका का वार्षिक मूल्य १) तथा एक अङ्क का =) है।

४—पत्रिका के संम्बन्ध में पत्र-व्यवहार साहित्य-मन्त्री, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के पते से करना चाहिए।

५—पत्रिका-संबन्धी पत्र-व्यवहार में जवाब के लिए टिकट आने चाहिए; अन्यथा आवश्यक-अनावश्यक का विचार कर पत्रोत्तर दिया जायगा।

सम्मेलन-पत्रिका के ग्राहकों से—

हिन्दी साहित्य सम्मेलन की मुख-पत्रिका 'सम्मेलन-पत्रिका' पिछले कई वर्षों से प्रकाशित होती आई है। समय समय पर उसमें सुन्दर और विचार-पूर्ण लेखों के साथ सम्मेलन की स्थायी समिति तथा अन्यान्य समितियों के कार्य-विवरण प्रकाशित होते रहे हैं। हिन्दी के प्रेमियों, विद्वानों तथा स्थायी समिति के सदस्यों से यह अविदित नहीं है। किंतु अब हम चाहते हैं कि 'सम्मेलन-पत्रिका' प्रति मास ठीक समय पर प्रकाशित हो। साथ ही सुन्दर और श्रेष्ठ साहित्यिक लेख प्रकाशित किये जाँय जिससे हिन्दी के प्रति अनुराग रखने वाले सुदूर प्रांतों के हिन्दी-प्रेमी और विद्यार्थी भी उससे लाभ उठा सकें। इसके सिवा 'साहित्य-रत्न' 'मध्यमा' तथा 'प्रथमा' परीक्षाओं में सम्मिलित होने वाले विद्यार्थियों को साहित्य-अध्ययन में समय समय पर सहायता प्राप्त होती रहे। इसलिये हम प्रत्येक हिन्दी प्रेमी तथा विद्यार्थी से अनुरोध करते हैं कि वह 'सम्मेलन-पत्रिका' के स्वयं ग्राहक बनें और अपने मित्रों को भी बनावें। यदि एक हज़ार भी ग्राहक हमको मिल गये तो 'पत्रिका' का आकार प्रकार भी बड़ा कर दिया जायगा और विद्वानों के श्रेष्ठ साहित्यिक लेखों से भी इसका कलेवर अलंकृत होता रहेगा। आशा है हिन्दी-प्रेमी इस निवेदन की ओर ध्यान देने की कृपा करेंगे। सम्मेलन प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी की संस्था है और इसीलिये हम उनसे हर प्रकार के सहयोग और सहायता की पूर्ण आशा रखते हैं। जिन ग्राहकों का वार्षिक चंदा समाप्त हो गया है वे कृपया १) मनीआर्डर से शीघ्र भेज दें।

साहित्य-मंत्री

रजिस्टर्ड नं० ए० ६२९

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन द्वारा

प्रकाशित कुछ पुस्तकें

(१) सुलभ-साहित्य-माला

१ भूषण ग्रन्थावली २)
२ हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास ॥)
३ भारत गीत ≡)
४ राष्ट्र भाषा ॥)
५ शिवा बावनी ≡)
६ सरल पिंगल ।)
७ भारतवर्ष का इतिहास भाग १ २॥)
८ ” ” ” ” २ २।)
९ ब्रजमाधुरी सार २॥)
१० पद्मावत पूर्वार्द्ध १।)
११ सत्य हरिश्चन्द्र ।–)
१२ हिन्दी-भाषा सार ।॥)
१३ सूरदास की विनय पत्रिका ≡)
१४ नवीन पद्य-संग्रह ।॥)
१५ कहानी-कुञ्ज ॥=)
१६ विहारी संग्रह ≡)
१७ कवितावली ।॥)
१८ सुदामा चरित्र ।)
१९ कबीर पदावली ।॥=)
२० हिन्दी गद्य-निर्माण १॥)
२१ हिन्दी साहित्य की रूप-रेखा ।)
२२ सती करुणकी ॥)
२३ हिन्दी पर फ़ारसी का प्रभाव ॥=)
२४ पार्वती मङ्गल ।)

(२) साहित्य रत्नमाला

१ अकबर की राज्यव्यवस्था १)

(३) वैज्ञानिक-पुस्तकमाला

१ सरल शरीर विज्ञान ॥), ।॥)
२ प्रारम्भिक रसायन १)
३ सृष्टि की कथा १)

(४) बाल-साहित्य-माला

१ बाल पञ्चरत्न ॥)
२ वीर सन्तान ।≡)
३ बिजली =)

(५) ओझा अभिनन्दन ग्रन्थ १६)

(६) विविध पुस्तकें

१ महात्मा गाँधी के निजी पत्र ।≡)
२ टालस्टाय के विचार ।–)
३ इतना तो जानो ।–)
४ सनयाट सेन ।॥)
५ संजीवनी ।–)
६ नीति दर्शन ।॥)
७ लाजपतराय की जीवनी ।॥)

मुद्रक—गिरिजा प्रसाद श्रीवास्तव, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग।
प्रकाशक—साहित्य-मंत्री, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

पौष, सम्वत् १९९६

सम्मेलन-पत्रिका

[भाग २७, संख्या ५]

संपादक
श्री ज्योतिप्रसाद मिश्र निर्मल
साहित्य-मंत्री

हिन्दी साहित्य सम्मेलन
प्रयाग

वार्षिक
१)

एक प्रति =)

विषय-सूची

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

सूचना

सर्वसाधारण को सूचना दी जाती है कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन के नियमों में पुनः संशोधन करने का विषय उपस्थित है। स्थायी समिति ने नीचे लिखे तीन सज्जनों की उपसमिति आए हुए संशोधनों पर विचार करने के लिए बनाई है।

१—श्री पुरुषोत्तमदास जी टंडन

२—श्री लक्ष्मीधर वाजपेयी

३—श्री बाबूराम सक्सेना (संयोजक)

हिन्दीहितैषी जनता से निवेदन है कि २९ फरवरी सन् ४० तक जो जो संशोधन आवश्यक समझें भेज दें। इस तारीख़ के बाद आए हुए संशोधनों पर विचार करना उपसमिति के लिए कठिन होगा। सम्मेलन की वर्तमान नियमावली मांगने पर कार्यालय से सहर्ष भेजी जायगी।

बाबूराम सक्सेना
प्रधान मंत्री

वर्धा

सम्मेलन-पत्रिका

भाग २७] पौष १९९६ [संख्या ५

नरहरि महापात्र और उनका एक घराना

[लेखक, श्रीयुत रामकृष्ण शर्मा]

हिन्दी में कुछ ऐसे कवि हो गये हैं, जिनके घरानों में आज तक कवि होते आये हैं। ऐसे तीन कवि-घराने बैसवारे में हैं। एक पखरौली के नरहरि महापात्र का, दूसरा डलमऊ के छेम बन्दीजन का और तीसरा दौलतपुर के कविराज सुखदेव मिश्र का। इन तीनों घरानों में बराबर कवि होते आये हैं और उनकी रचनाओं से हिन्दी-कविता का प्रचार हुआ है तथा उसके गौरव की वृद्धि हुई है। इनमें से हम यहाँ नरहरि महापात्र के घराने की एक शाखा के कवियों का नामोल्लेख करते हुए उनमें प्रत्येक की एक-एक रचना भी उदाहरण स्वरूप देंगे।

नरहरि महापात्र हिन्दी के इतिहास में असनी के निवासी लिखे जाते हैं। परन्तु यह कथन भ्रमपूर्ण है और इस भ्रम का कारण उनके नाम का एक छप्पय है जिसे अपने 'सरोज' में उद्धृत कर ठाकुर शिवसिंह सेंगर ने उन्हें असनी का निवासी लिखा है। इसमें तथ्य इतना ही है कि नरहरि जी के एक पुत्र असनी में जा रहे थे और उनके वंश के कवियों ने अपने समय में बड़ा नाम पैदा किया। फलतः उनके साथ नरहरि महापात्र भी असनी निवासी हो गये और कदाचित् उस आशय का उनके नाम पर एक छप्पय भी गढ़ लिया गया। यह भी सम्भव है कि उनकी वृद्धावस्था में उनके पुत्र हरिनाथ असनी में जा रहे हों और इनके प्रेमवश वे भी अपने जीवन के अन्त में वहाँ जा रहे हों। चाहे जो हो, पर नरहरि जी का जन्म बैसवाड़े की भूमि में ही हुआ था और वे अपने जन्म-ग्राम पखरौली ही में अधिक काल तक निवास करते रहे।

नरहरि का जन्म संवत् १५६५ में हुआ था। वे रायबरेली-ज़िले के प्रसिद्ध डलमऊ कस्बे से दो मील पूर्व पखरौली नामक ग्राम में पैदा हुए थे। वहाँ उन्होंने सिंहवाहनी देवी की एक मन्दिर में स्थापना की थी। उनके वंशज विवाह आदि के अवसर पर उक्त देवी का पूजन करने को पखरौली आते रहते हैं। यह कहावत वहाँ आज भी प्रचलित है —

बरहद नदी पखरपुर गाँव।
तहँ के कवि का नरहरि नाँव॥

मुगल सम्राट् अकबर के दरबार में हिन्दी के जिन कुछ कवियों को आश्रय प्राप्त था उनमें नरहरि कवि प्रधान थे। बादशाह ने उन्हें 'महापात्र' की पदवी प्रदान की थी। उनके वंशज उस पदवी का प्रयोग आज तक अपने नाम के साथ करते जा रहे हैं। वास्तव में बादशाह के दरबार में उनका ख़ासा मान था। नरहरि को स्वयं भी अपने शाही आदर-सत्कार का गुमान रहता था, जिसे उन्होंने निम्नपद्य में व्यक्त किया है।

कवि पातशाही ठाट राखैं पातशाही,
दान खात पातशाही सूमसेरन के चापे हैं।
मानै पातशाही हैं इनामै पातशाही,
फरमानै. पातशाही देखि कर हिय काँपे हैं॥
'नरहरि' कहैं राजा राव सब जानै,
पातशाही बात कहत न लाँपे हैं।
दै दै दान जब्बर मिटाये दुख गब्बर सो,
बब्बर हुमायूँ औ अकब्बर के थापे हैं॥

इस पद्य से यह भी प्रकट होता है कि नरहरि बाबर, हुमायूँ के भी दरबार में रहे हैं। यही क्यों? वे शेरशाह सूर के पुत्र सलीमशाह के दरबार में भी शायद रहे थे। उनकी मृत्यु पर उन्होंने जो पद्य लिखा है उससे यह भी ध्वनित होता है कि उनकी सलीम शाह के प्रति गहरी राजभक्ति भी थी। उक्त पद्य यह है —

सेरनशाह सलेम पुहुमि यक छत्र राज्य किय।
तिन महिका करि कृपा मान धन छिति खिताब दिय।

तिनके मरत नहिं मुयउ नहिं तीरथ व्रत कीन्हों।
तिनके सुतन पर बिपति जाय तन तहाँ न दीन्हों॥
यह लाज गहों जगदीस डर 'नरहरि' चलत न चित्त सुख।
फिर फिर बुलावो शाह मोंहि सो कौन दिखावों आनि मुख॥

चाहे जो हो इन पद्यों से प्रकट होता है कि नरहरि ने बाबर, हुमायूँ, सलीमशाह और अकबर के दरबारों में सम्मान पाया था और वे सन् १५२५ से लेकर १५६० के काल के एक प्रसिद्ध राज्यमान्य कवि थे।

नरहरि को अपने आश्रयदाताओं से कतिपय गाँव पुरस्कार में मिले थे। इनका उल्लेख उनके वंश के दयाल कवि ने अपने एक कवित्त में किया है जो यह है-—

कोस भर गंगा ते प्रगट पखरौली १ गांव।
दुजे मिर्जापूर २ कल्यानपुर ३ बेनी है॥
और नरहरिपुर ४ गाँव धर्मापुर ५ है।
तारापुर ६ बन्न ७ जमुनीपुर ८ कुनेती है॥
भनत 'दयाल' एकडला ९ गौरी १० बड़ागाँव।
चाँदपुर लूक ११ सुरजूपुर १२ बरेती है।
आधी नानकार के इतेक नाम गाँवन के।
जाहिर जहान जहँगीरवा १४ समेती है॥

नरहरि की कविता दुर्लभ है। उनकी स्फुट रचनायें ही मिलती हैं। एक कवित्त यह है—

जा दिन ते प्यारे न्यारे विहरत बन बन,
ता दिन ते काम की बिरह उर जागी है।
घूम फिरी सातों दीप नवों खण्ड बार बार,
कल न परत निश दिन अनुरागी है॥
कहैं कवि 'नरहरि' अजहुँ न मिले हरि,
पूरब जन्महूँ की प्रीति प्रेम पागी है।
श्याम ते बिछुरि एक गोपी मरी पच्छी भई,
पीव कहाँ पीव कहाँ यही रट लागी है॥

नरहरि जी फ़ारसी-मिश्रित रचनायें भी करते थे। एक पद्य यह है—

नेकबख्त दिलपाक सखी जवाँ मर्द शेर नर,
अव्वल अली खुदाइ दिया बिशयार मुल्क जर।
खालिक वहु बेश हुकुम आलिया जो आलिब,
दौलत बख्त बुलन्द जंग दुश्मन पर गालिब।
अब साफ तुरी गोयम सकल कवि नरहरि गुफ तम चुनी,
अकबर न बरोबर बादशाह न ज़र न दीदम दर दुनी।

नरहरि की रचित पुस्तकें 'नरहरि-बिलास', 'रुक्मिणी-मङ्गल,' 'छप्पय-नीति,' 'स्वर्ण-लोह-झगरा' इत्यादि पाई जाती हैं।

नरहरि जी के चार पुत्र थे—आदिनाथ, हरिनाथ, कल्याणनाथ और गोपालनाथ।

आदिनाथ नरहरि के जेठे पुत्र थे। इनका जन्म-संवत् १६३५ पाया जाता है। डलमऊ के पूर्व गङ्गा-तट पर बेती ग्राम इन्होंने बसाया और पखरौली से जाकर वहीं बस गये। इस सम्बन्ध में किसी ने कहा है—

अंसन सहित अवतारी भुज भारी भाल,
धारी धाम भुज धुज साने सील सत्ता को।
पुन्य के पहार हैं प्रसिद्ध प्रति पालन मैं,
जिनके हमेस दिल्लीपति नेह नत्ता को।
जेठे आदिनाथ ते बसायो निज बेती ग्राम,
तिनके प्रताप आगे दूजो ना लखत्ता को।
नामी नरहरि के सपूत पूत हरिनाथ,
जाहिर जहान जौन जाचक चकत्ता को॥

आदिनाथ जी का एक कवित्त प्राप्त है जो यह है—

करि सेत साज बृजराज जू के मिलिबे को,
आधी राति चली प्यारी उतरी अवास ते।
गगन सहित छप्योराहौ 'कवि आदिनाथ',
भूषन समेत चारु आनन अभास ते।
देखि देखि पाहरू चकित भये आपुसि मैं,
अद्भुत जानि सब ऐसी कहैं आस ते।

ढापिकै मयूपन ते कंचन लता पै चढ्यो,
मेरे जान चल्यो चंद उतरि अकास ते ॥

नरहरि जी के द्वितीय पुत्र हरिनाथ जी का जन्म-संवत् १६४४ है। ये अपने समय के नामी कवि थे। एक एक दोहे पर इन्हें लाख लाख रुपये का पुरस्कार मिला। ये ख़ुद भी बड़े दाता थे। जो मिलता था उसे दोनों हाथों लुटाते रहते थे।

हरिनाथ भी पखरौली छोड़ कर असनी में जा बसे थे। वहाँ उन्होंने कनौजिया ब्राह्मणों को बाहर से लाकर बसाया और उनकी जीविका की व्यवस्था की। रीवा में हरिनाथ का बड़ा मान था। वहाँ का चिड़ियाखाना देखकर उन्होंने महाराज से निवेदन किया कि मेरे यहाँ भी एक चिड़ियाखाना है, जिसका वर्णन मैंने एक पद्य में किया है, जो इस प्रकार है--

बाज सम बाजपेयी पाँड़े पच्छिराज सम,
हंस से त्रिवेदी और सोहैं बड़े गाथ के।
कुही सम सुकुल मयूर से तिवारी भारी,
जुही सम मिसिर नवैया नहीं माथ के।
नीलकंठ दीच्छित अवस्थी हैं चकोर चारु,
चक्रवाक दुबे गुरुजन शुभ साथ के।
येते द्विज जाने रङ्ग रङ्ग के बखाने,
देश देशन ते आने चिड़ीखाने हरिनाथ के ॥

हरिनाथ जी गढ़मण्डला की रानी दुर्गावती के दरबार में भी गये थे। इस सम्बन्ध में उनका यह दोहा प्रसिद्ध है—

कोटि बघेले दीन, सवा कोटि दुर्गावती।
पूरन कै यश लीन, पूरो दै ड्योढ़ो कियो ॥

नरहरि जी के एक छप्पय में भी रानी दुर्गावती का उल्लेख है। वह छप्पय यह है—

कनक तुला मन मुदित दान दिन कहि जो ग्रंथन भनि,
सत सहस्र गो लच्छ देत विधि सहित सुद्ध मनि।
अस्वरथ गजरथ बसन ग्राम गनि कहइ कौन कवि,
बहुरि प्रगटि कलि करन सत्य हरिचंद प्रात रवि।

तेहि हथ्थ मुकुति अरु भुगति द्वौ कहि नरहरि तहँ संचरिय,
दुर्गावति मात समत्थ कौ कहु केहि विधि पटतर करिय ॥

हरिनाथ के वंशज असनी में रहकर खूब फलेफूले। आज भी उनके घराने के लाल जी और ब्रजेश जी नामी कवि हैं।

इधर वेती में आदिनाथ का घराना भी उन्नति की ओर अग्रसर होता गया और वहाँ भी नामी नामी कवि हुए।

आदिनाथ के त्रिविक्रय और मनीराम दो पुत्र हुए।

त्रिविक्रम का जन्म-संवत् १६५५ के लगभग पाया जाता है। ये जहाँगीर व शाहजहाँ के दरबार में थे। इनका एक पद्य यह है—

करकरी मुहरैं रुपैया जरजरी जामैं,
बकसत हाथ आये हाथियो कहाँ तुरी।
नाती नरहरि को प्रसिद्ध हरिहर जामे,
चकये चक्कत्ता जे सराहैं चारु चातुरी ॥
कुल को सम्हार द्विज भरन भरन हार,
दै दै मेटी लोभन लोभ लोल आतुरी।
प्यारो शाहजहाँ जी को सुजस वहीं है तहाँ,
सोहत 'त्रिविक्रम' को महा महा मातुरी ॥

त्रिविक्रम के छोटे भाई मनीराम नामी कवि थे। इनका जन्म-संवत् १६६१ के लगभग पाया जाता है। जहाँगीर व शाहजहाँ के दरबार में रहते थे। इनकी कविता मिलती है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

'मनीराम' महादेव समन बचाइ मुनि,
मुनि जाने भेव ताको वेदनि को गाये तें।
गाल गलबल देत सदा दलबल पावे,
तापे चारयौ फल भयो नेकु नीर नाये तें ॥
लखि के दतार डरे देवनि भँडार वसु
बरसत भारी कहा करो मन आये तें।
जन हितकारी माया जात न सम्हारी देखो,
तारी उघरत करतारी के बजाये तें ॥

सुनत अवाई छूटी सीमे सब सिंघल की,
सेत बंधी सहमि कै सूरति बिसारी है।
प्रबल प्रतापी साहिजहाँ पातसाह आज,
जलनिधि लौं जाकी जस की उजियारी है॥
जापर सुहायो सोहै विधि को बनाइ छत्र,
उपमा कहत कवि शोभा भइ भारी है।
मेरु मानो दंड आसमान लौं है छत्र सम,
सूरज कलस छितिधर छत्रधारी है॥

त्रिविक्रम के पुत्र जैत सिंह हुए। इनका जन्म-संवत् १६७८ के लगभग माना गया है। इनकी रचनाओं से प्रतीत होता है कि ये कई दरबारों में जाया करते थे। इनकी रचना के कुछ नमूने ये हैं—

रुद्र कै सी मौजें रुद्र करी नरिहरि कोजे,
ताको ए समुद्र जस सुनि सुनि जीजिये।
अँगद को एसो पाउ, रोपि राय मंगद जू,
थाप्यो हरिनाथ लाखैं दईं रीझि रीझिये॥
फिरि राय कीरति बदन महराज,
सनमानि धन दयो मनिराम को पुनीतिये।
राजा महासिंह 'जैत' जाँचतु है तौन तातें,
जाहिर जहान मेरो नाँउ अब कीजिये॥

पाऊँ ऐसो सुक्ख देस अस करौ राव रुत्त,
जैतसिंह कवि रावरो सुनि प्रताप इह सुत्त।
सुनि प्रताप इह सुत्त धुत्ति के उदर चलायो,
तें माँगत अब दाम काम कीजे मन भायो॥
नरहरि के हों बंश रहे कोटिन जो पाऊँ,
सो तेरे दरबार कहाँ ऐसो जस गाऊँ॥

गहत हत्थ करिवर समत्थ जब चढ़त रत्थ पर,
मनहु पत्थ लिय धनुक तत्थ मेटत कुपत्थ डर।
अरि निरत्थ होइ तजत सत्थ घर निगत्थ तब,
अति अनत्थ होइ गहत मत्थ सर नत्थ चरन तब॥

उद्दंड तेज अति चंड सम भूमंडन करत,
नवखण्ड डण्डि यह महराज तव छत्रसाहि ऐसहि धरत ॥

जैत सिंह के पुत्र देवनाथ हुए। बेती में इनका 'देवनाथ का कटरा' आज भी प्रसिद्ध है। इनका जन्म-संवत् १७२० के लगभग पाया जाता है। शृङ्गार की रचना में बड़े निपुण थे। इनका एक पद्य यह है--

कनक बरन बाल नगन छपित भाल,
मोतिन की माल हिये सोहै भलीभाँति है।
चंदन चढ़ाई चारु चन्द्रमुखी मोहिनी सी,
प्रात ही अन्हाइ पगु धरे मुसक्याति है।
चूनरी विचित्र स्याम सजि 'देवनाथ कवि',
ढाँपि नख सिख ते निपट सकुचाति है।
चन्द्रमा लपेटि कै समेटि कै नखत मानौ,
दिन को प्रनाम किये राति चली जाति है ॥

देवनाथ के दो पुत्र हुए—उदयनाथ और गयादत्त। उदयनाथ का जन्म-संवत् १७७२ के लगभग पाया जाता है। इनका एक पद्य इस प्रकार है—

फूले मधुपुर पुंज कुंजारत कंजनमें,
फूलन गुलाब कली शोभा सरसानी है।
फूली है बयार लौस बहत सुगन्ध लै कै,
फूले हैं पलास बात जात न बखानी है।
'उदैनाथ' फूल्यो फूल काम को चढ़ाइ बान,
फूली लता अति अभिराम फूलवानी है।
आवत बसंत फूल सबको सोहाने एक,
जिनके विदेश कंत तेई बौरानी है ॥

उदयनाथ के भाई गयादत्त का जन्म संवत् १७५३ के लगभग पाया जाता है। इन्हें लखनऊ से ३००) वार्षिक मिलता था। लखनऊ के शाही फ़र्मानों में ये—महाकवि गयादत्त लिखे जाते थे। इन्होंने अपने सम्बन्ध में कहा है --

सूबे इलाहाबाद सरकार मानिकपूर,
डलमऊ पच्छिम तरफ ताके पास है।

सुरसरि के तीर सुरपुर की समान सब,
जानत जहान जहाँ जम को न त्रास है ॥
पुत्र नरहरि के बसायो शुभ घरी साधि,
रिद्ध सिद्ध विद्या घर घर में निवास है ।
तीन ही घराने पातशाहन के जाने तामे,
'गयादत्त' नामे करै बेती में विलास है ॥
देश सिरमौरन को बंस है बैसवारा,
तामें निज गाँव जे करैया नहिं खेती के ।
कोविद कवीश्वर महीश्वर हैं बंदीजन,
ईश्वर सवाँरे जे विधान आन फेती के ॥
ऊकुर बड़ाई प्रभुताई पातशाहन मैं,
जानै जम्बूदीप में जहान छिति जेती के ।
वंश नरहरि के प्रसिद्ध जग महापात्र,
'गयादत्त' नाम है कल्याणपुर बेती के ॥
भादौं बदी अष्टमी को साँवरो जनम लीन्हें,
मिटो अंधकार सब ही के दधिकंद भो ।
गुनी तान गावैं कोऊ पढ़िकै रिझावैं सुर,
फूल बरसावैं आठो दिसन अनंद भो ॥
'गयादत्त' कहैं पुन्य कीन्हीं विधि आछी घर,
बाछिहू न राखी दान अति ही बिलंद भो ।
कामरी बेसाहैं कौन दामरी रही न नंद,
बामरी कहा कि डर कहा दीनबंध भो ॥

याद को गयादत्त बेती छोड़ कर उससे कुछ दूर लोभ नदी के किनारे किशुनदासपुर ग्राम में जा बसे। इनके वंशधर आज भी इस ग्राम में निवास करते हैं।

गयादत्त के विन्दादत्त और शिवकंठ नाम के दो पुत्र हुए। विन्दादत्त का जन्म संवत् १७७५ कहा जाता है। ये किशुनदासपुर के निवासी थे। इनका एक पद्य यह है—

उतै उयो तारन समेत तारापति,
इतै मोतिन जटित लट आनन पै अरी है।
उतै अंक सोहत कलंक दिन पूनो के,
इतै आड़ अंजन की वैसी छवि करी है॥
'बिन्दादत्त' कहैं उतै लखत चकोर इतै,
चहुँ ओर सखिन की डीठि शुभ भरी है।
आज नंदलाल पास प्यारी के बिलोको चलि,
चंद्रमुखी चंद्रमा सो कैसी होड़ परी है॥

बिन्दादत्त के पुत्र दुर्गाप्रसाद थे। किशुनदासपुर के निवासी थे। ये कविता में 'परसाद' नाम रखते थे। ये गौरा के तालुकदार श्री विक्रमसिंह के दरबार में रहते थे। इनका जन्म-संवत् १८०० के लगभग है। इनकी रचना का एक उदाहरण यह है—

पृथ्वी मण्डल दिशन में शोभा लहत बनाइ।
इन्द्रजीत नरनाह को जस बरनत कबिराइ॥
खावाँ के झरावत नगर सब सूखि जाइँ,
लुकि जाइँ शत्रु देखि ऐसई उमाउ सो।
गोला के चलाये ते उजीरि मन लटि जाय,
हटि जायँ आंबिल अनेक कै उपाउ सो।
कहै 'परसाद' लोग लोहे ते अघाइ गये,
लीन्हों बैसवारा दैके मोछन में ताउसो।
बिक्रम नरेश सब भाइन की बात राख्यो,
जंग बीच अड़ि रह्यो अंगद के पाउँ सो॥

किशुनदासपुर घराने में एक प्रसिद्ध कवि बजरङ्गी हुए थे। इनका जन्म-संवत् लगभग १८२० है। दरभंगा, बेतिया वगैरह में रहते थे। बेतिया में इनको एक हाथी मिला था। इनका एक पद्य लीजिए--

बैठी बाल बिमल बिलोकत बिसाल नैनी,
सुखमा समूह सनी उपमा अकूत री।
अति सरसीली दरसीली दुति दामिनि सी,
इन्द्र की परी सी परी मानों छिति ऊतरी।

कहै 'बजरङ्ग' रति रंभा सी सरोजमुखी,
जाहि लखि मोहैं सनकादि शेस पूतरी।
जनु देव पूतरी बिलोकि नन्द पूतरी,
गई है फिरि पूतरी फिरङ्ग कैसी पूतरी॥

शिवकण्ठ गयादत्त के द्वितीय पुत्र थे। ये किशुनदासपुर के निवासी थे। ये संवत् १७८५ के लगभग पैदा हुए थे और गौरा के तालुकदार के आश्रय में रहते थे। इनके दो पद्य इस प्रकार हैं--

जैसइ मिलाप भो जनक दसरथ जू सों,
तैसई मिलाप लालसिंह द्वार ह्वै रह्यो।
इहाँ मनिन सो जड़ित जवाहिरन जगमग्यो,
उहाँ कञ्चन के कलशन छबि छै रह्यो।
कहे 'शिवकण्ठ' इहाँ हरखत सिर मौर,
बरखत कलहंस दान पूर ह्वै रह्यो।
सूरज उद्दोत इहाँ प्रफुलित प्रकाश उहाँ,
चन्द को उदोत दोऊ पस्पर वै रह्यो।

शिवकण्ठ के पुत्र गंगादीन हुए। ये किशुनदासपुर में रहते थे। इनका जन्म-संवत् लगभग १८९५ है। इनका एक पद्य यह है—

ध्यान लाग एरी हमैं कछू तो सोहात नहीं,
काह कहौं कारे घन मन्त्र करि अड़िहौं।
कोयल पपीहा मोर सोर जो मचावत हैं,
तिनकी उखाइ खाल काढ़ि कुच मढ़िहौं॥
'गंगादीन' देखो हमैं नाहक खिझावत हौ,
महा अफसोस आहि कोपि खड्ग कढ़िहौं।
प्रान को अधार बिना बिरह पीर भारी है,
सुनु रे असाढ़ तोर हाड़-हाड़ गढ़िहौं॥

गंगादीन के पुत्र महावीर हुए। इस समय ये लगभग पचासी वर्ष के होंगे। इनका जन्म-संवत १९१० है।

ये गौरा के तालुक़ेदार ठाकुर रामप्रताप सिंह के यहाँ रहते थे। दुर्गापा ठ

किया करते थे। अब वृद्ध हो जाने से घर ही पर रहते हैं। इनका एक पद्य यह है—

महो मेरु जौ लौं रहै मेरु में महेश जौ लौं,
नाक में सुरेस राजि जौ लौं रहिबो करै।
त्यौं सुत गणेश जौ लौं जीयै मारतंड जौ लौं,
हरि को गोविंद नाम लोग कहिबो करै।
कहै 'महावीर' गहे पुहमी को शेष जौ लौं,
धन को कुबेर जौ लौं रच्छा करिबो करै।
सातउ समुद्र जौ लौं शोभित अचल ह्वै के,
तौ लौं श्री रामप्रतापसिंह राज्य करिबो करै॥

यहाँ तक तो आदि नाथ के ज्येष्ठ पुत्र के वंश का वर्णन हो चुका। आदिनाथ जी के वंश के अन्य कवियों तथा उनके वंशजों का क्रम-पूर्वक विवरण प्राप्त नहीं है। परन्तु उनमें जिन कुछ कवियों का विवरण मिला हैं वह इस प्रकार है

बेती के घराने में खुशाल नाम के एक कवि थे। इनका जन्म-संवत् १८५६ के लगभग है। इनकी कविता बहुत कम मिलती है। इनको एक ग्राम पन्ना-नरेश के यहाँ से मिला था, जो अब तक इन्हीं के वंशवालों के अधिकार में है। इनका एक पद्य यह है—

अंत ते न आयो यही गाँवरे को जायो,
माइ बापुरी जियायो प्याइ दूध बारेबारे को।
सोइ 'खुशियाल' पहिचानि कानि छाड़ि यहै,
लोचन नचावत नचैया द्वारे द्वारे को।
माया की सौं सोच कछू मटुकी उतारे को न,
गोरस के डारे को न चीर चीर डारे को।
यहै दुख भारी गहो डगर हमारी माँझ,
नगर हमारे ग्वाल बगर हमारे को॥

खुशाल के दो पुत्र हुए। एक थे प्रसिद्ध भौन कवि और दूसरे कामता प्रसाद थे। भौन का जन्म-संवत् १८८१ पाया जाता है। ये गौर के तालुकदार के दरबार में रहा करते थे। भौन की रचना के ये नमूने हैं—

दोहा

भरे भूप सब जगत मैं जात न काहू पास।
'भौन' भवन छोड़ै नहीं गौरापति की आस॥

थोरे मेवजीन ते बिथोरे सीस बैरिन के,
छोरे ना कमर करामाति उरधारे की।
पापरोज प्रलय सो मचायो मारि गोलिन सो,
आफति परी है आनि आमिल बिचारे की।
'भौन' कवि कहै नेकु भटक न मानी ज्वान,
कढ़िगो कृपान लै दवाये दल भारे की।
दोऊ दीन साखी हीन कैसहू न भाषी बीर,
बिक्रम नरेश नाक राखी बैसवारे की।

तोपन को घोर सोर गोलन गरद उठी,
मारु मारु होत महा गोलिन झमाके मैं।
लोथैं पटी पुहुमी सो चोथैं चहुँ ओर चील्हैं,
गील्हैं लगी जोगनी दवाये दल हाँके सैं॥
'भौन' कवि कहै लाल साह को सुवन कीन्हीं,
राखी सूरवीरता सवाई चढ़ी साके मैं।
भारे बैसवारे मैं निहारे बीर बिक्रम से,
खेदि खेदि मारे हैं तिलंगे एक नाके मैं॥

भौन जी ने शृंगार-रत्नाकर-ग्रन्थ बनाया है।

भौन के दयाल और रामनाथ नाम के दो पुत्र हुए। दयाल का जन्म-संवत् १९१० के लगभग पाया जाता है। ये शंकरपुर के राना वेनीमाधो बक्स के दरबार के कवि थे। अन्त-समय में गौरा-दरबार में रहते थे। इन्होंने महिम्न का अनुवाद किया है।

काँधि रजपूती मजबूती पद शंकर की,
शोधि शुभ घरी लखनऊ ताकि लीन्हों है।
वाहन की वीरता निवाहन की शाका सुनि,
बादशाही बेगम खिलत दै कै चीन्हो है।

भनत 'दयाल' लोह लक्करै टिकैतन की,
टक्करैं को आड़ै जंगी गोरे गर्द कीन्हों है।
राना श्री बहादुर टिकैत बेनीमाधो बक्स,
हिन्द को सतून तुम्हैं रामकर दीन्हों है।
ढट्टर से उलटिगे कलट्टर औ जज्ज जेर,
लटि गये लाट फटे फरासीस फक्करी।
ओले से बिलाने गोले गले गिरि गर्द भये,
टरती टसूनहै टिकैत टेक टक्करी।
भनत 'दयाल' शाह वंत शाह से करन भय,
करन भट्ट जंग जुरे जोंह जक्करी।
राना श्री बहादुर टिकैत बेनीमाधो बक्स,
तोसों पार पावैना फिरंगी जंगी मक्करी।
कम्मर मैं बाँधी कोपि काढ़ी म्यान डंभर ते,
अंबर तुरन्त ही पठावत अराति है।
दुरगाप्रसाद विजै काज की समाज साज,
वैरि गजरीन सीस गाज सीस माति है।
भनत 'दयाल' ओप लीबेको अरिनदसि,
चोप सी चलाइ टोप काटि धँसि जाति है।
फिरै बीच जंग मैं मगरबी तिहारो तेग,
गरबी गनीमन की चरबी चबाति है॥

रामनाथ भौन के दूसरे पुत्र थे और इनका जन्म-संवत् १९०० के लगभग पाया जाता है। ये बहुधा बैसवाड़ा में ही खजूरगाँव के राना विश्वनाथ सिंह के यहाँ रहते थे। इनका एक पद्य यह है--

जोधपुर जैपुर भरतपुर उदैपुर उज्जैन,
कोटा बूँदी औ कुमाऊँ नैपाल है।
भिनगा ए कौना नानपारा बुटवलि वास्यो,
बासी औ सतासी कासी बेतिया निशान है।
कहै 'रामनाथ' बर्दवान औ टिकारीवालो,
नागपुर पन्ना दतिया को राउरान है॥

एते रजवारे में गनाये मोती माल सम,
सब में सुमेर विश्वनाथ श्री सुजान है ॥

खुशाल के दूसरे पुत्र कामता प्रसाद का जन्म १९२० के लगभग हुआ था। ये बेती के निवासी थे। वैद्यक में बहुत ही निपुण थे। वैद्य चंद्रिका ग्रन्थ बनाया है। सदा ईश्वर भजन में मग्न रहते थे। अपने गुरू की प्रशंसा इस प्रकार की है—

बिपति बिभाकर निशाकर को बास जौ लौं,
जौ लौं रतनाकर में बारि भरिबो करै।
जौ लौं अरधंग शिव संग में शिवा को बास,
तौ लौं भूमि भार शसि शेष धरिबो करै ॥
कामताप्रसाद जौ लौं स्याम रामचन्द्र जू की,
कथा कहि साधु औ असाधु तरिबो करै।
तौ लौं दीप दीप देश देश महि मंडल में,
महाराज प्रागदास राज करिबो करै ॥
फैलि रही सेत सेत दसहू दिशान बीच,
तम पुंज नासै कैधौं चाँदनी सुहाई है।
कैधौं बकपाँति सी बिराजत अकास मध्य,
कैधौं मानहंशी सुर गंगा अवगाई है ॥
'कामताप्रसाद' कैधौं हीरन की माल राजै,
जगमगै जोति जगमग दरसाई है।
महाराज प्रागदास कीरति तिहारी सुनी,
रावरे समीप मोहिं बाँह गहि लाई है ॥

कामताप्रसाद के पुत्र ठाकुर कवि हुए। इनका जन्म-संवत् १९०० के लगभग हुआ था। इनका एक पद्य यह है—

दासी सो सनेह औ गुलामन सो प्रीति करि,
ओछे को उधार सो बेसार लै जो खावगे।
साबन के छाये घर 'ठाकुर' कहत तैसे,
मंगन सो प्रीति करि अंत पछितावगे ॥

सपने की संपति विरोध माई बाप कैसो,
झाँझरी बनाइ नाव कैसे पार जावगे।
पाही के जोतैया औ बसैया ससुरारि वारे,
एती एती बातन निदान दगा खावगे॥

बोलन लागे सखी दिग मोर अनंग कमान चढ़ाइ कै धाये।
कोकिल कुहुकन लागे घने मन यों नहिं धीरज जात बँधाये॥
कहै 'ठाकुर' कौन सो का कहिये अब वह बिसवासी ने सोंधि पठाये।
हाय हमारी भई या दशा पर आये वसन्त पै कंत न आये॥

लाल कवि भी बेंती के घराने के थे। इनका जन्म-संवत् लगभग १८३५ के पाया जाता है। इनकी रचना के कुछ स्फुटिक छंद मिलते हैं। ये गौरा-दरबार में रहते थे और बाहर भी जाते थे।

जस ठोकि भुजदंड गयो किले है प्रचंड,
पिले एकते सरस एक वीर बिरुझान।
जहाँ देखत तिलंगे भगे छोड़ि सब संगे,
भये वेगि चित भंगे जिय सीत सो ससान॥
जहाँ कढ़त जोयान कढ़ी तेग वे प्रमान चढ़ी,
शत्रु के निदान सटे चौधरी देवान।
तहाँ साहन को शाह लाल साह नरनाह,
सो उदंड रिपु झुंडन पै झारी किरवान॥

डलमऊ बरेली बछरावा मौरावा पुरा,
सिसिडी निघोवा आसू श्रवन सिहारे मैं।
'लाल' कहै सातनपुर पाटन बैहारि गुंज,
देवरष कंजर बिराजत जवारे मैं॥
पनहन ससान मगरायर घाटमपुर,
कुंभी डौंड़ियाखेर हड़हा किनारे मैं।
बसत बिशाल सालिबाहन के बंसवारे,
बसैं बैस बाइस मोहाल बैसवारे मैं॥

नरहरि के तीसरे पुत्र कल्याणनाथ ने अपने नाम पर बेंती के पास ही कल्याणपुर नाम का ग्राम बसाया था। पास-पास होने से ये दोनों गाँव

कल्याणपुर कहलाते हैं। यहाँ कल्याणनाथ द्वारा स्थापित शीतला जी का एक मन्दिर है। इनके दो पद्य इस प्रकार हैं--

सोचते जात सबै दिन राति बिसात न एक कहा कहिये।
व्याकुल रैन परै नहिं चैन सदा दिन रैन मिला चहिये॥
उत लालन को जियरा ललचै इत लोक के लाज महा डरिये।
'कल्यान' पुकारि कहै जिय मानत नाहिं कहा करिये॥

गजर धरावैं वाही दुज्जर अभानै ऐसी,
जासो जरि भाजि गयो मुगल सिराजी है।
कूटि नारवे ताके सब कटक कटाव जिमि,
जाके गुनगाइवे को चाहिये गिराजी है॥
भूत प्रेत गिद्ध सबै खाइ कै अघाइ देत,
जोगिनी असीसैं मारु मेरु लौं चिराजी है।
मुण्डन के पागे है सिराने गज सुण्डन के,
रुंडन के मुण्डन पै कालिका बिराजी है॥

प्रसिद्ध भड़ौआकार बेनी कल्याण कवि के वंश के थे। इनका जन्म संवत् १८४४ पाया जाता है। ये टिकैतराय के यहाँ रहते थे।

कंचुकी कसीरी पीछे आवति सखीरी,
रोम रोम में खुशी री बात सीरी सरसाति है।
रहन मिसीरी तैसी रची मुखवीरी,
साज सोहत अमीरी दामिनी सी दरसाति है॥
अतर उसीरी अंगराग काशमीरी,
'बेनी' सुबरन बाल लाल नेकु न लजाति है।
मोहति महीरी रूप राशि उमहीरी,
मानो मैनका तगीरी की तयारी किये जाति है॥

बेनी के भड़ौवा बहुत प्रसिद्ध थे। टिकैतराय के गुरू ललकदास पर यह भड़ौआ बनाया था।

लुकि लुकि लुकत लुगाइन की लीला लखि,
लोल औ लराका लोभी नालति को इलयास।

लोक लीक लाज लवलेस नाल बनलन,
लाल लाल लांकरी पै लाग्यौ पै लख्यो बिलास ॥
लवनि की लाली ललकायो लोक लाक लखि,
लंक लचकायो लरिकाई पै लगत लास ।
लाँय लाँय करै लकलावत न लोगन मैं,
लंपट लबार लखनऊ मैं ललकदास ॥
कंठी लिये कंठराम राखत न कंठ लख्यो,
लाघन में संठ उपकंठ रहै बसो बास ।
छैल छाप धारन मैं लगत केवारन मैं,
छपत छिनारन मैं लोगन के आसपास ॥
'बेनी कवि' कहैं साधुताई की न जानै बात,
पाप भरे गात दरसावै दंभ मास मास ।
ललना ललक मुख चंदन झलक वृथा,
भयो रद खलक लखनऊ में ललकदास ॥

बैसवारे के नरहरिवंशी कवियों का जो वृत्तान्त प्राप्त हो सका वह यहां दिया गया है। नरहरि के असनी के घराने के कवियों का ऐसा ही परिचय दिया जा सकता है। आशा है, कोई महानुभाव इस ओर ध्यान देने का कष्ट करेंगे।

हिन्दी-संसार

[लेखक, आयुर्वेदपञ्चानन श्री जगन्नाथप्रसाद शुक्ल, संग्रह मन्त्री]

मद्रास में हिन्दी जाननेवाले—अभी दक्षिण भारत हिन्दी प्रचारक सम्मेलन का दशवाँ अधिवेशन श्रीयुत महादेव देसाई के सभापतित्व में हुआ था। देसाई जी ने कहा कि हिन्दी प्रचार के द्वारा आज दक्षिण भारत से उत्तर भारत का अविच्छिन्न सम्बन्ध स्थापित हो गया है। इसे भी महात्मा गान्धी की विलक्षण सफलताओं में से एक समझना चाहिये। हिन्दी प्रचार के महत्व की बराबरी यदि और कोई कर सकता है तो वह खादी का ही प्रचार है। दक्षिण भारत में आज आठ लाख आदमी ऐसे है जो हिन्दी जानते हैं। हिन्दी परीक्षाओं में उत्तीर्ण लोगों की संख्या ८० हज़ार है। हिन्दी शिक्षण केन्द्रों की संख्या दो हज़ार है और हिन्दी शिक्षकों की आठ सौ। बारह सौ व्यक्ति हिन्दी में ग्रेजुएट हो चुके हैं। आज मद्रास प्रान्त के दो सौ हाई स्कूलों में हिन्दी पढ़ाई जाती है। हिन्दी के १२० प्रचारक हैं। अब तक हिन्दी प्रचार में दश लाख रुपया ख़र्च हो चुका है।

हिन्दुस्तानी राष्ट्रभाषा--दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सम्मेलन में बम्बई के भूतपूर्व प्रधान मन्त्री श्रीयुत बी० जी० खेर भी गये थे। अपने भाषण में आप ने कहा कि केवल हिन्दी-हिदुस्तानी ही है जो राष्ट्रभाषा हो सकती है। राष्ट्र का बहुसंख्यक जन समूह इसे बिलकुल आसानी से बोलता और समझता है; क्योंकि यह उसकी मातृभाषा है। बाक़ी देशवासी इसे नाममात्र प्रयत्न से सीख सकते हैं। यह इसी से प्रमाणित है कि आपकी सभा बहुत से तामिल और तेलगू भाषियों को हिन्दुस्तानी सिखला सकी है। यह ध्यान में रखने की बात है कि तामिल और तेलगू हिन्दी की सजातीय भाषाएं नहीं हैं। हिन्दुस्तान की भाषा का नाम हिन्दुस्तानी ही हो सकता है। हिन्दुस्तानी नागरी और उर्दू दोनों ही लिपियों में लिखी जा सकती है। जो जिस लिपि को पसन्द करें वह उसी को सीखें।

सम्मेलन की परीक्षाओं में जैनदर्शन—श्रीयुत रतनलाल संघवी न्यायतीर्थ बिशारद जैनमित्र में लिखते हैं कि प्रयाग के हिन्दीसाहित्य सम्मेलन

का हिन्दी संसार में वही स्थान और महत्व है जो भारतीय राजनैतिक जगत में कांग्रेस का। उसका "हिन्दी विश्वविद्यालय" नियमानुसार एवं व्यवथिस्त ढङ्ग से प्रतिवर्ष अनेक परीक्षाएँ लेता है। परीक्षार्थियों की योग्यता भी इन परीक्षाओं से अच्छी हो जाती है। इन परीक्षाओं का स्टैण्डर्ड ऊँचा होने से इनका मान भी देश में ठीक ठीक किया जाता है। जैनछात्र प्रतिवर्ष सैकड़ों की संख्या में इन परीक्षाओं में सम्मिलित होते हैं और अच्छी श्रेणी में सम्मेलन से मेडल तक प्राप्त करके सम्मानपूर्वक इन परीक्षाओं में उत्तीर्ण होते रहते हैं। किन्तु अनेक छात्रों और जैनसंस्थाओं को विषय चुनाव में कठिनाई आती है। यदि प्रथमा और मध्यमा में जैनदर्शन को भी वैकल्पिक विषयोंमें स्थान दे दिया जाय तो जैनछात्रों और जैन संस्थाओं को बहुत सुविधा हो जायगी। जैनसंस्थाओं के पाठ्यक्रम में भी सादृश्यता आजावेगी और प्रतिवर्ष जैन परीक्षार्थियों की संख्या भी बढ़ जावेगी। आप यह भी चाहते हैं कि प्रथमा, विशारद और साहित्यरत्न में प्राकृत-अपभ्रंश और जैनदर्शन को वैकल्पिक विषयों में स्थान दिया जाय, जैसा कि भारत के अनेक सरकारी विश्वविद्यालयों ने एफ़० ए० और बी० ए० में किया है। संस्कृत की सरकारी परीक्षाओं में भी प्रथमा, मध्यमा, तीर्थ, शास्त्री और आचार्य में जैनसाहित्य को स्थान मिल चुका है। किन्तु खेद है कि सम्मेलन की परीक्षासमिति ने इस ओर अभी कोई ध्यान नहीं दिया। आप आशा रखते हैं कि इस ओर अवश्य ध्यान दिया जायगा। आप यह जानकर प्रसन्न होंगे कि परीक्षा समिति ने इस विषय में परामर्श कर जैन धर्म की बातें सम्मिलित करने का विचार किया है।

हिन्दी साहित्य की आन्तरिक दशा—'अर्जुन' में श्रीयुत राधेश्याम भिंगरन लिखते हैं कि जिस गद्य-पद्य का बीजारोपण भारतेन्दुके कर-कमलों द्वारा हुआ था और जिसे द्विवेदी सरीखे साहित्य महारथी ने पल्लवित किया वह आज सम्पूर्ण रूप से फल-फूल रहा है। आज का बढ़ता हुआ दिन रात अन्धाधुन्ध आंधी की भांति आने वाला साहित्य इस बात का द्योतक है कि अब कुछ चतुर समालोचक मैदान में आयें और सत्साहित्य की रक्षा करें तथा सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक व्यूह को दूषित गन्दे वातावरण में डालने

वाले घासलेटी साहित्य को अपनी पैनी तथा अनुभवी समालोचना के द्वारा नष्ट करें। अभी हिन्दी में बहुत सी न्यूनताएँ हैं। जिन कलाकारों को हम अब तक खो चुके हैं, उनकी पूर्ति अभी तक न हो सकी। (१) हमारे नवीन लेखकों की मनोवृत्ति (२) कहानी साहित्य में प्रेम का नग्न प्रदर्शन (३) कविता क्षेत्र में वादों का आधिपत्य और (४)समालोचना के नाम पर शब्दों की झूठी प्रदर्शिनी आदि पर भलीभांति दृष्टि गड़ाने से हिन्दी साहित्य की प्रगति में शिथिलता का अनुभव होता है। आप के मत में नये लेखक यश और नाम की धुन में अपने उत्तरदायित्व को भूल जाते हैं। लिखते समय उन्हें देश, जाति, कर्त्तव्य आदि का कुछ ख़्याल रहता है या नहीं इसे कहना दुस्तर है। जिन्होंने स्कूल, कालेजों में कुछ लिखने का अभ्यास किया है वे किसी प्रसिद्ध साहित्यसेवी से संशोधन कराना अपना अपमान समझते हैं। इधर कहानी साहित्य ने जितनी उन्नति की है उतनी किसी दूसरे विषय ने नहीं की। किन्तु रीति काल की भांति बहुत से नवयुवकों ने इसे प्रेम के कुत्सित चित्रों द्वारा रंग कर प्रेमचन्द और शरत् बनने का असफल दावा किया है। भला जब देश में दरिद्रता का वीभत्स नृत्य हो रहा हो, जनता एक एक रोटी पर प्राण देने के लिये कटिबद्ध हो तब यह शृंगार और प्रेम की झूठी विरुदावलियाँ कुछ महत्व पा सकती हैं? आज हिन्दी साहित्य को मौलिकता और नवीनता चाहिये;बायस्कोप और अंग्रेज़ी कहानियों का अंग-भंग गढ़न नहीं। इसी तरह प्रातःकाल से सायंकाल तक कविता कामिनी की छाती पर न जाने कितने वादों का जन्म होता है और फिर उनका कब अन्त हो जाता है, इसका पता लगाना इस परिवर्तनशील युग में महान् असम्भव समझिये। वादों के बवण्डर में जैसे कविता की उन्नति उड़ी जा रही है। छायावाद, रहस्यवाद, हालावाद, प्यालावाद और स्थूल-वाद का एक कोहराम मचा हुआ है। हाँ, रहस्यवाद और छायावाद दोनों ही हिन्दी साहित्यके एक अंग हैं, किन्तु इन्हें देश की प्रतिनिधि कविता बताना व्यर्थ है। पत्रों में छायावाद के नाम से छपनेवाली कविता "पागल का प्रलाप" मालूम होती हैं। "बाह्मन का लौंडा मैं उसे प्यार किया करता हूँ" इस कविता के प्राण में कौन सा अध्यात्म भरा है? समालोचना का हिन्दी में प्रारम्भ से ही अभाव रहा है। कुछ समालोचना पुस्तकों की नोंक-झोंक देख कर लोगों ने तुलना को ही आलोचना समझना आरम्भ किया। पं०

रामचन्द्र शुक्ल की तुलसी और पद्माकर की समालोचना हिन्दी की एक बड़ी सम्पत्ति और नये समालोचकों के लिये आदर्शरूप भी है।

उर्दू की परिभाषा—कुछ लोग कहते हैं कि भारत की राष्ट्रीय भाषा उर्दू है किन्तु उर्दू के पुराने लेखकों ने इसकी जो परिभाषा बतलायी है, उससे यह कथन मिलता नहीं है। पण्डित वेंकटेश नारायण तिवारी ने इस विषय में 'देशदूत' में प्रकाश डाला है। शाह हातिम (सन् १६९८ से १७९१ के बीच) ने लिखा है कि उर्दू वह ज़बान है जो दिल्ली के मिर्ज़ा और फ़सीह लोगों की ज़बान है। उर्दू ए मुअल्ला के रहनेवालों की ज़बान है जो आम फ़हम और ख़ास फ़हम है। इसके बाद सैयद इंसा ने सन् १८१६ के पहले उर्दू की परिभाषा की है कि उर्दू वह ज़बान है जिसे हिन्दुस्तान के बादशाह, उनके शाहज़ादे व चन्द अमीर व मुसाहिब बेगमें और क़स्बियां बोलती हैं। दिल्ली के हर एक रहनेवाले भी इंसा की राय में सही उर्दू नहीं बोल सकते। सैयद इंसा की "मुस्तनद" उर्दू—टकसाली उर्दू—की कसौटी यह थी कि वही नगीब (कुलीन) सही उर्दू बोल सकता है जिसके माँ बाप दिल्ली के रहने वाले हों, उनकी यह भी राय है कि उर्दू को तो ठीक-ठीक मुसलमान ही बोल सकते हैं बशर्ते कि वे कुलीन घर के हों और उनके माँ-बाप दिल्ली के रहने वाले हों। हिन्दू तो न सही उर्दू बोल सकते हैं और न लिख ही सकते हैं। इसके बाद अलीगढ़ युनिवर्सिटी की स्थापना करने वाले सर सैयद अहमद ख़ाँ ने भी उर्दू को हिन्दुस्तान के मुसलमानों की ज़बान फ़रमाया है। औरङ्गजेब के शासनकाल से उर्दू के आदि कवि वली के अनुकरण पर उर्दू के लेखकों ने उससे हिन्दी और संस्कृत के शब्दों को त्यागने और अरबी-फ़ारसी के शब्दों को महत्ता देना आरम्भ किया। आख़िरकार सन् १८३७ के पहले नासिख ने यह फ़तवा दिया कि किसी भी उर्दू के लेखक को जहाँ तक फ़ारसी और अरबी के अलफ़ाज़ मिलें हिन्दी और संस्कृत के अलफ़ाज़ न इस्तैमाल करना चाहिये। उन दिनों लखनऊ के मुसलमानों का बोल बाला था, इसलिये नासिख के इस फ़तवे के सामने हिन्दुओं के मुस्तनद मुसन्निफ़ों ने सर झुका दिया। हाली के शब्दों में कोई हिन्दू शुद्ध उर्दू लिख नहीं सकता, क्योंकि हिन्दुओं की सोशल हालत उसके मार्ग में बाधक है। मालूम नहीं सर तेजबहादुर सप्रू इस पर क्या कहेंगे।

बिहार की हिन्दुस्तानी—बिहार की नयी रीडरें और देहातों में

प्रचलित करने वाली पुस्तकों के सम्बन्ध में बहुत चर्चा हो चुकी है; और काशी के हिन्दी-साहित्य सम्मेलन में भी इस पर बहुत ले-दे मच चुकी है। इधर इसके प्रचारक श्रीयुत रामलोचन शरण जी बिहार के भूतपूर्व मिनिस्टर श्रीयुत अनुग्रह नारायण सिंह से इस बात का फ़तवा ले चुके हैं कि "महमूद सीरीज़" में श्री राम चन्द्रजी, श्री कृष्णचन्द्र और श्री सीता जी के सम्बन्ध में बादशाह राम या बेगम सीता का शब्द नहीं पाया गया है। इस फ़तवे में श्री रामलोचन शरण की साहित्यिक सेवाओं की सराहना की गयी है। और हर्ष के साथ कहा गया है कि "जिस मतलब से ये पुस्तकें लिखी गयी हैं उसकी पूर्त्ति सोलह आने इससे होती है।" बात तो ठीक ही है, जिस मतलब से पुस्तकें लिखी गयी हैं, उसकी पूर्ति तो हो रही है; परन्तु वह पूर्ति हिन्दी के पक्ष में हो रही है या नहीं यही विचारणीय विषय है। "जनता" को देखने से पता लगता है कि इधर हिन्दुस्तानी के रूप के बारे में जो आन्दोलन चल रहा है उसका असर बिहार प्रान्त की हिन्दुस्तानी कमेटी पर पड़ा है। मौलाना आज़ाद ने एक वक्तव्य देकर यह साफ़ किया है कि अभी हिन्दुस्तानी कमेटी किसी निर्णय पर नहीं पहुंची है। एक समान भाषा के निर्माण की चेष्टा जारी है। उसका अन्तिम रूप देने के पहले उन सभी से राय ली जायगी जिन्हें इस पर राय देने का हक़ हासिल है। जनता सम्पादक को स्वयं मालूम नहीं कि उस पर राय देने का हक़ किन्हें है। वह यह भी कहते हैं कि एक भाषासम्बन्धी समिति साहित्यिक नहीं राजनीतिक कमेटी मालूम पड़ती है। जब नींव ही ग़लत तब इमारत कैसी होगी? कहते हैं इस कमेटी में अधिक लोग ऐसे लिये गये हैं जिन्हें लेखन कला से कोई ख़ास वास्ता नहीं, ऐसे नहीं जिन्हें दोनों भाषाओं का अच्छा ज्ञान हो। नतीजा या तो खींच-तान होगा या चोंचों का मुरब्बा! हिन्दुस्तानी किताबों की जाँच पड़ताल करने के लिये जिन १० सज्जनों की सब-कमिटी बनायी गयी है उसमें एक सूर्यपुरा नरेश के सिवाय कोई दोनों भाषाओं का ज्ञान रखने वाला नहीं। इसी तरह "हिन्दुस्तानी डिक्शनरी बनाने के लिये जो सिद्धान्त ज़ूमंर किये गये हैं वे बड़े भयावह हैं।' हिन्दी शब्द सागर, में जो अरबी फ़ारसी के शब्द हैं वे लिये जायँ और "फरहंग असफिया' में जो संस्कृत और हिन्दी शब्द हैं वे लिये जायँ। इस तरह साधारण जनता के बोल-चाल के शब्दों का रास्ता उसमें बन्द ही समझिये।

अपनी बात

हिन्दी लेखकों की समस्या—पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी हिन्दी के उन इने-गिने लेखकों में अग्रगण्य हैं जो समय-समय पर साहित्य-सेवियों, लेखकों और कवियों की समस्याओं के सम्बन्ध में आन्दोलन तथा उनकी कठिनाइयों, निर्धनता और आर्थिक कष्टों के निवारण के उपाय की ओर जन साधारण का ध्यान आकर्षित करते रहते हैं। यह बात किससे छिपी हुई है कि आज हिन्दी के कितने ही श्रेष्ठ साहित्य-सेवी आर्थिक कठिनाइयों के शिकार हो रहे हैं ? उनके मार्ग में कितनी कठिनाइयाँ उपस्थित हैं, वे अपनी सुन्दर और श्रेष्ठ कृतियों को टके के मोल बेच रहे हैं, किस प्रकार उनके शोषण की प्रवृत्ति का प्रचार बढ़ रहा है। यह सभी बातें इतनी दयनीय और दुःखपूर्ण हैं कि उनकी ओर प्रत्येक साहित्यिक संस्थाओं तथा उदार-चेतों के लिये ध्यान देना अनिवार्य ही नहीं आवश्यक भी है। लेखकों की स्थिति भी मज़दूरों की सी है। इसलिये कम से कम उन्हें उनकी कमाई की उचित मज़दूरी तो मिलनी ही चाहिये। जो हिन्दी राष्ट्रभाषा पद को प्राप्त कर रही है, जिस भाषा के बोलने वालों की संख्या भारतवर्ष में बहुसंख्यक है, उस हिन्दी पर आश्रित रहने वाले लेखकों की यह दयनीय दशा ! लेकिन इतने पर भी यदि इस समस्या के सुलझाने के लिये उचित उद्योग की ओर ध्यान दिया गया, हमारी हिन्दी संस्थाओं ने इस कार्य को अपने हाथ में लिया तो इसके हल होने में कोई कठिनाई न होगी। पंडित बनारसी दास चतुर्वेदी द्वारा उठाये हुए इस आंदोलन को हिन्दी के प्रत्येक वर्ग और श्रेणी से सहयोग मिलना चाहिए और इसे सुलझाने के लिए क्रियात्मक रूप और दृढ़तर कार्य की योजना होनी चाहिये। हिन्दी के लेखकों की वर्तमान समस्या हिन्दी-संसार के लिये एक जटिल प्रश्न बन रहा है। प्रांतीय सरकारें, मान्य हिन्दी संस्थायें, ऐसी साहित्य-सेवी जो साधन-संपन्न हैं तथा प्रकाशक गण यदि हृदय से इसमें सहयोग दें तो यह प्रश्न और भी सरलता से सुलझाया जा सकता है।

नियमावली

१—सम्मेलन-पत्रिका प्रति मास प्रकाशित होती है।

२—हिन्दी साहित्य सम्मेलन के आदर्शों की पूर्ति में सहायक होना पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है।

३—पत्रिका का वार्षिक मूल्य १) तथा एक अङ्क का =) है।

४—पत्रिका के संम्बन्ध में पत्र-व्यवहार साहित्य-मन्त्री, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के पते से करना चाहिए।

५—पत्रिका-संबन्धी पत्र-व्यवहार में जवाब के लिए टिकट आने चाहिए; अन्यथा आवश्यक-अनावश्यक का विचार कर पत्रोत्तर दिया जायगा।

हिन्दी प्रेमियों से अनुरोध

हिन्दी साहित्य सम्मेलन की मुख-पत्रिका 'सम्मेलन-पत्रिका' पिछले कई वर्षों से प्रकाशित होती आई है। समय समय पर उसमें सुन्दर और विचार-पूर्ण लेखों के साथ सम्मेलन की स्थायी समिति तथा अन्यान्य समितियों के कार्य-विवरण प्रकाशित होते रहे हैं। हिन्दी के प्रेमियों, विद्वानों तथा स्थायी समिति के सदस्यों से यह अविदित नहीं है। किंतु अब हम चाहते हैं कि 'सम्मेलन-पत्रिका' प्रति मास ठीक समय पर प्रकाशित हो। साथ ही सुन्दर और श्रेष्ठ साहित्यिक लेख प्रकाशित किये जायँ जिससे हिन्दी के प्रति अनुराग रखने वाले सुदूर प्रांतों के हिन्दी-प्रेमी और विद्यार्थी भी उससे लाभ उठा सकें। इसके सिवा 'साहित्य-रत्न' 'मध्यमा' तथा 'प्रथमा' परीक्षाओं में सम्मिलित होने वाले विद्यार्थियों को साहित्य-अध्ययन में समय समय पर सहायता प्राप्त होती रहे। इसलिये हम प्रत्येक हिन्दी प्रेमी तथा विद्यार्थी से अनुरोध करते हैं कि वह 'सम्मेलन-पत्रिका' के स्वयं ग्राहक बनें और अपने मित्रों को भी बनावें। यदि एक हज़ार भी ग्राहक हमको मिल गये तो 'पत्रिका' का आकार प्रकार भी बड़ा कर दिया जायगा और विद्वानों के श्रेष्ठ साहित्यिक लेखों से भी इसका कलेवर अलंकृत होता रहेगा। आशा है हिन्दी-प्रेमी इस निवेदन की ओर ध्यान देने की कृपा करेंगे। सम्मेलन प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी की संस्था है और इसीलिये हम उनसे हर प्रकार के सहयोग और सहायता की पूर्ण आशा रखते हैं। जिन ग्राहकों का वार्षिक चंदा समाप्त हो गया है वे कृपया १) मनीआर्डर से शीघ्र भेज दें।

साहित्य-मंत्री

रजिस्टर्ड नं० ए० ६२९

हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा

प्रकाशित कुछ पुस्तकें

(१) सुलभ-साहित्य-माला

१ भूषण ग्रन्थावली २)
२ हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास ॥)
३ भारत गीत ≋)
४ राष्ट्र भाषा ॥)
५ शिवाबावनी ≋)
६ सरल पिंगल ।)
७ भारतवर्ष का इतिहास भाग १ २॥)
८ " " " " २ २।)
९ ब्रजमाधुरी सार २॥)
१० पद्मावत पूर्वार्द्ध १), १।)
११ सत्य हरिश्चन्द्र ।–)
१२ हिन्दी-भाषा सार ।॥)
१३ सूरदास की विनय पत्रिका ≋)
१४ नवीन पद्य-संग्रह ।॥)
१५ कहानी-कुञ्ज ॥=)
१६ विहारी संग्रह ≋)
१७ कवितावली ।॥)
१८ सुदामा चरित्र ।)
१९ कबीर पदावली ।॥=)
२० हिन्दी गद्य-निर्माण १॥)
२१ हिन्दी साहित्य की रूप-रेखा ।)
२२ सती कण्णकी ॥)
२३ हिन्दी पर फ़ारसी का प्रभाव ॥=)
२४ पार्वती मङ्गल ।)
२५ सूर पदावली ॥=)
२६ नागरी अंक और अक्षर ≋)
२७ हिन्दी कहानियाँ १॥)
२८ ग्रामों का आर्थिक पुनरुद्धार १।)
२९ तुलसी दर्शन २॥)
३० भूषण-संग्रह भाग १ ।–)
३१ भूषण-संग्रह भाग २ ॥=)

(२) साहित्य-रत्नमाला

१ अकबर की राज्यव्यवस्था १)

(३) वैज्ञानिक-पुस्तकमाला

१ सरल शरीर विज्ञान ॥), ।॥)
२ प्रारम्भिक रसायन १)
३ सृष्टि की कथा १)

(४) बाल-साहित्य-माला

१ बाल पञ्चरत्न ॥)
२ वीर सन्तान ।=)
३ बिजली =)

(५) ओझा अभिनन्दन ग्रन्थ

१६)

मुद्रक—गिरिजा प्रसाद श्रीवास्तव, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग।
प्रकाशक—साहित्य-मंत्री, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।

माघ, फाल्गुण सम्बत् १९९६

सम्मेलन-पत्रिका

[भाग २७, संख्या ६, ७]

संपादक

श्री ज्योतिप्रसाद मिश्र निर्मल

साहित्य-मंत्री

हिन्दी साहित्य सम्मेलन

प्रयाग

वार्षिक
१)

एक प्रति =)

विषय-सूची

सम्मेलन-पत्रिका

भाग २७] माघ फाल्गुण १९९६ [संख्या ६,७

क्या कबीर रामानन्द के शिष्य थे ?

[लेखक - श्री राकेश गुप्त बी० ए०, 'साहित्य-रत्न]

हिन्दी-साहित्य का इसे दुर्भाग्य ही कहिए, कि अभी तक हम उसके उन जगमगाते रत्नों के विषय में भी, जिन पर हमें तथा हमारे साहित्य को गर्व है, निश्चयात्मक रूप से बहुत कम विचार कर सके हैं। जहाँ तक रचनाओं का सम्बन्ध है, वहाँ तक तो तब भी कुछ ग़नीमत है, पर इससे आगे उनके जीवन-क्षेत्र में प्रवेश करते ही हमें पता चलता है कि हमारा ज्ञान भ्रम की एक अनन्त शैवालिनी के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। किंवदंतियों और जनश्रुतियों के धुँधले प्रकाश में हम सत्य को बरबस खोज लेना चाहते हैं, और असफलता की निराशा से बचने के लिए अक्सर हम अपने निर्णय पर सब दृष्टिकोणों से तर्क पूर्ण विचार किये बिना ही उसे सच मान लेते हैं। मेरे विचार से रामानन्द को कबीर का गुरु मान लेना भी एक ऐसा ही भ्रामक निर्णय है, जिसे किसी-किसी इतिहासकार ने तो बिना परिपुष्ट प्रमाण दिये ही निर्भ्रान्त सत्य मान लिया है।

रामानन्द के कबीर का गुरु होने के विषय में सबसे पहले शंका कदाचित् बाबू श्यामसुन्दर दास ने 'कबीर-ग्रन्थावली' की भूमिका में की थी। परन्तु उनकी शंका का आधार केवल रामानन्द और कबीर का समकालीन न होना था। श्री रामकुमार वर्मा ने अपने इतिहास में इन दोनों को समकालीन सिद्ध करते हुए बाबू श्यामसुन्दर दास की शंका को निर्मूल ठहराया और कबीर के रामानन्द का शिष्य होने के ही मत का प्रतिपादन किया। पंडित अयोध्या-

सिंह उपाध्याय ने भी इसी मत का समर्थन करते हुए 'कबीर वचनावली' की भूमिका में कई पृष्ठ लिखे हैं, जिनका मुख्य अंश हम नीचे उद्धृत करते हैं:—

"उनकी रचनाओं में हिन्दू शास्त्रों एवं पौराणिक कथाओं एवं घटनाओं के परिज्ञान का जितना पता चलता है उसका शतांश भी मुसल्मानी धर्म-सम्बन्धी उनका ज्ञान नहीं पाया जाता। जब वे किसी अवसर पर मुसल्मान धर्म पर आक्रमण करते हैं, तब उन्हीं ऊपरी बातों को कहते हैं, जिनको एक साधारण हिन्दू भी जानता है। किन्तु हिन्दू-धर्म-विवेचन के समय उनके मुख से वे बातें निकलती हैं, जिन्हें शास्त्रज्ञ विद्वानों के अतिरिक्त दूसरा कदाचित् ही जानता हो। इन बातों से क्या सिद्ध होता है? यही कि उन्होंने किसी परम विद्वान् हिन्दू महात्मा के सत्संग द्वारा ज्ञानार्जन किया था; और स्वामी रामानन्द के अतिरिक्त उस समय ऐसा महात्मा कोई दूसरा नहीं था।"

पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास में कल्पना की है कि रामानन्द जी के माहात्म्य को सुनकर कबीर के हृदय में उनका शिष्य होने की लालसा जगी होगी। इसके आगे आपने कहा है कि इसमें कोई संदेह नहीं कि कबीर को राम-नाम रामानन्द जी से ही प्राप्त हुआ। इस प्रकार से शुक्ल जी ने कबीर पर रामानन्द का प्रभाव मानते हुए भी उन्हें स्पष्ट-रूप से शिष्य-गुरु के सम्बन्ध में नहीं बाँधा। कबीर के रामानन्द का शिष्य होने का जो सबसे पुष्ट प्रमाण अभी तक दिया जाता रहा है, वह अधोलिखित पंक्ति है।

'काशी में हम प्रगट भए हैं, रामानन्द चिताए।'

यहाँ पर हम संक्षेप में इन सब तर्कों पर विचार करते हुए, अपनी कुछ निजी शंकाएँ, अपना निजी दृष्टिकोण रखने का प्रयत्न करेंगे।

सबसे पहले हमें यह देखना चाहिए कि रामानन्द और कबीर के सिद्धान्तों में कितना अन्तर है, और क्या किसी प्रकार भी हम कबीर की गुरु की भावना के साथ उस सैद्धान्तिक विरोध का समन्वय कर सकते हैं? जाति और धर्म के सामाजिक बन्धनों को सर्वथा छिन्न-भिन्न करके हिन्दुओं के वर्णाश्रम धर्म के मूलोच्छेदन का प्रयत्न कबीर ने अपनी सारी शक्तियों के साथ किया।

रामानन्द का इस विषय में क्या मत था, इसके लिए हम श्री जे० एन० फ़र्कहार की "ऐन आउट लाइन आफ़ दि रिलिजस लिटरेचर आफ़ इण्डिया" नामक पुस्तक से, अंग्रेज़ी अवतरण का हिन्दी अनुवाद देना पर्य्याप्त समझते हैं "परन्तु इसका प्रमाण नहीं है कि उन्होंने पुजारी के कार्यों को ब्राह्मण तक सीमित रखने वाले नियम को शिथिल किया वरन् उन्होंने वर्ण भेद को भी सामाजिक संस्था के पद से हटाने की कोशिश की। केवल वर्ण भेद सम्बन्धी कुछ धार्मिक बंधनों को उन्होंने शिथिलता प्रदान की।" रामानन्द वैष्णव थे, राम को विष्णु का अवतार मानते हुए उनकी सगुणोपासना का प्रचार उनका मुख्य कार्य था; कबीर ने अवतारवाद और सगुणोपासना का 'सिरजनहार न ब्याही सीता' 'ताहि अगस्त अँचै गयो, इनमें को करतार' तथा 'दुनिया ऐसी बावरी, पाथर पूजन जाय' जैसे वाक्य कह कर अनेक स्थलों पर स्पष्ट विरोध और उपहास किया। रामानन्द हिन्दू थे, वेद, शास्त्र, स्मृति एवं पुराणों के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा थी; कबीर ने 'किरतिम इसमृत बेद पुराना' आदि कह-कह कर हिन्दुओं के सभी धार्मिक ग्रन्थों में अपना घोर अविश्वास प्रकट किया, और उन्हें केवल पाखण्ड के प्रचार का साधन बतलाया।

सारांश यह कि कबीर ने जन-समाज की जिन रूढ़ियों के प्रति विद्रोह की आवाज़ उठाई, उनमें से अधिकांश का रामानंद ने मनोयोग से प्रचार किया, अथवा यों भी कह सकते हैं कि रामानन्द ने भक्ति की जिस प्रणाली को, उपासना के रूप को प्रतिष्ठित करना चाहा, कबीर ने उसका खुले हृदय से विरोध किया।

पर क्या कबीर, जिन्हें ये 'गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागूँ पाँय' कहकर गुरु को ईश्वर से भी ऊँचा स्थान दिया है? रामानन्द को अपना गुरु मानते हुए भी उनकी नीति-रीति का इतनी निरंकुशता के साथ विरोध कर सकते थे? क्या गुरु से कुछ भी दुराव न रखने वाले, उन्हें सब कुछ समर्पित करने वाले कबीर से हम यह आशा करें कि वे अपने गुरु के सिद्धान्तों के इतने कठोर, इतने अनुदार समालोचक हो सकते थे? क्या सत्गुरु के एक-एक शब्द पर अपार विश्वास एवं अनन्त श्रद्धा रखने के लिए कहने वाले कबीर के विषय में भी यह मत सम्भव हो सकता है कि वे एक ऐसे व्यक्ति

को अपना गुरु मानते थे, जिसकी कड़ी आलोचना करने में ही उन्होंने अपना जीवन व्यतीत किया ? क्या अपने गुरु के चरण-चिह्नों पर आँख मूँदकर चलने में विश्वास करने वाले कबीर के विषय में हम यह सोचें कि उन्होंने उन रामानन्द को अपना गुरु माना होगा जिनकी एक भी बात का अनुसरण उन्होंने अपने सामाजिक प्रचार के क्षेत्र में नहीं किया ?

अब तनिक पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय के भी उस तर्क पर विचार कीजिये, जिसके द्वारा उन्होंने कबीर को रामानंद का शिष्य होना सिद्ध किया है। उनका कहना है कि कबीर ने हिन्दू-धर्म-ग्रन्थों की भीतरी से भीतरी बातों का ज्ञान रामानंद के सत्संग से ही प्राप्त किया होगा। हम भी मानते हैं कि उन्होंने रामानंद का सत्संग किया, पर किस लिए ? स्पष्ट रूप से हिन्दू-धर्म-ग्रन्थ तथा रामानन्द के उपदेशों को सच मानकर उनका प्रचार करने के लिए नहीं वरन् उनकी आलोचना और उनका विरोध ही करने के लिए। यदि कबीर के इस रूप में भी उपाध्याय जी उनकी शिष्य भावना को सुरक्षित पायें, तो अपनी धृष्टता के लिए उनसे क्षमा माँगने के अतिरिक्त मैं और क्या कहूँगा !

इस बात को साहित्य का प्रत्येक विद्यार्थी जानता है कि कबीर ने अपनी किसी भी रचना को स्वयं लिपिबद्ध नहीं किया, और यह भी लगभग सभी विद्वानों ने माना है कि कबीर की रचना में उनके शिष्यों की भी अनेक शब्द और साखियाँ मिली हुई हैं। ऐसी परिस्थिति में कबीर के ग्रन्थों में 'रामानन्द चिताए' जैसे एक-आध वाक्य पाकर हम निर्भ्रान्त रूप से एकाएक कोई निर्णय नहीं दे सकते। यदि उस पूरे पद को ध्यान-पूर्वक देखा जाये, जिसमें कि यह वाक्य आया है, तो हमारी उपर्युक्त शंका को और भी प्रश्रय मिलता है। फिर 'रामानंद चिताए' कहने से रामानंद के गुरु होने का स्पष्ट रूप से बोध नहीं होता। यदि इस पद को कबीर-कृत भी माना जाये तो अधिक-से-अधिक यह संभव हो सकता है कि कबीर दास रामानंद की कभी किसी एक बात से प्रभावित हुए होंगे। इस विषय में शुक्ल जी की जो यह कल्पना है कि रामानन्द का यश सुनकर बचपन में कबीर के हृदय में उनके शिष्य होने की लालसा जगी होगी, सम्भव है किसी सीमा तक ठीक हो, परन्तु इसके साथ ही इतना भी निश्चित है कि आगे

चलकर जब कबीर का वह व्यक्तित्व पूर्ण रूप से विकसित हुआ होगा, जो कि रामानन्द के व्यक्तित्व से बिलकुल भी मेल नहीं खाता, तब उन्होंने अपने को रामानन्द का शिष्य मानने की कल्पना को भी अपने हृदय से निकाल फेंका होगा।

आलोचकों का विचार है कि अद्वैतवाद की भावना कबीर में रामानन्द से ही आयी। इस विषय में हमें दो बातें कहनी हैं। एक तो यह कि जन-साधारण में प्रचार करते हुए कबीर और रामानन्द दोनों ने सूक्ष्म दार्शनिक विवेचन को प्रधानता नहीं दी, उनका उद्देश्य तो समाज को एक ऐसे मार्ग पर लगा देना था, जो उनकी सम्मति में उसके लिए श्रेयस्कर था, जैसा कि हम ऊपर दिखला चुके हैं। कबीर और रामानन्द द्वारा निर्दिष्ट पथ सर्वथा विभिन्न दिशाओं की ओर ले जाने वाले थे। दूसरी बात हमें यह कहना है कि कबीर में रामानन्द का अद्वैतवाद अपने शुद्ध रूप में नहीं मिलता, उनकी ईश्वर की भावना पाश्चात्य और पूर्वी विचारों का एक घोल है, जिसमें कबीर की किसी निश्चित विचार-धारा को हम निर्भ्रान्त रूप में स्थिर नहीं कर सकते। अतः इस आधार पर कबीर और रामानन्द के बीच शिष्य और गुरु के सम्बन्ध की कल्पना करना कल्पना मात्र ही होगी। फिर हठयोग द्वारा गुरु की सहायता से ईश्वर को प्राप्त करने का जो रूप कबीर ने रक्खा है, क्या उसका रामानन्द से कुछ भी सम्बन्ध था ? क्या कबीर के गुरु के आदर्शा-नुसार रामानन्द कभी उन्हें ईश्वर की ओर ले चलने में प्रयत्नशील हुए थे ? यदि हाँ, तो हम अपने विज्ञ पाठकों से प्रार्थना करेंगे, कि वे हमें बतलाने की कृपा करें कि कब, कहाँ और किस रूप में ? और यदि नहीं, तो हम कैसे मान लें कि कबीर ने कभी स्वप्न में भी रामानन्द को अपना गुरू माना होगा ? हम कैसे मान लें कि रामानन्द के मत का ज़ोरदार खण्डन करनेवाले कबीर ने 'पण्डितवाद बदंते झूठा' कहते समय रामानन्द को अपने लक्ष्य में नहीं रक्खा होगा ? हम कैसे मान लें कि कबीर में रामानन्द के प्रति, रामानन्द के सिद्धान्तों के प्रति इतनी स्पष्ट भर्त्सना होते हुए भी उन्होंने रामानन्द के लिए अपने हृदय में गुरु-भावना की एक क्षीण रेखा को भी उदय होने दिया होगा ?

इस प्रकार मैंने संक्षेप में अपने दृष्टि-कोण को कुछ प्रमाणों के साथ सामने रखने का प्रयास किया है। आशा है हिन्दी के विद्वान् पाठक इस पर सहृदयता-पूर्वक विचार करेंगे।

देशी-विदेशी प्रकाशक और लेखक

[लेखक श्री ब्योहार राजेन्द्र सिंह एम० एल० ए०]

विदेशी तथा स्वदेशी प्रकाशकों में कोई तुलना नहीं हो सकती। वे हजारों रुपया पुरस्कार में देकर लाखों कमाते भी हैं। इसलिये उनसे अपने गरीब प्रकाशकों की तुलना हम नहीं करना चाहते। वे तो लेखकों की पुस्तकें अपने ख़र्च से छापकर अपना रुपया फँसा देते हैं, यही बड़ा काम करते हैं। ऐसी दशा में लेखकों को भी उतनी ही रायलटी मिलती है जितना कि प्रकाशकों की बिक्री होती है। अतः इस दिशा में उनकी कोई शिकायत नहीं है। शिकायत सिर्फ़ वहाँ है जहाँ कि प्रकाशक अपने लाभ में लेखक को कोई हिस्सा नहीं देना चाहते, उसकी देशभक्ति या मातृभाषा-भक्ति का लाभ उठा कर स्वयं धनवान बनना चाहते हैं।

हाँ प्रकाशक उसी हालत में लेखक से स्वार्थ त्याग करने के लिये कह सकता है जब वह पुस्तकों को बिना मूल्य वितरित कर दे या केवल छपाई और कागज की कीमत लेकर पुस्तकें या पत्र पत्रिकाएँ छापे।

किन्तु जब पुस्तकों की लागत से दूनी चौगुनी कीमत रखी जाती है तब कोई कारण नहीं कि उसमें लेखक का पारिश्रमिक शामिल न हो। आश्चर्य तो यह है कि पुस्तकों पर कमीशन तो ५० फीसदी तक दी जाती हैं किन्तु लेखकों को २५ प्रतिशत भी पारिश्रमिक नहीं दिया जाता। कमीशन एजन्टों के भी बराबर लेखक का दर्जा नहीं माना जाता। प्रकाशकों से यदि इसके अंक माँगें जावें कि वे छपाई, कागज, विज्ञापन, कमीशन तथा पारिश्रमिक में कितना फीसदी खर्च करते हैं तो हमें आश्चर्यजनक बातें मालूम होती है।

मैं स्वीकर करता हूँ कि कई प्रकाशक भी हानि उठा कर पत्र पत्रिकाएँ चला रहे हैं। किन्तु प्रश्न यह है कि क्या हानि केवल लेखकों के मत्थे रक्खी जावे ? जब विज्ञापन, छपाई, कागज, डाकखर्च सभी के लिये मूल्य देना पड़ता है तब केवल लेखक ही बिना मूल्य क्यों बचा जावे ? असल में लेखक के विचार अमूल्य हैं। प्रतिपृष्ठ दो या तीन रुपये उनका असली मूल्य नहीं है

बल्कि केवल उतनी जगह का मूल्य है जिस पर वे विचार छाप कर जनता तक पहुंचाये जाते हैं। यदि लेखक उस जगह का प्रयोग अपने प्रचार के लिये करना चाहता है तो उसे चाहिये कि विज्ञापन की तरह संपादक को 'किराया' प्रदान करे और यदि लेख से पत्रिका का मूल्य बढ़ता है तो अवश्य ही लेखक को उसका पारिश्रमिक मिलना चाहिये।

लेखन कला को जीविका चलाने का साधन बना लेना अभी इस देश में संभव न भी हो तो भी लेखक के अध्ययन, पुस्तकों के मूल्य, समय के मूल्य तथा लेखन के मानसिक परिश्रम के लिये जितना भी दिया जावे थोड़ा है। इतना होते हुए भी हमें अपने देश की आर्थिक अवस्था के अनुसार पारिश्रमिक की कुछ न कुछ दर अवश्य नियत कर लेनी चाहिये तथा नियमित रूप से उसे लेखकों के पास पहुँचाना चाहिये। विचारशील लेखों, कहानियों, नाटकों कविताओं तथा अनुवादों के लिये अलग-अलग रेट नियत होना बहुत ज़रूरी है। प्रत्येक पत्रिकाओं को ये रेट नियत कर अपने लेखकों को सूचित कर देना चाहिये। जो लेखक उन नियमों के अनुसार लिख सकेंगे वे लिखेंगे अन्यथा चुप बैठेंगे। उन रेटों के होते हुए भी रचनाओं को स्वीकृत या अस्वीकृत करने का अधिकार सम्पादकों को रहेगा ही। मेरा ख़्याल है कि पारिश्रमिक निश्चित हो जाने से लेखक भी अच्छी चीजें लिखने के लिए सचेष्ट होंगे और सम्पादक भी उनसे उत्तम रचनाओं के लिये आग्रह कर सकेंगे। इससे दोनों को लाभ होने के साथ लेखकों के स्वाभिमान की भी रक्षा होगी। यदि सम्पादक या प्रकाशक ऐसा न करें तो लेखकों को चाहिये कि अपना संगठन करके या व्यक्तिगत रूप से अपना पारिश्रमिक निश्चित कर लें और उससे कम मिलने पर वे अपनी रचना देने से इन्कार कर दें। किन्तु जब तक वे जीविका के लिये पराश्रित रहेंगे तब तक उनके लिये ऐसा करना ज़रा कठिन है।

हमारी प्राचीन सभ्यता में वेद बेचना पाप समझा जाता था (बेचहिं वेद धर्म दुहि लेंहीं) किन्तु उस समय विद्या प्राप्त करने वाला भी उसे बेचता नहीं था। किन्तु जब लेखक के परिश्रम को प्रकाशक अपनी पुस्तकों या पत्र पत्रिकाओं के रूप में बेचता है तब कोई कारण नहीं कि लेखक भी क्यों न उसका हिस्सेदार समझा जावे? इसके लिये यह कहा जा सकता है कि प्रकाशक भी तो हानि

उठा रहे हैं किन्तु इसका उत्तर है कि वे लेख के कारण यह हानि नहीं उठा रहे हैं बल्कि पाठकों के कारण। पाठकों के अभाव का फल लेखक को क्यों दिया जावे ?

विदेशी पाठकों में पठन-पाठन की रुचि होने ही का परिणाम है कि वहाँ के प्रकाशक लेखकों को लाखों रुपया देकर भी लाभ उठाते हैं।

एक विदेशी प्रकाशक ने पं० जवाहरलाल नेहरू को उनके 'आत्म-चरित' के लिये तथा मैकमिलन ने श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर की रचनाओं के लिये हज़ारों देकर भी लाभ ही उठाया है। इस दशा में नेहरू जी या टैगोर ने अपनी रचनाओं के लिये रुपया लेकर क्या पाप किया ? बल्कि मैं कहूँगा कि रवीन्द्रनाथ ने उसे विश्वभारती में लगाकर तथा पंडित जी ने देश सेवा में लगा कर उसका सदुपयोग ही किया है। मेरे विचार में यदि महात्मा गाँधी जी भी अपने आत्म चरित के प्रकाशन-सत्व के लिये विदेशी प्रकाशकों से रुपया लेते तो देश सेवा ही करते।

यहाँ जो लेखक अपने लेख भेजते हैं उन्हें पारिश्रमिक की आवश्यकता है या नहीं, इस बात को पूछने की भी पर्वाह नहीं की जाती। उन्हें साल भर बराबर पत्रिका भेजने की "उदारता" भी नहीं दिखलाई जाती। कोई-कोई सम्पादक तो बार-बार लिखने पर भी उत्तर देना आवश्यक नहीं समझते। टिकट भेजने पर भी लेख नहीं लौटाते। कोई-कोई सम्पादक पूरे वर्ष तो क्या जिस अंक में लेख छपता है उसे तक भेजने की कृपा नहीं करते। यहाँ तक कि वे लेख छपने की सूचना तक नहीं देते।

कुछ लेखक केवल पत्र पत्रिकाओं के पढ़ने के लोभ से लेख भेज दिया करते हैं पर यदि किसी में कुछ पढ़ने लायक है तो उसे ख़रीद कर ही पढ़ना अच्छा है। इसी नियम के अनुसार जो कुछ छापने लायक है उसे पारिश्रमिक देकर ही छपना चाहिये। यदि पत्र-पत्रिकाएँ दरिद्र हैं तो उन्हें लेखों की याचना न कर आर्थिक सहायता की भी याचना करनी चाहिये। किन्तु नियम के नाते लेखों के लिये पारिश्रमिक मिलना ही चाहिये।

मैंने लेखकों और प्रकाशकों दोनों की हित की दृष्टि से ही यह प्रश्न उठाया है। आशा है विज्ञ पाठक, प्रमुख साहित्य सेवी और प्रकाशक इस पर विचार करेंगे।

हिन्दी-साहित्यकारों के प्रति उदासीनता

[लेखक — श्री मुकुटबिहारी लाल श्रीवास्तव बी० ए०]

वर्तमान हिन्दी-साहित्य पाश्चात्य एवं अन्य विश्व के उन्नत साहित्यों के सम्पर्क में आकर इस योग्य हो गया है कि वह युग धर्म की आवश्यकताओं और आदर्शों का अंकन करने लगा है। युग की प्रवृत्ति के अनुसरण के कारण ही, आज हिन्दी, प्रेमचन्द जैसे अमर औपन्यासिक, सर्वश्री गुप्त, हरिऔध, 'प्रसाद', 'निराला', 'पन्त' प्रभृति कवि, द्विवेदी जी जैसे गद्यलेखक, पं० रामचन्द्र शुक्ल जैसे प्रकाण्ड आलोचक पा सकी है। फिर भी पढ़े-लिखे कहलाने वाले आज भी दुर्भाग्यवश, हिन्दी और उसके साहित्य के प्रति उदासीन हैं। वे अंग्रेज़ी साहित्य के दर्जनों उपन्यास-लेखकों, पचासों कवियों, निबन्ध लेखकों, आलोचकों के नाम गिना सकते हैं। यही नहीं वे उनकी कृतियों, पात्रों का विवरण भी दे सकते हैं, सैकड़ों वाक्य जबानी सुना सकते हैं, अंग्रेजी फूलों, वृक्षों और पक्षियों के नाम, जिन्हें उन्होंने स्वप्न में भी नहीं देखा, बतला सकते हैं; पर वे हिन्दी के प्रमुख साहित्यकारों के भी शायद नाम न बता सकेंगे; पुस्तकों, पात्रों का वर्णन तो अलग रहा। इसका एक कारण यह है कि वे हिन्दी के प्रति उदासीन हैं। इसी उदासीनता के फल-स्वरूप हिन्दी-साहित्य का पाठक-संसार छोटा है। अच्छी पुस्तकों के हजार-हजार के कुछ ही संस्करण निकल कर रह जाते हैं; पत्र-पत्रिकाएँ भी थोड़ी संख्या में छपती हैं और लेखकों को पारिश्रमिक भी नहीं मिलता। यही कारण है कि श्री प्रेमचन्द जैसे कलाकार जिन्दगी भर गरीबी की गोद में आहें भरते रहे। विश्वकवि ठाकुर के निमंत्रण पर कलकत्ते तक का खर्च न होने कारण, प्रेमचन्द को उस महापुरुष का निमंत्रण अस्वीकृत करना पड़ा। अपने साहित्य-जीवन के प्रारंभ के पहले, लण्डन की सड़कों पर फिरने वाला, गरीब बर्नडशा आज देश की साहित्यिक-जागरुकता के कारण लक्ष-पति बना हुआ है।

यह दुर्दशा साधारण पाठक और प्रकाशक की उदासीनता से ही हो, सो बात भी नहीं। हमारा धनिक समाज, साहित्यिक संस्थाएँ एवं राजनीतिक नेता भी हिन्दी के प्रति उदासीन हैं। आज भारत में कितने सेठ,

लक्ष्मीपति, राजे महाराजे हैं जिनकी सहायता से लेखकों, साहित्यकारों का भला हो रहा है ? ऐसे कितने रुपये वाले हैं जो अमूल्य साहित्यिक कृतियों पर प्रोत्साहन के लिए परितोषिक देते हैं ?

हमारे साहित्यक एवं असाहित्यिक राजनीतिक नेता भी इन साहित्यकारों के प्रति उदासीन हैं। यह ठीक है कि हिन्दी न जानने वाले नेतागण उदासीन हो सकते हैं; पर हिन्दी जानने वालों के लिए कौनसा बहाना है ? रूसीक्रान्ति के समय लेनिन और मेक्सिम गोर्की (प्रसिद्ध उपन्यासकार) के संबन्ध को देख हृदय आनन्द से भर जाता है। अन्नाभाव में लेनिन और गोर्की आधा-आधा डबल रोट खाते हैं; प्रत्येक समय गोर्की लेनिन के साथ रहता है। गोर्की की मृत्यु पर देश-व्यापी शोक मनाया जाता है; शाही जुलूस निकाला जाता हैं; अन्त्येष्ट क्रिया के समय फौजी ढंग की शाही तोपें छूटती हैं; इससे अधिक किसी साहित्यकार का और क्या मान दिया जा सकता है ? भारत में प्रेमचन्द की तुलना गोर्की से की जा सकती है। गांधीयुग के, गांधीवाद के, भारतीय किसानों के वह अमर साहित्यकार थे। किन्तु उनकी स्मृति-रक्षा के लिये क्या किया गया ? आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द, भारतीय-साहित्य की सर्वतोमुखी प्रतिभा बाबू जय-शंकर 'प्रसाद' की स्मृति के लिए क्या किया गया ? द्विवेदी जी सिर्फ हिन्दी में (हिन्दुस्तानी में) लिखते थे; 'प्रसाद' संस्कृतमय हिन्दी लिखते थे। खैर इन दोनों को जाने दीजिए। क्या मुंशी प्रेमचन्द हिन्दी-उर्दू दोनों के माने हुए मुस्तनद मुसन्निफ नहीं थे ? उनकी 'चौगाने हस्ती' का कितना मान हुआ ? उर्दू वाले प्रेमचन्द जी को हिन्दी वालों से अधिक मानते थे। फिर प्रेमचन्द जी के लिए कुछ किया गया ? उधर पंजाब सरकार ने डाक्टर सर मुहम्मद इकबाल के स्मारक बनाने के लिए कई हजार की मंजूरी दी है। ऐसी दशा में सच तो यह है कि हमारे नेता भी हिन्दी-साहित्याकारों के प्रति उदासीन हैं।

राजनीतिक नेताओं की उदासीनता परिस्थिति और पालिसी के कारण किसी हद तक क्षम्य भी समझी जा सकती है पर हमारी साहित्यिक संस्थाओं एवं यूनीवर्सिटियों की उदासीनता किसी भी हालत में क्षम्य नहीं है। हमारी संस्थाओं ने कितने साहित्यकारों को सम्मानित करके उपाधियां

दी हैं ? आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपने एक भाषण में—शायद द्विवेदी मेला में—कहा था कि मुझे पता नहीं कि मुझे 'आचार्य' की उपाधि कब और किसने दी ? इन उपाधियों से हमारे साहित्यकारों का मान नहीं बढ़ जाता; वरन् स्वयं हमारा मान बढ़ जाता है। हिन्दू यूनीवर्सिटी प्रति वर्ष राजों-महाराजों को एल० एल० डी० आदि की उपाधियाँ देकर सम्मानित करना अपना सौभाग्य समझती है, पर उन साहित्यकारों को जो आजीवन अपने हृदय के रक्त से साहित्य-उपवन सींचते आये हैं, एक साधारण डिग्री देने में वह क्यों हिचकती है ? इन संस्थाओं की हमारे अमर साहित्यकारों के प्रति उदासीनता नहीं तो क्या है ? इस दिशा में 'राजेन्द्र कालेज' के अधिकारियों का प्रयत्न अनुकरण योग्य है। श्री शिवपूजन सहाय जी को हिन्दी का प्रोफेसर बनाकर उन्होंने बड़ी हिम्मत का कार्य किया है तथा एक आम आदर्श उपस्थित किया है।

इसीलिये हमारे साहित्यकार स्वयं उदासीन वृत्ति के हो गये हैं। गरीबी, आपदा सब सहते हुए वे लिखते रहते हैं। हिन्दी लेखक का जीवन तो सिर्फ लेखन पर ही निर्भर है। प्रेमचन्द, 'प्रसाद', प्रभृति के उदाहरण सामने हैं। मुंशी नवजादिक लाल का जीवन इसी गरीबी की एक दुखद कहानी है, फिर कौन इस पेशे को इख्तियार करे ? इसे इने गिने कर्मठ और लगन वाले ही अपनाते हैं। उन्हें मान की भूख नहीं। उन्हें भीतर से कोई प्रेरित करता है कि लिखो और वे टैगौर के 'क्षुधित पाषाण' के नायक की तरह विवश होकर लिखते हैं। ऐसी दशा में प्रत्येक हिन्दी प्रेमी का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह उनके मान की, उनकी आर्थिक परिस्थिति की फिक्र करे। यदि ऐसा न होगा तो चिन्ता, गरीबी उन्हें शीघ्र उठा लेगी। मुंशी प्रेमचन्द से फादर सी० एफ० एण्ड्रयूज़ ने कहा था कि आप अपनी पुस्तकों का अंग्रेजी अनुवाद करवा डालिए, संशोधन आदि का जिम्मा मैं लेता हूँ। इस पर भी उदासीन मुंशी जी ने कहा था कि जिस वक्त लोग यह महसूस करेंगे कि मेरी रचनाओं का अंग्रेजी अनुवाद हो, उस दिन वह स्वयं हो जायगा।

हिन्दी साहित्य प्रेमियों, धनिकों, हिन्दी पाठकों, संस्थाओं और नेताओं को चाहिये कि वे इस उदासीनता को दूर करें और हिन्दी के साहित्यकारों को अमर बनाने और उनकी स्मृति-रक्षा का प्रयत्न करें।

युक्तप्रान्त की अदालतों में हिन्दी

[लेखक—श्री कुबेरनाथ शुक्ल एम० ए०, व्याकरणाचार्य]

युक्तप्रान्त के न्यायालयों में हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि का असह्य अपमान देख कर किसी भी न्याय-प्रिय मनुष्य के हृदय में क्षोभ उत्पन्न हो सकता है। परन्तु यह बड़े आश्चर्य की बात है कि इस तरफ प्रान्त के बड़े बड़े लोगों का विशेषतः हिन्दी-साहित्य-प्रेमियों का यथोचित ध्यान आ ष्ट नहीं हुआ है। अदालतों का सम्बन्ध सर्वसाधारण से है। अतः इनकी कार्यवाहियाँ उसी भाषा में होनी चाहिये जिसे अधिक से अधिक लोग बोलते हों तथा लिखते पढ़ते हों। इस प्रान्त में हिन्दी बोलनेवालों की संख्या बहुत अधिक है। ८६ प्रतिशत से कहीं अधिक जनसंख्या हिन्दुओं की है और वे प्रायः सब हिन्दी ही बोलते हैं और लिखते पढ़ते हैं। गाँवों में प्रायः मुसलमान भी हिन्दी ही बोलते हैं। प्रान्त के स्कूलों में हिन्दी पढ़ने वाले छात्रों की संख्या, हिन्दी के समाचार पत्रों, पत्रिकाओं तथा प्रति वर्ष के नये नये ग्रन्थों के प्रकाशन की संख्या की ओर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी ही इस प्रान्त की प्रतिनिधि भाषा है। इस समय को तो छोड़ दीजिये, आप ८५ वर्ष पूर्व की सन् १८४४-४५ की प्रान्तीय डाइरेक्टर जेनेरल या शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर की सन् १८७७-७८ की रिपोर्ट देखिये। उससे यह स्पष्ट हो जावेगा कि 'हिन्दी ही इस प्रदेश की देश भाषा है।' ऐसी स्थिति में प्रान्त की प्रतिनिधि भाषा हिन्दी का प्रान्तीय अदालतों में इतना असम्मान क्यों हो रहा है यह प्रश्न विचारणीय हो जाता है।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम भाग में प्रान्तीय अदालतों की भाषा फारसी थी। परन्तु इससे यूरोपीय शासकों तथा प्रान्तीय जनता को अनेक प्रकार की अड़चनें पड़ती थीं। फल स्वरूप सरकार ने फारसी के स्थान पर अंग्रेजी और देशी भाषाओं में अदालतों का काम करने की घोषणा की। युक्त प्रान्त में हिन्दी-उर्दू का प्रश्न था, अतः यह विचारणीय हुआ कि अदालतों का काम हिन्दी में हो या उर्दू में? अंग्रेजी सरकार ने सन् १८३७ ई० में उर्दू को

अदालती भाषा बना दिया। तब से आज तक अदालतों में उर्दू का अखण्ड साम्राज्य बना हुआ है। हिन्दुओं ने सरकार के इस निर्णय पर बड़ा भारी असन्तोष प्रकट किया परन्तु इन बातों को सुनता कौन है? सरकार उस समय टस से मस न हुई। बाद में पूज्य पं० मदन मोहन मालवीय प्रभृति सुप्रतिष्ठित सज्जनों के सतत उद्योग तथा अध्यवसाय से १८८९ ई० में सरकार ने हिन्दी को भी अदालती भाषा मान लिया। परन्तु इस बीच में उर्दू ने अदालती दुनिया में अपना साम्राज्य ऐसा सुदृढ़ कर लिया कि हिन्दी के कारण उसकी कोई विशेष क्षति नहीं हुई और वह आजतक अदालतों में सम्मानित हो रही है।

लगभग १०२ वर्षों से अदालतों का काम उर्दू में होता आ रहा है। इस आधार पर हिन्दी के साथ अन्याय करना कदापि उचित नहीं कहा जा सकता। केवल प्राचीनता के आधार पर अनुचित कार्य का समर्थन नहीं होना चाहिये। भारतीय कई सौ वर्षों से पराधीन हैं अतः वे स्वतन्त्र भी नहीं हो सकते, यह भी क्या कोई तर्क है? किसी का समर्थन या विरोध इस आधार पर होना चाहिये कि उससे जनता को कहाँ तक लाभ है और कहाँ तक हानि। उर्दू के विरोध में सब से बड़ी बात यह है कि इसमें प्रान्त के बहुत ही थोड़े लोग लिखते पढ़ते हैं। अधिकांश जनता उर्दू नहीं जानती। अतः लोगों को न्याय कराने में बड़ा ही कष्ट होता है। उर्दू में अर्जी लिखनेवाले अर्जीनवीस जनता से बड़ा अनुचित लाभ उठाते हैं। पैसे खूब लेते हैं पर काम अच्छी तरह नहीं करते। अदालती कागजों के उर्दू में होने के कारण अधिकांश लोग उन्हें पढ़ भी नहीं सकते और मुकद्दमों की पैरवी तक नहीं कर सकते। फलस्वरूप वे मुकद्दमें हार तक जाते हैं।

यद्यपि अधिकांश जनता को उर्दू के कारण कष्ट हो रहा है तथापि अदालतों में हिन्दी प्रचलित नहीं हो सकी है। इसका कारण यह है कि प्रान्त के बड़े बड़े लोगों का काम अंग्रेजी से चलता हैं। मुसलमानों को हिन्दी से कोई प्रयोजन ही नहीं है। उनका काम उर्दू से चलता है। मध्यम श्रेणी के हिन्दुओं का काम किसी तरह अंग्रेजी और उर्दू से चलता है। बच गये शहरों के छोटे छोटे लोग तथा ग्रामीण भाई। इन्हीं को हिन्दी की आवश्यकता है। परन्तु इन बेचारों के कष्टों को सुनता कौन है? हमें दुःख है कि

अदालतों में काम करने वाले अधिकांश वकील और मुख्तार हिन्दी प्रेमी हैं। ये लोग हिन्दी का सम्मान क्यों नहीं कर रहे हैं ? हिन्दी में कार्य प्रारम्भ करने पर संभव है पहले कुछ लोगों को कष्ट हो परन्तु यह निश्चय है कि थोड़े दिनों के बाद देव नागरी लिपि की वैज्ञानिकता तथा सर्व गुण सम्पन्नता के कारण न्यायालयों में काम करने वाले सभी लोगों को विशेष सुविधा प्राप्त होगी।

इस वर्ष काशी के अधिवेशन में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का ध्यान इस तरफ़ आकृष्ट हुआ है। हमें पूर्ण विश्वास है कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन अदालतों में हिन्दी के सम्मान के लिये पूर्ण प्रयत्न करेगा तथा न्यायालयों में प्रेक्टिस करने वाले हमारे वकील और मुख्तार भाई भी हिन्दी भाषा की उन्नति के लिये यथोचित सहयोग प्रदान करेंगे। यह संभव है कि जो लोग विशेष वृद्ध हैं और जन्म भर से उर्दू में काम करते आ रहे हैं उनका सहयोग न मिले परन्तु जो नवयुवक हिन्दी प्रेमी हैं, वे तो निस्सन्देह हिन्दी भाषा और साहित्य की उन्नति के लिये पूर्ण रूप से उद्योग कर सकते हैं।

लेखकों और विद्वानों से

हिन्दी साहित्य सम्मेलन की मुखपत्रिका 'सम्मेलन पत्रिका' आप के पास जाती रहती है। हम चाहते हैं कि 'सम्मेलन पत्रिका' ठीक समय पर प्रकाशित हो तथा साहित्यिक पाठ्य-सामग्री तथा प्राचीन और वर्तमान काव्यों की आलोचनाओं, प्रगतिशील साहित्यिक और खोजपूर्ण लेखों से यह युक्त हो। ऐसी दशा में आप ऐसे विद्वानों की सहायता की आवश्यकता है। इसलिये शीघ्र ही कोई श्रेष्ठ साहित्यिक लेख भेजने का कष्ट कीजिये। साथ ही आप से निवेदन है कि अपने इष्ट मित्रों तथा हिन्दी प्रेमियों को इसका ग्राहक भी बनवाइये। यदि ग्राहक-संख्या पर्याप्त हो गई तो पृष्ठ संख्या और पाठ्य सामग्री में भी वृद्धि की जा सकेगी।

—साहित्य मंत्री

कविता और आचार

[लेखक—श्री शिवप्रसाद अग्रवाल एम० ए०, 'साहित्य-रत्न']

इधर कुछ दिनों से साहित्य-क्षेत्र में 'कलावाद' का बोलवाला है। नवयुवक साहित्यिक इसके अंधभक्त हो रहे हैं। जिसे देखिए वह यही कहता हुआ पाया जाता है कि 'कला कला ही के लिए है,' 'कला का उद्देश्य कला ही है।' इस प्रमाद की भद्दी नकल पाश्चात्य साहित्य विशेषकर अँगरेज़ी-साहित्य से हुई है। यूरोप में कला के सिद्धान्त शीघ्र बदलते रहते हैं। डा० ब्रैडले ने इंगलैण्ड में कला-सम्बन्धी प्राचीन सिद्धान्तों का अंत करके अपना नया सिद्धान्त 'कला कला ही के लिए' प्रतिपादित किया। इसके फलस्वरूप लोग कला और जीवन के क्षेत्रों को पृथक्-पृथक् समझने लगे। वे समझने लगे कि कला और जीवन में कोई सम्बन्ध नहीं हैं। कला जीवन की समस्याओं का विवेचन नहीं करता और उसमें जीवन के सिद्धान्तों का समावेश नहीं होता। उसमें सदाचार का कोई स्थान नहीं है। यदि किसी कला में जीवन की दशाओं का उद्घाटन हो तो वह सच्ची कला नहीं। कला किसी साध्य का साधन नहीं। उसका साध्य वही है। इस प्रकार 'कलावाद' द्वारा काव्य और जीवन के सम्बन्ध-विच्छेद के प्रयत्न हुए हैं। इस प्रकार के विचारों का दुष्परिणाम काव्य पर भी अन्य कलाओं की भाँति पड़ा है। कविगण अनूठी उक्तियों को ही काव्य समझने लगे हैं। उनकी रचनाएँ जीवन और जगत से उदासीन होने लगी हैं। काव्य में जीवन का विश्लेषण न रह कर सूक्तियों की भरमार होने लगी है। काव्य में जीवन के पहलुओं का विवेचन न होकर कल्पना के साथ खिलवाड़ होने लगा है। यहाँ तक कि प्रबन्ध-काव्य का स्थान मुक्तक ने ले लिया है। अब प्रबन्ध-काव्य के लिए क्षेत्र ही नहीं रह गया है। जीवन से भिन्न सामग्री द्वारा प्रबन्ध-काव्य की रचना हो ही कैसे सकती है? वर्तमान कालीन कविता में ये प्रवृत्तियाँ स्पष्टतः दृष्टिगत हो रही हैं। समालोचकों की दृष्टि इस प्रकार के काव्य-प्रवाह पर पड़ने लगी है, यह हर्ष का विषय है।

क्या काव्य जीवन से अलग रह सकता है? क्या काव्य कल्पना की बेपर

की उड़ान भर कर ही काव्य कहला सकता है ? क्या काव्य उक्ति का अनूठा-पन मात्र है ? कवि एक जीवधारी व्यक्ति है। उसका जो कुछ अनुभव होता है वह जीवन से ही होकर आता है। उसी अनुभव को वह काव्य-रूप में समाज को भेंट करता है। काव्य का जगत या जीवन से भिन्न कोई सत्ता नहीं है। उसके द्वारा जीवन की भिन्न-भिन्न समस्याओं का विवेचन और दशाओं का उद्घाटन किया जाता है। वास्तव में काव्य कवि के जीवन का चित्र है जिसमें जीवन सम्बन्धी बातों पर विचार प्रकट किया जाता है। हाँ, इतना अवश्य है कि सामान्य जीवन में कवि के व्यक्तिगत जीवन का लय हो जाता है।

जीवन का विवेचन करता हुआ, उसका विश्लेषण करता हुआ, कवि जीवन के भीतरी सिद्धान्तों की व्याख्या से अपने को पृथक नहीं कर सकता। किसी-न-किसी प्रकार की जीवन से सम्बन्धित शिक्षा वह देता ही है। जहाँ जीवन का विवेचन रहेगा वहाँ किसी-न-किसी प्रकार के नैतिक सिद्धान्त रहेंगे ही। नीति को जीवन से अलग नहीं किया जा सकता। अतः नीति को काव्य से अलग नहीं किया जा सकता। मैथ्यू आर्नल्ड नामक एक सुप्रसिद्ध अँगरेज़ समालोचक कहता है—

"कविता-वस्तुतः जीवन की आलोचना है। कवि का महत्व अपने विचारों को सुन्दर और सशक्त ढंग से जीवन व्यतीत करने के प्रश्न पर लागू करने में है। वह कविता जो नीति का विरोध करती है जीवन का भी विरोध करती है। वह कविता जो नीति से उदासीन रहती है जीवन के प्रति भी उदासीन रहती है।"

कविता मानव-हृदय की अनुभूति है और मानव-हृदय में ही पहुँचाई जाती है। अतः उसका और आचार का नित्य सम्बन्ध होना वांछनीय है। इन दोनों की घनिष्ठता के बिना लोकोपयोगी कविता का निर्माण नहीं किया जा सकता। जो कवि अपनी रचना में आचार सम्बन्धी बातों का उल्लेख नहीं करता, जो कवि समाज को सन्मार्ग पर लाकर उसके उद्धार का प्रयत्न नहीं करता, जो कवि अपनी कविता में नीति और मर्यादा का प्रतिपादन नहीं करता, वह और क्या करता है ? उसकी रचना का अस्तित्व ही किस लिए है ? मर्यादा और आचार का बहिष्कार करके क्या कविता लोक का उपकार

कर सकती है ? पवित्र भावों का संचार करना श्रेष्ठ कविता का कर्तव्य है। जो कविता आचार की शिक्षा नहीं देती वह अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकती। उसे कुछ समय पश्चात् संसार से मिट जाना होगा। जब वह समाज का कुछ हित-साधन ही नहीं करेगी तो समाज उसकी रक्षा क्यों करेगा ? समाज को आचार की नितान्त आवश्यकता होती है। नैतिक नियमों के पालन बिना समाज का कार्य नहीं चल सकता। प्रत्येक समाज में कुछ-न-कुछ नियम रहते हैं जिनका पालन करना उस समाज के प्रत्येक व्यक्ति को आवश्यक होता है। यहाँ तक कि चोरों और डाकुओं के समाज में भी आचार का स्थान है। वे लोग सर्व-साधारण के साथ भले ही नैतिक व्यवहार न करें पर आपस में तो नैतिक नियमों को बर्तते ही हैं। चोरी या लूट के धन-विभाजन में वे न्याय से काम लेते हैं। एक दूसरे की वस्तु को कभी नहीं चुराते। कहना न होगा कि सामान्यतः जीवन में सर्वत्र आचार या नीति का नियंत्रण देखा जाता है। जहाँ उसका उल्लंघन हुआ जीवन जीवन नहीं रह जाता। नीति-रहित जीवन विष के समान समाज का घातक होता है। तब यह कैसे सहन किया जा सकता है कि कवि अपने काव्य में दुराचार का प्रतिपादन करे, हमें गंदी बातों का पाठ पढ़ावे, हमारा आचार भ्रष्ट करे ?

कविता का उद्देश्य, जैसा कि हमारे पूर्वज आचार्यों ने बतलाया है, लोकोत्तर आनन्द की अनुभूति कराना है। काव्य-प्रदत्त आनन्द को उन्होंने, 'ब्रह्मानन्द सहोदर' कहा है। क्या 'ब्रह्मानन्द सहोदर' की अनुभूति ऐसे काव्य से हो सकती है जिसमें नीति-रहित जीवन का चित्र खींचा गया हो ? इस प्रकार का आनन्द तो उसी काव्य में उपलब्ध हो सकता है जिसमें मानव-जीवन का आदर्शमय लोकोपयोगी भव्य रूप खड़ा किया गया हो, जिसमें आत्मा को उत्तरोत्तर उच्चता की ओर अग्रसर करने के साधन जुटाए गए हों, जिसमें अनुकरणीय सिद्धान्तों की उद्भावना की गई हो। वही काव्य है। काव्य की कसौटी पर वही खरा उतरता है। ऐसे काव्य का रचयिता अपना उद्धार तो करता ही है परन्तु साथ ही साथ समाज का भी उद्धार कर लेता है। जिस कार्य के सम्पादन करने में हजारों उपदेशक कृत-कार्य नहीं होते, उसको वह अकेला ही पूरा कर लेता है। गोस्वामी तुलसी-दास ऐसे ही काव्य-प्रणेता थे। उनके 'रामचरित मानस' में मानव-जीवन

२

का सर्वोत्कृष्ट रूप देखने को मिलता है। नीति और आदर्श के साथ काव्य का भव्य रूप मन को मुग्ध करने वाला है। मानस के द्वारा हिन्दू-जाति का कितना उपकार हुआ है यह बतलाना शब्द की शक्ति के बाहर है। यदि गोस्वामी जी अपने काव्य में आचार और मर्यादा का स्वर्ण-संयोग न कराते तो क्या यह उपकार संभव था ? काव्य को जीवन और शक्ति प्रदान करने वाला रसायन आचार ही है।

इस सम्बन्ध में कवि को एक बात का ध्यान रखना आवश्यक है। आचार-सम्बन्धी सिद्धान्त मानव-जीवन की स्वाभाविकता न छीन ले। ऐसा न हो कि जिन आदर्शों का कवि अपने काव्य में प्रतिपादन करे उन तक पहुँचना मनुष्य असंभव समझे। यदि ऐसा होगा तो काव्य मानव-समाज का कुछ भी हित न कर सकेगा।

इसके अतिरिक्त यह भी नहीं भूल जाना चाहिए कि आचार-शिक्षा काव्य के अन्यान्य उपयोगी एवं आवश्यक तत्त्वों को गौण न बना दे। जो कुछ कहा जाय वह भाव और कल्पना की लपेट में कहा जाय। जो कुछ कहा जाय वह जीवन की मार्मिक दशाओं का प्रत्यक्षी-करण करते हुए कहा जाय। उसमें शुष्कता अथवा नीरसता न हो। वह हृदय की चुटकी लेता हुआ उसमें प्रवेश कर जाय। इसी में काव्य की सफलता है, इसी में काव्य का महत्व है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो गया होगा कि "काव्य का लक्ष्य जीवन के मार्मिक पक्ष को गोचर रूप में लाकर सामने रखना है, जिससे मनुष्य अपने व्यक्तिगत संकुचित घेरे से अपने हृदय को निकाल कर उसे विश्व-व्यापिनी अनुभूति में लीन करे।" इसके भीतर जीवन के आदर्श भी आ जाते हैं, क्योंकि नीति के आदर्शों के अवलम्बन बिना आत्मा विश्वात्मा में लीन होने की क्षमता नहीं प्राप्त कर सकती। अतः स्पष्ट है कि काव्य और आचार का नित्य और घनिष्ठ सम्बन्ध है। काव्य को आचार या नीति से अलग नहीं किया जा सकता। हिन्दी के वर्तमान कवियों को पश्चिमवालों की नकल नहीं करनी चाहिए। इसी में उनका और हिन्दी-साहित्य का कल्याण है।

———

डलमऊ का कवि-घराना

[लेखक—पण्डित देवीदत्त शुक्ल]

रायबरेली जिले में गंगा के दाहिने किनारे पर डलमऊ नाम का एक कस्बा है। यह एक ऐतिहासिक जगह है। यहाँ एक पुराने किले का टीला है, जिसमें प्रारम्भिक बौद्ध कालीन दीवार का अवशेष अब भी मौजूद है। इससे सिद्ध होता है कि यह स्थान कम से कम दो हजार वर्ष पुराना है। मुसलमान-काल के भी काफी चिह्न यहाँ पाये जाते हैं और उस काल में यह जगह बहुत अधिक प्रसिद्ध रही है। फिरोजशाह तुगलक ने अपने समय में यहाँ एक मदरसा खोला था। उनके समय में यहाँ दाऊद मुल्ला नाम के हिन्दी के एक कवि थे। मुल्ला साहब मलिक मुहम्मद जायसी से पहले हुए थे। उन्होंने 'चाँद रानी' नाम की हिन्दी में एक कथा-पुस्तक लिखी थी। वह पुस्तक अब नहीं मिलती है। उसके दो पद्य 'अवध गजेटियर' में दिये गये हैं, वे पद्य ये हैं—

वर्ष सात सै हते उनासी, तहिआ यह कवि सरस अमासी।
साह फिरोज दिहली सुलतानू, ज्योना शाह वजीर भा खानू।
डलमउ नगर बसै नौरंगा, ऊपर कोट तरे बह गंगा।
धर्मी लोग बसे भगवंता, गुन ग्राहक नागर चितवन्ता।

ऐसे डलमऊ नगर में ब्रह्म भट्टों का एक घराना रहा है, जो पिछले समय तक विद्यमान था। यद्यपि इस घराने के कवि नरहरि-घराने के कवियों जैसी प्रसिद्धि नहीं प्राप्त कर सके, पर उनका भी अपना महत्व था। खेद है, इस घराने के कवियों का विवरण क्रमपूर्वक नहीं प्राप्त है। इस घराने के पहले कवि छेम थे। इनके पहले के कवियों के नाम नहीं मिलते हैं। छेम शिवसिंह सरोज में हुमायूँ के दरबार के कवि लिखे गये हैं। यदि ऐसा है तो वे नरहरि के समकालीन ठहरते हैं। 'सरोज' में इनका निम्न पद्य उदाहरण-स्वरूप दिया गया है—

थरनि थरनि थरहरत डरनि रथ तरनि पलट्टेहु।
धूम धाम ध्रुव-लोक-सोक सुरपति अति पट्टेहु॥

गवन रहित सम्मीर नीर नद नदी निघट्टेहु।
करनि निकरि डर चिकरि कहरि खैवर परच्चट्टेहु॥
हिमगिरि सुमेर कैलास डिगि जब हहरि हहरि संकर हँस्यो।
कवि 'छेम' कोपि हजरतअली जुल्फकार कम्मर कस्यो॥

हुमायूँ के दरबार में होने से छेम का कविता-काल १६ वीं सदी का मध्य-काल सिद्ध होता है। छेम के बाद उनके घराने में कौन-कौन कवि हुए, इसका कोई पता नहीं लगता।

छेम के बाद उनके घराने में १९ वीं सदी के मध्य में बादेराय हुए। 'सरोज' में उनका उत्पत्तिकाल १८८२ विक्रमी दिया गया है और उदाहरण-स्वरूप उनका निम्न पद्य उद्धृत किया गया है—

वही ज्ञान ज्ञाता वही सुमति को दाता,
करामात दरसाता अंग व्याल लपटाय कै।
गरे मुण्डमाला कंठ कालहू को काल,
ससि सोहत है भाल रीझै डमरू बजाय कै।
ऐसे समै महिमा कहै को महराज जू की,
'बादेराय' गायो गुन कवित बनाय कै।
सकल सुमति सुख सम्पति सहित दै कै,
साँकरे में संकर सहाय करो आय कै॥

मिश्रबन्धु विनोद में लिखा है कि बादेराय लखनऊ के राजा दयाकृष्ण के आश्रय में रहते थे। बादेराय के सम्बन्ध में ठाकुर मानसिंह ने हमें लिखा है—इनके जन्म-काल इत्यादि का कोई पता नहीं चलता है। मिट्ठीलाल इनके पुत्र थे। इनके वंशज पथवारीदीन स्टाम्प-वेन्डर अब भी लखनऊ में मौजूद हैं। कहा जाता है कि इनका पुराना घर गिर गया और जो पुस्तकें इत्यादि थीं उसी में रह गईं। पता लगाने से केवल निम्नलिखित कवित्त मिल सका, जो सेवा में प्रेषित है—

जौ लगि मुनिन्द इन्दु सहित गिरन्द सिन्धु,
जौ लगि फणिन्द भुव भार धरिबो करै।
जौ लौं धनाधीस गन ईस औ गिरीस जौ लौं,
जौ लौं सृष्टि ईस सदा सृष्टि भरिबौ करै॥

कहै 'बादेराय' मारतंड मारकंड जौलौं,
जौ लौं व्योम गंग सुर लोक ढरिबो करै।
वासव की साज महाराज श्री जगतसिंह,
सहित कुटुम्ब तौ लौं राज करिबौ करै॥

मिहीलाल 'मलिन्द'---ये छेम के घराने के बादेराय के पुत्र थे। इनका जन्म-संवत् 'सरोज' में १९०२ संवत् दिया है। 'विनोद' में लिखा है कि ये गौरा (रायबरेली) के तालुकदार भूपालसिंह के आश्रय में रहते थे। इनका एक पद्य इस प्रकार है—

सोहै दण्ड चण्ड जे अखण्ड महि मण्डल में,
दारिद विहंडन में धीरज धरात है।
देस औ विदेस नर-ईसन सों भेट करि,
करि सरवर नेक नेक ठहरात है।
गिलिम गलीचा पदमालय समूह सदा,
घोड़े पील पालकी हमेश दरसात है।
भनत 'मलिंद' महराज श्री भुआलसिंह,
तेरी भागि देखे ते दरिद्र भागि जात है। (सरोज)

पञ्चम—ये भी छेम के घराने के थे। 'सरोज' में इनका जन्म-संवत् १९२४ दिया है। 'विनोद' में इनका रचना-काल १९२४ बताया गया है जो ठीक जान पड़ता है। 'सरोज' में इनकी रचना का एक उदाहरण दिया गया है—

उज्वल उदारताई गावत पुराने लोग,
जोग करिबे को जोगी बसत महिन्द्र हैं।
रत्नाकर को फनिन्द देत न अबेर राख्यो,
भाख्यो पार पावत न महिमा फनिन्द्र हैं।
'पंचम' सुकवि धरा धरे उपकार हेत,
चित्त कथा राम की बसत कहा इन्द्र है।
शम्भु के बसे ते देवगन के लसे ते आजु,
सिवगिरि सोहै गिरिगन को गिरिन्द्र है॥

हरि प्रसाद 'चोवा'—ये भी छेम के घराने के थे। इनका रचनाकाल १९३० संवत् है। सरोजकार के समय में ये वर्तमान थे। उन्होंने लिखा है कि

ये असोथर के राजघराने के पुराने कवि हैं। थोड़े दिनों से होलपुर में रहते हैं। इनकी रचना का एक उदाहरण यह है—

पालत ये निगमागम सेतु अनीत कै पीत न दण्डन हारे।
धर्म धुरन्धर दानि सिरोमनि बैरिन के मद खण्डन हारे।
सुद्ध मनो कुल कीरति मंजु दसौ दिसि देसन मण्डन हारे।
वीरबली सिवसिंह नरेस उदण्ड दोऊ भुजदण्ड तिहारे॥
(सरोज)

इस घराने के अन्तिम कवि अजदत्त हुए। इनके दर्शनों का सौभाग्य हमें भी हुआ है। इनके सम्बन्ध में ठाकुर मानसिंह ने हमें यह विवरण लिख भेजा है—

अजदत्त का नाम केशव प्रसाद ब्रह्म भट्ट था। इनके पिता का नाम लल्लू था। लल्लू के पिता शिवदीन थे और शिवदीन के पिता मिहीलाल थे, जिनका नाम ऊपर दिया है। कहा जाता है कि इनके वंश में कोई न कोई कवि होता ही चला आया है, परन्तु कोई कविता नहीं मिल सकी। अजदत्त जी लगभग संवत् १९३२ विक्रम में पैदा हुए। १३-१४ वर्ष की ही आयु में इनके पिता का देवलोकवास हो गया और घर का भार इन्हीं पर पड़ गया। एक छोटा भाई भी साथ था जो अब स्टाम्प-वेन्डर है (पथवारीदीन*) और आप थे नेत्र-विहीन। तीन ही वर्ष की आयु में आँखें उठीं, जिससे आँखें जाती रहीं। इनका लिखा 'पथवारी अष्टक' बेती कल्यानपूर में है। उससे पता लगता है कि इन्होंने १९४८ वि० में काव्य करना आरम्भ किया। कोई ग्रन्थ नहीं रचा, पढ़े ही न थे। परन्तु सब लोग यही जानते थे कि पढ़े हुए हैं। पाहो (रायबरेली) के तालुकेदार ठाकुर राजेन्द्रबख्श के यहाँ रहते थे। इनका सम्वत् १९६४ में देहान्त हो गया।

अजदत्त जी के जो पद्य मिल सके हैं वे भेज रहा हूँ—

जै गनेस कलि हरन विपति भंजन सुखदायक।
सिद्धि करन भय हरन उमा सुत हौ सब लायक॥

---

*'निराला' जी ने इन्हीं का अपने 'कुल्ली भाट' में परिचय दिया है।

तन बिसाल गज बदन भाल पर धरे सुधाकर।
भुजा चारि अति ललित तिलक सोभित ललाट पर ॥
विद्या निधान सुभ के सदन दास जानि बुधि दीजिये।
'अजदत्त' कहै करजोरि कै लम्बोदर सुनि लीजिये ॥१॥

प्रथम गनेस के कमलपद बन्दन कै,
बंदत हौं ईश के चरण सीस नाय कै।
बन्दौं अवधेस औ दिनेस सेस सारद को,
बन्दौं मैं सुरेस के चरन उर ध्याय कै।
बन्दौं कमलासिन उमा के पद बन्दन कै,
बन्दौं मैं पवन सुत हिये ठहराय कै।
बन्दौं अज नारद को बन्दौं मैं बशिष्ठ आदि,
बन्दौं बिस्वामित्र सनकादि आदि गाय कै ॥२॥

पन तीन तो बीति गये सुख में,
पन चौथे में तो सब कार तजो।
परवार ना साथ में जाई कोऊ,
हमरी सिख मानि ले मूढ़ अजो।
धन धाम न काज में आई कोई,
'अजदत्त' कहै यह साज सजो।
तप जाय कै कीजै कहूँ बन में,
अब तो सब छांड़ि कै राम भजो ॥३॥

बद्रीनाथ भैरोनाथ ललित केदारनाथ,
जगन्नाथ बैजनाथ विश्वनाथ बालसाथ।
मंजु जवरेहीनाथ रुचिर उंकारनाथ,
द्वारिका के नाथ गदा पद्म संख चक्र हाथ।
भनै 'अजदत्त' सिद्धिनाथ उदैनाथ मिलि,
परम त्रिलोकीनाथ गावत हौं गुणगाथ।
उमिरि दराज चाहौं देत हौं अशीष अस,
ऐ जै नाथ करुना करैं तिहारी शिवनाथ ॥४॥

ग्रीषम प्रचंड चंदापुर को महीप तेज,
संकरबकस राना पावस मनंतु है।
कोविद कवीन को अनन्त बरषंत दान,
भूप शिवपाल सिंह सरद हसंत हैं।
भनै 'अजदत्त' गौरापति है हेमंत चारु,
रामपाल शिशिर लखे अहि कपंत हैं।
शत्रुन हनन्त पुण्य पूरन करंत नृप,
राजेन्द्रसिंह बनो मानो बाँकुरो बसंत है ॥५॥

बढ़त अखंड पाप देख्यो पृथीमंडल में,
आय दशरत्थ जू के गोद ही में ठटिगे।
धनुष को तोर्‌यो मिथिलेश जू के राख्यो प्रण,
ऋषि मुनि देवन के दुख दूरि हटिगे।
भनै 'अजदत्त' लीलाकारी भगवान सदा,
याही हेतु पाप कै संयोग सब डटिगे।
जगत मातु जानकी को छलि दसकंध ल्यायो,
या ही पाप कीन्हे ते अनेक पाप कटिगे ॥६॥

साले काम सायक समीर सरसाले आले,
ताले देत दादुर मिसाले मोरवान के।
चातक रसाले पीव कहत कसाले होत,
ज्वाले विरहागिन धुकाले धुरवान के।
भनै 'अजदत्त' नदी नाले उमड़ाले सब,
लतिका बिसाले रसवाले जोरवान के।
बिना नन्द लाले ये बिहाले करडाले वाले,
गरजैं घनाले काले माले मेघवान के ॥७॥

खात मुकताहल मराल हैं प्रसिद्ध,
मानसर में रहत नहीं ताकत तलैया हैं।
जानि बैस बंस में सपूत शिरमौर तुम्हें,
छंद के प्रबंध जोरि कीरति करैया हैं।

राजन के राज महराज राजेन्द्रसिंह,
या ते 'अजदत्त' सरणागत रहैया हैं।
चाकर तिहारे हम आँकर सदा के कवि,
साँकर परे हो नहीं काँकर चुनैया हैं ॥८॥

शौक शऊर शुदम दिलनम,
हर दम गुलजार बजार शुकूर।
सनाय सिफत करदन हररोज,
बरायद मकसद वक्त जरूर।
भनै 'अजदत्त' वहार हिनौज,
महोदर शाहजहाँ मशहूर।
रहे सर कायम ताज व तख्त,
खुदा बख्शै फरजन्द हुजूर ॥९॥

वखसत मौजें महाराज राज ऐन्द्रसिंह,
मुल्क दर मुल्क खल्क चश्म वर दीदा हो।
इल्म दर कद्र शौक साहब खोदासिनास,
बदन बवर्फ आफताब शशु नीदा हो।
गुफ्त 'अजदत्त' जोर जालिम रकीबों पर,
दीद में हुजूर रूये बश्म शरमीदा हो।
हिल गये सीने गर्क गाहिब पसनि अर्क,
मिस्ट सीम आप दीदार चूँ कसीदा हो ॥१०॥

वीरन में वीर रनधीरन में रनधीर,
छत्रिन में छत्र छत्रधारिन में छत्र धर।
ज्ञानिन में ज्ञानवारौ दानिन में दान वारौ,
ध्यानिन में ध्यानवारौ सौगुनो विहद बर।
कहै 'अजदत्त' विद्यावानन में विद्यवान,
आज विद्यवानन में विद्या को विनोद घर।
राजसर हंस सो करत न्याय नीति भूप,
राजा इन्द्र सिंह हैं प्रसंस बैस वंसवर ॥११॥

संजम अचार योग जप-तप दान करि,
पूजा पाठ ज्ञान ध्यान नेम व्रत धारे रहा।
व्याकरण काव्य कोश वैद्यक पुराण वेद,
नीके न्याय नीति धर्म कर्म अनुसारे रहा।
भनै 'अजदत्त' पद पूजत नरेश वहु,
परम प्रवीन प्रेम पूरन पसारे रहा।
राजगुरु चंडिकासहाय महाराज द्विज,
राजा महाराज राज-काज को सँभारे रहा ॥१२॥

इनके सिवा डलमऊ में और भी कवि हो गये हैं, परन्तु उनमें से दो कवियों का कुछ पता लग सका है। उदाहरण के लिए लालन दास को लीजिए। इनका समय 'सरोज' में संवत् १६५२ दिया गया है। इनके सम्बन्ध में ठाकुर मानसिंह ने हमें लिखा है--

आप कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे और मोहल्ला चौरासी के रहने वाले थे। डलमऊ ही में पैदा हुए थे और साधु-जीवन बिताकर लगभग १८९० विक्रम में परलोकवासी हुए। इनका कोई वंशज अब डलमऊ में नहीं है, अतएव जन्म काल तथा पिता का नाम किसी को नहीं मालूम है। डलमऊ के कुछ लोग इनको अपना कुलगुरु मानते हैं और इनकी खड़ाऊँ अब भी डलमऊ में हैं जो पूजी जाती हैं। मोहल्ला शेरन्दाजपुर में इन्होंने एक मन्दिर बनवाया था जो गिर गया था। अब उसका जीर्णोद्धार हो रहा है। ......। लोगों को उनकी कवितायें कंठाग्र हैं। दो-चार नमूने नीचे दिये जाते हैं--

मंडापूर मियाँ का भेला चौरासी अविनासी है।
बहुत दिना चौहट्टा भरमा अब शरन्दाजपुर बासी है॥
सुरति जंजीर प्रेम की डोरी गरे लागि मजबुत्ता है।
संत शिकारी सब सों यारी पर घर जाय न ढुकता है॥
जूठन खात अघात पेट भर परे पलँग पर सुत्ता है।
हाजिर रहत हुजूर रैन दिन 'लालन' हरि को कुत्ता है॥
दर दर भरमै पर घर सरसै बसत फिरै तरु रूखों के।
अपने घर बैठे जय सों ऐंठे दिल दाग न दूखों के॥

सिद्धपीठ डलमऊ नगर जहँ शोभित गंग किनारे हैं।
जहाँ राग सिरमौरन के जहँ हरि सुमिरन हरि न्यारे हैं॥
'लालन' जब ते एक नाम लिय उद्यम सकल बिसारे हैं।
हम भये गुलाम राम साहब के रमि रहो राम हमारे हैं॥
दालम ऋषि की दलमऊ, सुरसरि तीर निवास।
तहाँ दास 'लालन' बसैं, करि अकास की आस॥

सरोजकार ने इनका एक पद्य यह दिया है—

दीप कैसी जाकी जोति जगर-मगर होति,
गुलाबास बादर मैं दामिनी अलूदा है।
जाफरानी फूलन मैं जैसे हेमलता लसै,
तामैं उग्यो चन्द लेन रूप अजमूदा है।
'लालन जू' लालन के रङ्ग सी निचोर रँगी,
सुरँग मजीठ ही के रङ्गन जमूदा है।
बकि न बेहूदा लखि छबिन को तूदा ओय,
अतर अलूदा अङ्गना के अङ्ग ऊदा है॥

दूसरे कवि मान जी हैं। इनका नाम रामलाल और इनके पिता का नाम बलदेव था। आप कान्यकुब्ज ब्राह्मण (दुबे) थे। रहनेवाले थे लच्छी खेरा के जो सरेरी के परगने में है, पर ननहाल थी डलमऊ में। इनके नाना गङ्गापुत्र थे और यजमानी थी। इससे डलमऊ में ८ही वर्ष की आयु से आकर रहने लगे। लगभग सम्वत् १९१८ वि० में लच्छी खेरा में जन्म हुआ और १९६६ वि० में शरीरान्त हो गया। एक पुस्तक हस्तलिखित है जो इन्होंने १९५० वि० में लिखी थी। इनके पुत्र रामचन्द्र नामी हैं, जिनको 'लाल' भी कहते हैं। परन्तु इनको कविता का कोई विशेष शौक नहीं है। उक्त पुस्तक का अन्तिम अंश इस प्रकार है।

मची सुलंक हाइ हाइ जोर ज्वाल छाइ छाइ,
रामबाज धाइ धाइ रच्छ पच्छि भंजियो।
उड़ाइ कुंभ अस्त कै प्रहस्त को निरस्त कै,
समस्त जोर दस्त कैस क्रोध ह्वै बिसज्जियो।

अकंप नाद ब्रह्म भीख बीस बाहु गर्व पीस,
काटि मेघनाद सीस पास आय अजियो।
अजीत बंधुराम को सो जीति कै अजीत इंद्र—
जीत जीत नाम नाम पाय पाय गजियो॥

महेंद्र जीत मुंड काटि रत्त मारि भूमि पाटि,
लंक के कपाट फाट कीस जुध्ध पावली।
सुराति कौ संघारि कै नराति कौ पछारि कै,
निकुंभ कुंभ मारि कै विडारि राच्छसावली।
भनंत 'मान' इंद्रजीत लच्छन लसंत गर्व,
गर्ववंत गज्जि कै रजंत मर्कटावली।
बजंत व्योम दुंदुभी जंजंत पुष्प बृष्टि सो,
स्रिजंत दिव्य अस्तुतं समस्त देवतावली॥

गध्थनि अकध्थ समरध्थ दसरध्थ सुत,
मध्थन समध्थ दसरध्थ सुत मध्थिरन।
सद्धन नदहन नद अनहद बल,
सदल विरद अनबद जस गद गन।
मदलनि नदन मरद्दनि गरद करि,
रद दुर हुदल सुव छल मद दलन।
मान कवि रात्तजन ऋषिमन अत्तभव,
रत्त जय लत्तमन लत्त जय लत्तमन॥१५२॥

रत्त पति पत्त करि रत्त पति सत्त तब,
जस अत्त रिपु अत्तर निवत्तरन।
तत्तन विपत्तन विजत्तन प्रतित्त असु,
सुत्तनि मुपत्तिन समत्त करि अत्तपन।
मान कवि रत्त कपि रित्त दल रत्त,
अपरत्त क्रत पत्त बल भत्त हन यत्तगन।
रत्त कुल रत्त उर रत्तन विपत्त कर,
क्रत्त युत वत्त जन रत्त जय लत्तमन॥१५॥

(अमृतगति) जय जय लछमन लछमन, लच्छन रच्छ सखंड ।
जीत्यो सुरपतिजीत कँह, भंडि प्रधान प्रचंड ।
भंडि प्रधान प्रचंड प्रति भट दंड हुवन उदंड प्रति भय ।
दंड धृति भुजदंड हयबल बंड करषि कुदंड करि छय ॥
दंडस्सर लग गंडग्ज गिरि चंडक्कुपिन विहंड गज हय ।
तंड त्रिदश उमंड प्रगट अखंड ध्वनि ब्रह मंडज्जय जय ॥१५४॥

दोहा—जय जय धुन छावहिं गगन, गावहिं मङ्गलगान ।
बरसावहिं सुरमुनि सुमन, बरषावहि 'कवि मान' ॥१५५॥
जय जय सुर उच्चरहि वृष्टि, कुसमावलि सज्जहि ।
जामवंत हनुमंत अंगदादिक भट गज्जहि ।
इन्द्रजीत कँह जीति चल्यो, सौमित्रि हित्त करि ।
कट्ट सीस दशसीसनन्द, कपि-ईस-अग्रधरि ॥
जुग जोरि पानि 'कवि मान' कह, सीस आनि पद कंज मँह ।
कर जसहि गहो रनवीर वर मिल्यो धीर रघुवीर कँह ॥ १५६ ॥

जय लछिमन रनधीर वीर वीराधि वीर बर ।
जय उदंड भुजदंड चंड-कोदंड बाण धर ।
जय अमंद आनंद कंद खल फंद निकंदन ।
कृत वृंदारक वृंद चरन सुपकंद विवर्धन ।
जय जय समथ्थ दसरथ्थ सुत हथ्थ मथ्थ दसमथ्थ सुत ।
जन बानि मानि कवि मान सिर धरहु पानि वरदान युत ॥१५७॥

वृत्तिबोध पिंगल रच्यौ, भाषा अमर प्रकास ।
नरहरि लछिमन, चरित अरु हनुमत काव्य पचास ॥१५८॥
बान वेद वसु ससि मिती माघ सुदी गुरुवार ।
श्रीमन्मान्य कविन्द्र ने कीन्हो ग्रंथ उदार ॥१५९॥

इति श्रीमान कवि विरचितायाँ लक्ष्मण मेघनाद युद्ध वरनन् समाप्तम् ॥
चैत्र मासे शुक्ल पक्षे तिथौ चतुर्थ्यां दिन भौमवासरान्वितायां॥श्री संवत् १९५७
लिखित रामलाल उर्फ माना दुबे मुकाम लछई खेर ॥

इस लेख के तैयार करने में हम ठाकुर मानसिंह के विशेष रूप से कृतज्ञ हैं । ठाकुर साहब डलमऊ में पुलिस के सब इन्स्पेक्टर रहे हैं । उन्होंने हमारे लिए वहाँ के कवियों का विवरण संग्रह कर देने की कृपा की है ।

हिन्दी संसार

[लेखक—श्री जगन्नाथप्रसाद शुक्ल, आयुर्वेदपंचानन, संग्रह-मन्त्री]

आगरा नागरी प्रचारिणी सभा—आगरे की नागरी प्रचारिणी सभा धीरे-धीरे अपना कार्यक्षेत्र बढ़ा रही है। यों तो इसे स्थापित हुए २८ वर्ष हुए; किन्तु इधर १५-सोलह वर्षों में उसने अपनी अच्छी उन्नति की है। सभा के पास एक पुस्तकालय है, जिसमें सभी विषयों की पांच हजार से अधिक पुस्तकें हैं। नित्य पचास मनुष्य उससे लाभ उठाते हैं। एक रुपये मासिक चन्दे में पुस्तकें सभासदों (सभा के सभासदों को वार्षिक दो रुपया चन्दा देना पड़ता है) के घर भी पहुँचायी जाती हैं। पुस्तकालय में एक महिला विभाग स्थापित किया गया है, जिसमें महिलाओं के लिये उपयुक्त पुस्तकों का संग्रह किया गया है, कई पत्र-पत्रिकाओं का भी प्रबन्ध है और उनके लिये एकान्त कमरे का प्रबन्ध है। बालकों में पढ़ने की रुचि बढ़ाने के लिये एक बाल पुस्तकालय भी खोला गया है, इसमें बालकों के पढ़ने योग्य मनोरंजक और उपदेशप्रद सात सौ पुस्तकों का संग्रह हुआ है; उनके योग्य पत्र पत्रिकाएं भी रखी गयी हैं। इस विभाग में भी पचासों बालक नित्य आते हैं। प्रयाग-हिन्दी साहित्य सम्मेलन की परीक्षाओं की पढ़ाई की सुविधा के लिये सभा एक 'हिन्दी साहित्य विद्यालय' भी खोले हुए है; जिसमें प्रथमा, मध्यमा और उत्तमा की पढ़ाई होती है। साथ ही सरकारी विशेष योग्यता की शिक्षा का भी प्रबन्ध है। इस विद्यालय का परीक्षा फल ८२ से ९० प्रतिशत रहा करता है। प्रति वर्ष दो सौ विद्यार्थी भिन्न-भिन्न कक्षाओं में अध्ययन करते हैं। शिक्षा निःशुल्क होती है और विद्यार्थियों के उपयोग के लिये पुस्तकालय और छात्रालय भी है। एक सार्वजनिक वाचनालय भी सभा ने खोला है, जिसमें १०० पत्र-पत्रिकाएँ आती हैं। यहां पाठकों की संख्या प्रतिदिन ३०० तक पहुँच जाती है। अब सभा नगर के अतिरिक्त जिले भर में हिन्दी प्रचार के लिये चलते फिरते पुस्तकालयों का प्रबन्ध करना आरम्भ किया है। इन पुस्तकालयों से भी प्रति मास एक हजार पाठक लाभ उठाने लगे हैं। अभी २० केन्द्रों में काम हो रहा है। अदालतों में हिन्दी प्रचार के लिये सभा ने दीवानी कचहरी में एक

लेखक रख छोड़ा है जो विना कुछ लिये लोगों की दरख्वास्तें लिख दिया करता है। सभा ने एक अन्वेषण विभाग खोला है, जिसमें हस्त लिखित पुस्तकें और प्राचीन पत्र-पत्रिकाएं संग्रह की जाती हैं। उपयुक्त पुस्तकों को सभा प्रकाशित भी कर देती है। सभा प्रतिवर्ष एक नागरी सप्ताह मनाती है, जिसके द्वारा हिन्दी का प्रचार बढ़ाने का प्रयत्न किया जाता है। इस समय सभा के चार सौ सदस्य हैं। सभा के पास अपनी पर्याप्त भूमि है और उस पर भवन निर्माण का कार्य आरम्भ है। पुस्तकालय और वाचनालय के लिये भवन बन गया है। विद्यालय और छात्रालय के लिये अभी भवन की आवश्यकता है। जिसके लिये सभा दानी महोदयों से दान की आशा रखती है। हम सभा की सर्वथा सफलता चाहते हैं।

हिन्दुस्तानी की हठ——श्रीवेंकटेश्वर समाचार ने इस सम्बन्ध में एक लेख लिखा है जिसमें कहा गया है कि भारतीय कांग्रेस जब-जब अहिन्दुओं के सन्तोष विधानार्थ कोई कार्य करने पर उद्यत हुई है तभी तब भारत की सर्वश्रेष्ठ संख्यक जाति हिन्दुओं का अनिष्ट कर बैठी है और उनसे कोटि-कोटि हिन्दुओं को विषम मर्मवेदना हुई है। इसी तरह कांग्रेस के हिन्दी को हिन्दुस्तानी बनाने का यत्न भी अतीव कुफलप्रद प्रमाणित हुआ है। इस यत्न को देखकर सिवा थोड़े से अहम्मन्य कांग्रेसी हिन्दू-मुसलमानों के और कोई भी सन्तुष्ट नहीं हो सका है। जिन मुसलमानों के तुष्टिसाधनार्थ कांग्रेस अपनी राजनीति की वेदी पर हिन्दी भाषा की बलि चढ़ाने पर उद्यत हुई है, वह मुसलमान भी उसके इस कार्य से सन्तुष्ट नहीं। वह नहीं चाहते कि हिन्दुस्तानी के नाम से संस्कृत और अरबी फारसी शब्दों की खिचड़ी पका के उनकी प्यारी उर्दू का रूप बिगाड़ दिया जाय। उर्दू अवश्य ब्रजभाषा से बनायी गयी है, उसे मुसलमान अरब और फारस से नहीं लाये थे तथापि उसे इस प्रकार बनाने में मुसलमानों ने कई शताब्दी तक प्रयत्न किया है। इसी से वे समझते हैं कि कांग्रेस हिन्दुस्तानी की तलवार से उर्दू का गला रेत रही है। इधर हिन्दू भी घबड़ा रहे हैं कि इधर ५० साठ वर्षों में हमने जो हिन्दी का रूप बना पाया है वह हिन्दुस्तानी के पदार्पण-प्रसार से मिट्टी में मिल जाना चाहता है। क्योंकि हिन्दी में बिना क्रम और बिना प्रयोजन अरबी फारसी के शब्द भर देने से वह विकृत-कर्णकटु और भीषण दर्शन हो जायगी। सुन्दर

पद योजना द्वारा वही वाक्य मन्त्र का काम देता है किन्तु 'चाँद' या "महताव" चन्द्रदेव का असर कैसे ला सकेंगे। हमारी संस्कृति से सम्बन्ध रखने वाले यावत ग्रन्थ हिन्दी में हैं, तुलसी और सूरकी कृति हिन्दी में है। हिन्दी के हटाने और हिन्दुस्तानी के चलाने पर इन ग्रन्थों के साथ-साथ हिन्दू संस्कृति भी हिन्दुओं के हाथ से निकल जायगी। कांग्रेस निरी राजनीतिक संस्था होने के कारण किसी धर्म को माने या न माने; किन्तु धर्मप्राण हिन्दुओं के लिये उनकी संस्कृति ही उनका सर्वस्व है। ऐसी दशा में हमारी आन्तरिक कामना है कि कांग्रेस हिन्दुस्तानी प्रचार के अपने अनधिकार यत्न से सम्पूर्ण विरत हो। अन्यथा इसका जो विरोध होने लगा है—वह जैसे जैसे कांग्रेस अपनी भाषा संहारकारिणी नीति आगे बढ़ाने का यत्न करेगी वैसे ही वैसे यह विरोध प्रबल से प्रबलतर होता जायगा।

साहित्यसेवियों से—मध्यप्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के पण्डित भालचन्द्रराव तैलंग ने लिखा है कि छन्द प्रभाकर के प्रणेता और रीति तथा अलंकार ग्रन्थ के रचयिता बाबू जगन्नाथप्रसाद 'भानु' कवि के रचनात्मक कार्यों का गौरव करके उनके प्रति श्रद्धाञ्जलि समर्पित करने की आवश्यकता है। इसी को दृष्टि में रख रायपुर के प्रान्तीय सम्मेलन ने पूजा-भावना और साहित्यिक-जागृति को ध्यान में रख कुछ प्रस्ताव पास किये हैं। सम्मेलन का प्रस्ताव है कि भानु जी और व्याकरण प्रणेता पण्डित कामता प्रसाद गुरु के चरणों में अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पित किया जाय। इससे कृतज्ञता प्रकाश के साथ ही वर्तमान साहित्य-विकास का भी परिचय मिलेगा। आपका प्रस्ताव है कि इस योजना की सफलता के लिये शीघ्र ही सुव्यवस्थित प्रति-निधिक समितियाँ निर्मित कर देनी चाहिये। आप यह भी कहते हैं कि इस अभिनन्दन ग्रन्थ को श्रीवेंकटेश्वर प्रेस को प्रकाशित कर देना चाहिये।

ग्वालियर राज्य की भाषा—ग्वालियर राज्य में अदालती भाषा हिन्दी बना दी गयी है; किन्तु अफसरों की मर्जी से कभी कोई नोटिस हिन्दी में, कोई मराठी में, कोई अंग्रेज़ी में, कभी दो-दो भाषा में छप जाती है। सरकारी आज्ञा निकली है कि संवत् १९६० में कैलास वासी श्रीमन्त सरकार ने आज्ञा दी थी कि राज्य में कुल कार्यवाही हिन्दी भाषा में की जावे, सम्वत्

१९९४ में मजलिसे आम में भी प्रस्ताव पास हुआ था कि सेक्रेटरियट और अदालतों की भाषा हिन्दी की जावे अर्थात् ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जावे जिसे जनसाधारण सहज ही समझ सकें। इसलिये श्रीमन्त सरकार महाराजा साहब के आदेशानुसार आज्ञा प्रकाशित हुई है कि (अ) राज्य की भीतरी व्यवस्था से सम्बन्ध रखनेवाली बातों का नोटिफिकेशन हिन्दी भाषा में किया जाया करे। ध्यान रहे कि ऐसे शब्दों का प्रयोग हो जिन्हें जनसाधारण सहज ही समझ सकें (ब) फ़ारेन और पोलिटिकल नेचर के कानून और ऐक्ट, अन्तर्राष्ट्रीय अथवा बाहरी व्यवस्था सम्बन्धी मेडिकल या इंजीनियरिंग सम्बन्धी नोटिस टेकेनिकल शब्दों के प्रयोग के ख्याल से अंग्रेजी में छापे जा सकते हैं। (स) शेष नोटिस, डिपार्टमेंटल आर्डर और सर्कूलर अंग्रेजी और हिन्दी दोनों भाषाओं में प्रकाशित किये जाया करें।

साहित्य और सहृदयता—साहित्य और सहृदयता का 'कर्मवीर' में जिक्र करते हुए श्रीराम, 'साहित्य रत्न' लिखते हैं कि 'सहृदयता मानव हृदय का गीलापन है'। किसी जलाशय में एक छोटा सा कंकड़ डालिये उसमें तूफान तो नहीं उठेगा; किन्तु छोटी छोटी लहरें उठ कर एक के बाद दूसरे को मिलाती हुई सीमा के बाहर ढुलक पड़ेंगी। इसी तरह हृदय सरोवर में भी एक छोटी सी घटना भी हलचल मचा सकती है। किन्तु जिन्हें अपने स्वार्थ के सिवाय कुछ दीखता ही नहीं उनका सहृदयता से क्या सम्बन्ध ? संकुचित हृदय क्यों सोचने लगा कि आत्मवाद से बढ़ कर कोई मानववाद भी है। सहृदयता और सभ्यता का गहरा सम्बन्ध है। सहृदयता के बिना मनुष्य को सभ्य समझना मक्कारी है। हृदयहीन सभ्य दूसरों का गला भले ही काट ले पर वह किसी का जीवन नहीं सुधार सकता। सहृदयता और साहित्य का तो गठबन्धन है। सहृदयता भगवान का वरदान है। जिसके पास यह नहीं है वह अमर कलाकार कभी नहीं हो सकता। लेखक में उदारता का होना जरूरी है, क्योंकि इस गुण के बिना वह दूसरों के साथ न्याय नहीं कर सकता और यह गुण सहृदयता के बिना प्राप्त नहीं हो सकता। यह हमारे विचारों को व्यापक बनाता है, जिससे कि हम विश्व कल्याण के काम आवें और संकुचितता के कठघरे में फँसे न रहें। सहृदय आदमी ही साहित्य का सच्चा निर्माता है। क्योंकि वह हृदय की प्रेरणा से ही लेखनी उठाता है। साहित्य के सौन्दर्य को समझने

की शक्ति सब में नहीं होती। जिसे सहृदयता देवी वरण करती है वह बिरला ही काव्य के रस को लूट सकता है।

राष्ट्रभाषा का प्रश्न—राष्ट्रभाषा के सम्बन्ध में श्रीयुत शालिग्राम श्रीवास्तव कहते हैं कि इसका निर्णय मनुष्य गणना की रिपोर्ट से अपने आप हो जाता है। उससे प्रकट है कि यहाँ के निवासी सब से अधिक हिन्दी के बोलने और समझने वाले हैं। अतः निस्सन्देह हिन्दी ही यहाँ की राष्ट्रभाषा कहलाने योग्य है। शहर और कस्बों के थोड़े से लिखे-पढ़े लोगों को छोड़ कर गाँवों के हिन्दू-मुसलमानों की भाषा एक है। जैसे गुजरात के हिन्दू गुजरातियों और पारसियों की गुजराती में कुछ फरक होता है किन्तु वह दोनों हैं गुजराती; उसी तरह मुसलमानों की भाषा को उर्दू कहना सत्य की हत्या करना है। जैसे अरब की भाषा अरबी, फारस की फारसी उसी तरह हिन्द की भाषा हिन्दी है। उर्दू शब्द किसी देश के नाम से सम्बन्ध नहीं रखता। भारतीय मुसलमान, अरब, ईराक आदि बाहरी देशों में 'हिन्दी' कहलाते हैं; किन्तु वहाँ वे इस पर झगड़ा नहीं करते कि हमें "उर्दू" कहा करो! 'हिन्दुस्तानी' शब्द मुहावरे के विरुद्ध है। तुर्किस्तान की भाषा को कोई तुर्किस्तानी नहीं तुर्की ही कहता है। उसी तरह हिन्दी शब्द ठीक है। शैली का झगड़ा भी व्यर्थ है; क्योंकि शैली बनाने वाली जनता होती है। इसलिये राष्ट्रभाषा में कोई काट छाँट नहीं कर सकता। यह तो एक स्वतन्त्र धारा है जो अपने आप बहती चली जाती है। आजकल जैसे अंग्रेज अपनी सुविधा के लिये हिन्दी, संस्कृत को रोमन अक्षरों में लिख लेते हैं उसी तरह मुसलमानों ने ईरानी अक्षरों में लिखना आरम्भ किया था। यद्यपि उनकी लिपि बहुत अपूर्ण और दूषित है तथापि देवनागरी अपनाना उनके लिये कठिन है। इसलिये हस्तक्षेप करना व्यर्थ है। कुछ आवश्यक परिवर्तन के साथ दोनों लिपियाँ साथ-साथ रहेंगी।

हिन्दी-साहित्यसेवी सहायकसमिति—इस विषय का आन्दोलन कोई चालीस वर्ष से बीच-बीच में कई बार उठा है कि हिन्दी संसार को मानसिक भोजन देनेवाले हिन्दी लेखकों की विपन्नावस्था में उन्हें आर्थिक सहायता पहुँचाने के लिये कोई स्थायी निधि स्थापित होनी चाहिये। हिन्दीसाहित्यसेवी कुछ अपवादों को छोड़कर चिन्ता उत्पीड़न और क्लेश की सजीव मूर्ति होते हैं। अपने दिमाग का सत निकाल कर वह लेखिनी तूलिका से साहित्य चित्र की

रचना करता है, पेट काट कर और दिल मसोस कर वह पुस्तकें खरीदता है। पाठक उसकी लेखनी की दाद देते हैं पर उन्हें क्या मालूम कि साधना में वह अपनी जीवन ज्योति को बुझा रहा है—वह स्वयं अपने लिये बेबसी का पुतला है। इस सम्बन्ध में पण्डित श्री राम जी ने विचार पूर्ण लेख लिखा है। आप कहते हैं कि हिन्दी-साहित्यसेवीसहायकसमिति कायम होनी चाहिये। समिति का प्रत्येक सदस्य एक रुपया सालाना समिति को दे। अगर समिति का कोई सदस्य मर जाय तो प्रत्येक मेम्बर एक-एक रुपया और न्योते के रूप में (जैसा कि समाज में व्यवहार रूप में आता है) समिति को भेज दे। इस तरह मान लीजिये समिति के पाँच हजार सदस्य हैं तो एक कुटुम्ब को पाँच हजार की सहायता मिल जायगी। समिति की वार्षिक आय जो पाँच हजार की होगी उससे कर्ज भी दिया जा सकेगा। यह विषय ऐसा है जिस पर अच्छी तरह विचार होना चाहिये।

सिक्कों पर हिन्दी—श्रीयुत चन्द्रवली पांडे ने इस सम्बन्ध में एक लेख लिख कर दिखलाया है कि भारत के अंग्रेजी सिक्के पर प्रजा की भाषा न तो हिन्दी है और न उर्दू (बल्कि अंग्रेज़ी और फारसी है) सन् १८६३ ई० में भारत सरकार के सामने यह प्रस्ताव आया था कि भारत के सिक्कों पर हिन्दी और उर्दू को जगह दी जाय। उसी भारत सरकार ने सप्तम एडवर्ड के सिक्कों पर जगह दे दी शुद्ध फारसी को। उस फारसी को जिसे मुगल सरकार की अधीनता में कम्पनी सरकार ने सन् १८३७ में कचहरियों से देश निकाला दिया था। और उसकी जगह चालू कर दिया था देशी भाषाओं को। एक दिन था कि मुगल सरकार की देख रेख में शाहआलम बादशाह के नाम पर कम्पनी सरकार ने 'बनारस के मुल्क' के लिये एक पैसा चलाया, जिस पर हिन्दी अक्षरों में 'एक पाई सीका' तो लिखा ही गया, साथ ही साथ एक चिन्ह त्रिशूल भी बना दिया गया। किन्तु महारानी विक्टोरिया के निधन के उपरान्त चाँदी के सिक्कों पर फिर फारसी आ धमकती है और फिर कभी हटने का नाम तक नहीं लेती! पंचमजार्ज के शासनकाल में गिलट के सिक्कों तथा कागज के नोटों पर देशी भाषाओं को अवश्य स्थान मिल जाता है; अधिकांश फारसी भी उर्दू के रूप में रह जाती है! किन्तु चाँदी के सिक्कों पर किसी भी देश भाषा को अभी तक स्थान नहीं मिला।

प्राप्ति स्वीकार

[लेखक—श्री जगन्नाथप्रसाद शुक्ल वैद्य, संग्रह मन्त्री]

निम्नलिखित पुस्तकें हिन्दी संग्रहालय को प्राप्त हुई हैं। लेखक, प्रकाशक तथा प्रेषकों को इसके लिये अनेक धन्यवाद है।

हम कहाँ हैं?—त्रिपुरी कांग्रेस के पहले देश और कांग्रेस की वर्तमान स्थिति का सिंहावलोकन करते हुए पं० जवाहरलाल जी नेहरू ने ८ लेख लिखे थे। जिनमें सभी पहलुवों का अच्छी तरह विचार किया गया था। कुछ सामयिक बातें छोड़कर जिस परिस्थिति और विवादों का इसमें सिंहावलोकन हुआ है उनमें मूलतः कोई अन्तर नहीं पड़ा। इसलिये यह निबन्ध अब भी उसी तरह मननीय और उपयोगी है। दाम =)

आर्थिक सवाल—देहातों के आर्थिक प्रश्नों पर श्रीयुत झवेर भाई पटेल ने (तेलघानी विभाग, ग्राम उद्योग संघ, वर्धा) इस पर अच्छा प्रकाश डाला है। गाँवों की गतिहीनता, धरती का भार, तिजारती फसलें, किसानों की कर्जदारी, फसलें और खेती, मालगुजारी, लगान की समस्या, सहकारिता और ग्राम संगठन पर मार्मिक विचार हुआ है। मूल्य ≡)

राष्ट्रीय गायन—वन्देमातरम्, झण्डे का गान आदि से लेकर जो राष्ट्रीय गान कांग्रेस में गाये जाते या देश में प्रचलित हैं, उन सबों का इसमें संग्रह है। सब साठ गायन हैं। मूल्य =)

खादी का महत्व—बम्बई के भूतपूर्व पार्लमेंटेरी सेक्रेटरी श्री गुलजारी लाल जी नन्दा ने खादी का महत्व, सभ्यता के विकास में खादी का भाग, खादी का अर्थ-शास्त्र, खादी का इतिहास, संगठन और नीति, खादी की निर्माण कला और खादी का उज्ज्वल भविष्य शीर्षक निबन्धों में इस विषय को अच्छी तरह स्पष्ट किया है। मूल्य −)॥

हिन्दुस्तान की समस्याएं—लेखक हैं पण्डित जवाहर लाल नेहरू। पिछले तीन चार वर्षों में आपने समय-समय पर जो लेख विविध विषयों में लिखे हैं, उन्हीं ३४ लेखों का इसमें संग्रह किया गया है। भारत की स्वतन्त्रता

से सम्बन्ध रखने वाले कोई विषय विचार करने से बच नहीं रहे हैं। देशदशा का अनुशीलन करने वालों को अवश्य पढ़ना चाहिये। मूल्य १)

स्वदेशी और ग्रामोद्योग—महात्मा गांधी जी के इस विषय के ३१ लेखों का इसमें संग्रह हुआ है। इससे स्वदेशी और ग्रामोद्योग के सम्बन्ध में महात्मा जी के विचारों को जानने में सहायता मिलेगी, जिससे सब लोग उनकी आशाओं को पूर्ण करने में संलग्न हो सकेंगे। मूल्य ॥)

आत्मकथा—महात्मा गांधी जी ने अपनी आत्मकथा को लिखते हुए अपने सत्य के प्रयोगों को इसमें लिख दिया है। जिससे उनका जीवन वृत्तान्त जानने के साथ ही पाठक उनके सिद्धान्त भी समझ सकता है। पुस्तक पाँच भागों में है और उनमें सब मिलाकर १६८ प्रकरण हैं। मूल्य १)

संक्षिप्त आत्मकथा—महात्मा गांधी की आत्मकथा को श्रीयुत महादेव देसाई और श्रीयुत हरिभाऊ उपाध्याय जी ने संक्षिप्त कर सम्पादन किया है। स्कूलों के लिये उपयोगी होने की दृष्टि से इसका सम्पादन हुआ है। इसमें भी ७० प्रकरण हैं। मूल्य ॥)

कांग्रेस का इतिहास—इसके लेखक श्रीयुत कृष्णचन्द्र विद्यालंकार और प्रस्तावना लेखक श्री पट्टाभि सीतारमैया महोदय हैं। पहले सीतारमैया जी ने मूल पुस्तक लिखी थी, वर्तमान लेखक ने उसे अब तक की घटनाओं से पूर्ण कर दिया है। उसी का यह परिशिष्ट भाग सन् १९३५ से ३९ तक के विवरणवाला है। मूल्य ॥)

दुनिया का रंगमञ्च—पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने विश्व-इतिहास की झलक लिखी थी। उसी का सन् १९३३ से ३८ तक की विश्व-इतिहास की झलक का ताजा अंश इसमें दिया गया है। मूल्य ।)

हमारे अधिकार और कर्त्तव्य—इसके लेखक श्रीयुत कृष्णचन्द्र विद्यालंकार और भूमिका लेखक श्री प्रकाश जी हैं। हमारे अधिकार और कर्त्तव्य के सम्बन्ध में २२ प्रकरणों में सब बातें इसमें समझायी गयी हैं। पुस्तक सब के पढ़ने योग्य है। मूल्य ॥)

राजनीति प्रवेशिका—अंग्रेज़ी में प्रोफेसर हेरल्ड वास्की की पुस्तक इस सम्बन्ध में उत्तम मानी जाती है। उसी का संक्षिप्त अनुवाद श्रीयुत गोपीकृष्ण विजय वर्गीय जी ने किया है। राज्य संस्था का स्वरूप, राज्य संस्था का स्थान, राज्य संस्था का संगठन, राज्य संस्था और अन्तर्राष्ट्रीय समाज, इस सम्बन्ध की पुस्तकों की सूचना नामक प्रकरणों में विचारणीय विषय समझाया गया है। मूल्य १॥)

ब्रह्मचर्य—संयम और सदाचार पर महात्मा गाँधी के ४१ लेखों का इसमें संग्रह हुआ है। नवयुवक ही नहीं सभी स्त्री-पुरुषों के पढ़ने योग्य है। मूल्य ॥)

सुगम चिकित्सा—देहात के साधारण पढ़े-लिखे भाई जिन बातों को जानकर गाँव की अच्छी सेवा कर सकें और अपने आस-पास मिलनेवाली दवाइयों से रोगचिकित्सा कर सकें, ऐसी ही बातों का इसमें संग्रह किया गया है। इसके लेखक हैं आयुर्वेदाचार्य श्रीयुत चतुरसेन शास्त्री वैद्य। पुस्तक बहुत काम की है। मूल्य ॥)

ऊपर लिखी १४ पुस्तकें सस्ता साहित्य मण्डल दिल्ली से प्रकाशित हुई हैं और वहीं से तथा लखनऊ से प्राप्त हो सकती हैं।

गीतापरिशीलन—पण्डित रामावतार विद्याभास्कार जी ने इसमें अद्वैत सिद्धान्त की प्रतिपादक शैली को ग्रहण कर श्रीमद्भगवद्गीता पर विचार किया है। विचार गहरे परिशीलन और दीर्घ दर्शन के द्योतक हैं। आपका ढङ्ग भी बोधगम्य और आकर्षक है। प्रत्येक श्लोक पर अन्वय, अर्थ और भाव देकर उसका मर्म अच्छी तरह समझाया गया है। विषय विश्लेषण बुद्धिमानी के साथ हुआ है। अन्त में परिशिष्ट भाग देकर ३३ प्रकरणों में रहस्यका उद्घाटन किया गया है। इस पुस्तक को लिख कर शास्त्री जी ने धन्यवाद का काम किया है। मूल्य ३॥)। पता—श्री मोतीलाल माणिकचन्द 'तत्त्व ज्ञानमन्दिर, आमलनेर, पूर्व खानदेश।

प्रीतम की गली में—श्रीराधास्वामी सम्प्रदाय की भावनाओं के अनुकूल धार्मिक प्रवृत्ति का इसमें वर्णन हुआ है। दिखावा, बनावट और छल कपट से दूर रह विश्वबन्धुत्व के सूत्र में बाँधने योग्य धर्म का वर्णन किया

गया है। २१ प्रकरणों में पुस्तक पूरी की गई है। लेखक हैं राजजी महाराज गुरुदास राय साहब और एक रुपये में पुस्तक प्रेमी भाई सरन आधार जी राधास्वामी सत्संग, सिविल लाइंस, आगरा के पते मिलेगी।

आदर्श महिला—एक सचित्र सामाजिक नाटक है। हिन्दू रमणियों पर आततायियों द्वारा जो अत्याचार होते हैं उनका दिग्दर्शन कराते हुए आत्मरक्षा करनेवाली आदर्श महिला का इसमें चरित्र-चित्रण है। दाम १) अधिक है। प्रियतम पुस्तक भण्डार, पिलानी, जयपुर से पुस्तक प्राप्त होती है।

अमृत बिन्दु—योगिराज अरविन्दघोष के विचारों के उपदेश वाक्यों का इसमें संग्रह है। जिन्हें आश्रम की श्रीमाता जी ने वचनामृत रूप में प्रकट किये हैं। श्री मदनगोपाल गादोदिया. श्री अरविन्द ग्रन्थमाला, १६, देवासद, रिशमो, पाँडिचेरी के पते पर पुस्तक यों ही प्राप्त होती है।

योग के आधार—योगिराज अरविन्दघोष ने समय-समय पर अपने शिष्यों को जो पत्र द्वारा उपदेश किये हैं उनका संग्रह अंग्रेजी में 'बेसेज आफ् योग' के नाम से हो गया है। उसी पुस्तक का यह हिन्दी अनुवाद है। योग के साधकों के लिये पुस्तक पथ-प्रदर्शक रूप है। दाम २) यह भी ऊपर के पते पर मिलेगी।

क्या करें ?—महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने भारत की तथा संसार की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा साहित्यिक समस्याओं पर अपने सुलझे हुए क्रान्तिकारी विचार सुझाये हैं। क्या करें, पड़ोसी जापान, सोवियट-शक्ति, रूस की पंचायती खेती, पंचायती खेती का प्रयोग, पंचायती खेती का सहयोग, तिब्बत की राजनीति, पुस्तकालय तथा हिन्दी साहित्य पर एक दृष्टि नाम के प्रकरणों पर यह विचार प्रकट हुए हैं। मूल्य १)। पता—साम्यवादी पुस्तक प्रकाशन मन्दिर, दारागंज, प्रयाग।

हजामत—पण्डित ज्योतिप्रसाद जी निर्मल की आठ प्रहसन पूर्ण नाटिकाओं का इसमें संग्रह है। सभी प्रहसन मनोरंजक और बोधगम्य हैं। ऐसे साहित्य का आपने कुशलता से निर्माण किया है। मूल्य १।)

कविप्रसाद की साधना—श्रीयुत जयशंकरप्रसाद जी का परिचय, मनोवैज्ञानिक विकास, कवि प्रसाद का काव्य और उसकी धारा उत्क्रान्ति-

कालिक तथा उत्क्रान्तिकाल से आँसू तक, फिर आँसू से लहर तक और लहर से कामायनी तक कवि प्रसाद का नीतिकाव्य, काव्यरूप में यौवन विलास, कामायनी खण्ड, जीवन समीक्षा खण्ड आदि प्रकरणों में पुस्तक आलोचनात्मक दृष्टि से लिखी गयी है। श्रीयुत रामनाथ सुमन जी ने इसमें अच्छी सफलता पायी है और प्रसाद जी का निखरा हुआ स्वरूप सामने हो गया है।

गुप्तजी की काव्यधारा—श्रीयुत पण्डित गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश बी० ए० ने श्रीयुत मैथिलीशरणजी गुप्त की काव्य-रचना पर आलोचनात्मक चर्चा करते हुए इस पुस्तक का निर्माण किया है। २९ प्रकरणों में गुप्त जी से सम्बन्ध रखनेवाली सभी बातों का अच्छा मन्थन और विचार हुआ है। गुप्त जी का ही चरित्र-चित्रण नहीं और उनके ग्रन्थों के पात्रों का भी अच्छा चित्रण दिया गया है। आलोचनात्मक साहित्य में इसका उच्च स्थान हो सकता है। दाम २।)

गांधी जी—श्री जुगतराम दुबे की गुजराती पुस्तक का श्रीयुत प्रभुदयालु जी विद्यार्थी ने हिन्दी में अनुवाद किया है। महात्मा जी के जीवन से सम्बन्ध रखनेवाले विषयों का ५० प्रकरणों में इसमें वर्णन हुआ है। मूल्य ॥)

आदर्श भोजन—स्वर्गीय राय बहादुर डाक्टर चौधरी एलोपैथ डाक्टर होते हुए भी अन्त में प्राकृतिक-चिकित्सा का महत्व समझे और उसे प्रकाशित किया। उन्हीं की इस सम्बन्ध की मूल पुस्तक का प्रयाग अग्रवाल विद्यालय कालेज के प्रिंसपल बाबू केदारनाथजी गुप्त ने हिन्दी में अनुवाद किया है। गुप्त जी सौ वर्ष जीने के प्रयोगों का स्वयं परिपालन करते हैं और दूसरों को उपदेश भी देते हैं। अतएव आपके समर्पित भोजन-प्रणाली का महत्व अवश्य अधिक है और समाज के लिये ग्रहणीय है। मूल्य ॥।)

काव्य कलना—श्रीयुत गंगाप्रसाद पांडे जी ने इसमें कवि का आदर्श, आलोचना, साहित्य और साम्यवाद, प्रगतिशील हिन्दी कविता, महादेवी वर्मा, जयशंकर प्रसाद, सूर्य कान्त त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानन्दन पन्त, इलाचन्द जोशी, रामकुमार वर्मा, भगवतीचरण वर्मा और हरिवंशराय 'बच्चन' पर विचारपूर्ण आलोचनात्मक दृष्टि डाली है। मूल्य १)

रत्नहार—श्रीयुत पण्डित ज्योतिप्रसाद निर्मल की ११ कहानियों का इसमें संग्रह है। विशेषता यह है कि 'निर्मल' जी शहरों के सभ्य समाज के चोचलों में ही फँसे न रहकर ग्राम्य जीवन, वहाँ की मनोवृत्ति, वहाँ के आदर्श, उनके भोले-भाले प्रेम का चित्रण करने में समर्थ हुए हैं। सब कहानियों में आदर्श और उपदेश हैं। मूल्य १॥)

साम्यवाद ही क्यों?—महापण्डित राहुल सांकृत्यायन जी ने मनुष्य की उत्पत्ति और विकास से लेकर पूंजीवाद की उत्पत्ति, साम्यवाद की उत्पत्ति, दरिद्रता, सामाजिक रोग, अच्छी सन्तान, धर्म और ईश्वर, स्त्रियों की परतन्त्रता, मुसोलिनी और हिटलर के ढंग, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, यत्रों से प्राप्त अवकाश का उपयोग तथा साम्यवाद का भविष्य और उसके शत्रु मित्र आदि बातों पर आलोचनात्मक विचार कर यह सिद्ध किया है कि साम्यवाद का सिद्धान्त ही भारत के लिये उपयुक्त होगा। इससे साम्यवाद के सिद्धान्त समझने में अच्छी सुविधा होगी। दाम ॥)

पतिता की साधना—पण्डित भगवती प्रसाद वाजपेयी का लिखा हुआ यह एक सामाजिक उपन्यास है। उपन्यास में घटनाक्रम स्वाभाविक रूप से प्रवाहित हुआ है। वर्णनक्रम आकर्षक, दृश्य दर्शनीय और भाव प्रभावोत्पादक है। उपन्यास की नायिका नन्दा चतुर, बुद्धिमती, सुलक्षणा, और विचारपूर्ण विदुषी है; किन्तु विधवा होने के कारण उसे जिस तरह यौवन सुलभ प्रेम में डाल कर मोह ग्रसित किया गया है; वह सम्भव होने पर भी घटनाक्रम में बहुत शीघ्र उसे जैसे परिणाम में पहुँचाया गया है वह न तो आदर्श है और न स्वाभाविकता के समीप होने पर भी सुलभ सम्भव है। दाम २)। उपर की आठ पुस्तकें दारागंज, प्रयाग के छात्र हितकारी पुस्तकमाला से प्रकाशित हुई हैं और वहीं से मिलती हैं।

चतुर्वेदीजी की स्मृति में—मुंगेर के छात्र हितकारी संघ ने स्वर्गीय पण्डित जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी जी की स्मृतिमें "छात्र" का एक स्मृति अंक निकाला है। उसमें उनके संस्मरण, श्रद्धाञ्जलि, जीवन-चरित्र की झलक आदि पर गद्य पद्यमय लेख दिये गये हैं। छात्र का यह प्रयास स्तुत्य है। दाम =)

हिन्दी-विश्व-विद्यालय परिषद

प्रथम अधिवेशन की कार्यवाही

हिन्दी-विश्व-विद्यालय परिषद का प्रथम अधिवेशन रविवार ता० १० दिसम्बर सन् १९३९ को २॥ बजे दिन से सम्मेलन के संग्रहालय में निम्नलिखित सदस्यों की उपस्थिति में हुआ :—

सर्वश्री पुरुषोत्तमदास टण्डन, अयोध्यानाथ शर्मा, रामशङ्कर शुक्ल 'रसाल', बनारसी प्रसाद सक्सेना, उमेश मिश्र, ओंकार नाथ मिश्र, पद्मकान्त मालवीय, उदयनारायण त्रिपाठी, विश्वनाथप्रसाद मिश्र, नीतीश्वर प्रसाद सिंह, भगीरथप्रसाद दीक्षित, रामलखन शुक्ल, बाबूराम सक्सेना, लक्ष्मीधर वाजपेयी, बेनीप्रसाद अग्रवाल और दयाशङ्कर दुबे (परीक्षा मंत्री)।

सर्व सम्मति से श्री पुरुषोत्तमदास जी टण्डन ने सभापति का आसन ग्रहण किया।

परीक्षा मंत्री ने हिन्दी-विश्व-विद्यालय परिषद के पिछले अधिवेशन की कार्यवाही पढ़ी और वह सर्व सम्मति से स्वीकृत हुई।

परीक्षा मंत्री ने नियमावली के नियम २० के अनुसार परीक्षा समिति के लिए ११ सदस्यों के निर्वाचन का विषय उपस्थित किया। सर्व सम्मति से परीक्षा समिति का निर्वाचन नीचे लिखे अनुसार हुआ :—

सर्वश्री पुरुषोत्तमदास टण्डन, लक्ष्मीधर वाजपेयी, उदयनारायण त्रिपाठी, भगीरथप्रसाद दीक्षित, ब्रजराज, धीरेन्द्र वर्मा, अयोध्यानाथ शर्मा, गोरख प्रसाद, जगन्नाथप्रसाद शुक्ल, काका कालेलकर, राम शङ्कर शुक्ल 'रसाल'।

परीक्षा मंत्री ने नियमावली के नियम २२ (च) के अनुसार प्रत्येक वर्ग के सदस्यों के निर्वाचन का विषय उपस्थित किया। सर्व सम्मति से वर्गों का निर्वाचन नीचे लिखे अनुसार हुआ।

साहित्य—श्री उदयनारायण त्रिपाठी (संयोजक) श्री अयोध्या नाथ शर्मा, श्री रामकुमार वर्मा, डा० रामशङ्कर शुक्ल 'रसाल', श्रीलक्ष्मीधर वाजपेयी

इतिहास — डा० विश्वेश्वर प्रसाद (संयोजक) डा० बनारसी प्रसाद, डाक्टर परमात्मा शरण, डाक्टर रामशङ्कर त्रिपाठी, श्री जयचन्द्र विद्यलंकार।

भूगोल—श्री रामनारायण मिश्र (संयोजक) श्री शिवप्रसाद पाण्डेय, डाक्टर राम नाथ दुबे, श्री बलभद्र प्रसाद वाजपेयी, श्री कृष्णदेव प्रसाद गौड़।

गणित—डाक्टर गोरखप्रसाद (संयोजक) डाक्टर प्यारेलाल श्रीवास्तव, श्री जितेन्द्रनाथ सेन, श्री काशीदत्त पाण्डेय, प्रो० मक्खनलाल।

राजनीति—श्री कृष्णदेव प्रसाद गौड़ (संयोजक) श्री अवध-बिहारी लाल, श्री सांवलिया बिहारी लाल वर्मा, श्री रामशरण जी, श्री कन्हैया लाल जी।

अर्थशास्त्र—प्रो० दयाशंकर दुबे (संयोजक) प्रो० कन्हैया लाल गोयल, श्री रामशरण जी, श्री शंकर सहाय सक्सेना, श्री कृष्णकुमार शर्मा।

संस्कृत और पुरातत्व—डाक्टर उमेश मिश्र (संयोजक) प्रो० क्षेत्रेश चन्द्र चट्टोपाध्याय, श्री राम बालक शास्त्री, श्री त्रिभुवनप्रसाद उपाध्याय, श्री चन्द्रशेखर पाण्डेय।

दर्शन शास्त्र—डाक्टर उमेश मिश्र (संयोजक) श्री गंगाप्रसाद उपाध्याय, श्री वीरमणि उपाध्याय, श्री राजाराम शास्त्री, श्री रामनाथ कौल।

गार्हस्थ्य शास्त्र—श्रीमती रत्नकुमारी (संयोजक) डा० गोरख प्रसाद, श्रीमती कमला देवी शर्मा, श्रीमती गोदावरी बाई भड़कमकर, सुश्री चन्द्रावती त्रिपाठी।

ड्राइंग—श्री श्री० बी० के० महादाने, श्री विश्वम्भर प्रसाद जी।

अंग्रेजी—प्रो० ब्रजराज (संयोजक) श्री मनोरञ्जन प्रसाद सिंह, श्री देवेन्द्र सिंह, प्रिं० बालकृष्ण पाण्डेय, श्री कुबेरनाथ शुक्ल।

धर्मशास्त्र—श्री क्षेत्रेश चन्द्र चट्टोपाध्याय (संयोजक) श्री लक्ष्मीधर वाजपेयी, श्री रघुबर मिट्ठूलाल शास्त्री, श्री नरदेव शास्त्री, डा० उमेशमिश्र।

वैद्यक और शरीर विज्ञान—श्री जगन्नाथप्रसाद शुक्ल (संयोजक) डा० बृजबिहारी लाल, डा० बालेश्वर प्रसाद, डा० सिद्धार्थ आयुर्वेदरत्न, श्री बेनीमाधव द्विवेदी।

विज्ञान—डा० सत्यप्रकाश (संयोजक) श्री शालिग्राम वर्मा, श्री फूलदेव सहाय वर्मा, डा० रामशरण दास, श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव।

कृषिशास्त्र—प्रो० दयाशङ्कर दुबे (संयोजक), श्री तेजशङ्कर कोचक, श्री एन० डी० व्यास, श्री मूलचन्द मालवीय, श्री पुरुषोत्तम दास अग्रवाल।

ज्योतिष—डा० गोरखप्रसाद (संयोजक) डा० रामशङ्कर शुक्ल 'रसाल', श्री श्यामकिशोर मालवीय, श्री रामउत्साह मिश्र 'ज्योतिषाचार्य', श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव।

मुनीमी—श्री राधाकृष्ण तिवारी (संयोजक) श्री संगमलाल अग्रवाल, श्री लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, श्री कन्हैयालाल गोयल, सेठ अमरचन्द माहेश्वरी।

आरायज़नवीसी—श्री बेनीप्रसाद अग्रवाल (संयोजक) श्री संगमलाल अग्रवाल, श्री झुन्नीलाल पांडेय, श्री शीतलादीन द्विवेदी।

सम्पादनकला—श्री ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल' (संयोजक) श्री सत्यजीवन वर्मा, श्री शिवपूजन सहाय, श्री बाबूराव विष्णु पराड़कर, श्री लक्ष्मीधर वाजपेयी।

संगीत—प्रो० पटवर्धन (संयोजक) प्रो० कुशालकर, प्रो० डी० आर० भट्टाचार्य, प्रो० व्रजराज, प्रो० डी० ओझा।

पाली—डा० बाबूराम सक्सेना (संयोजक) श्री आनन्द कौशल्यायन, श्री जगदीश काश्यप, श्री उदयनारायण त्रिपाठी, श्री नारायणदत्त पाण्डेय।

यह भी निश्चित हुआ कि परीक्षा मंत्री को प्रत्येक वर्ग के अधिवेशन में उपस्थित होने का अधिकार होगा परन्तु उन्हें वोट देने का अधिकार न होगा।

परीक्षा मंत्री ने नियमावली के नियम १८ (ज) के अनुसार हिन्दी-विश्व-विद्यालय परिषद के लिए ५ विशेषज्ञ सदस्यों के निर्वाचन का विषय उपस्थित किया। सर्व सम्मति से सदस्यों का निर्वाचन नीचे लिखे अनुसार हुआ :—

प्रो० व्रजराज, प्रो० क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय, डा० विश्वेश्वर प्रसाद, श्रीमती रत्न कुमारी एम० ए०, श्री० बी० के० महादाने।

इसके पश्चात् समय अधिक हो जाने पर किसी आवश्यक कारण श्री सभापति जी बाहर चले गए और कार्यवाही श्री लक्ष्मीधर जी वाजपेयी के सभापतित्व में हुई।

परीक्षा मंत्री ने 'साहित्य महोपाध्याय' परीक्षा की नियमावली स्वीकृति के लिए उपस्थित की। निश्चय हुआ कि नियमावली की एक-एक प्रति पहिले परिषद के प्रत्येक सदस्य के पास विचार के लिए भेजी जाय। तत्पश्चात् यह विषय विश्व-विद्यालय-परिषद के दूसरे अधिवेशन में उपस्थित किया जाय। इसके उपरान्त सभापति जी को धन्यवाद देकर सभा विसर्जित हुई।

दयाशंकर दुबे एम० ए०, एल-एल० बी०
परीक्षा मंत्री

राष्ट्र-भाषा हिन्दी का प्रचार

स्वर्गीय सतीशचन्द्र राय एम० ए०

[सुप्रसिद्ध विद्वान स्वर्गीय पं० सतीशचन्द्र राय, एम० ए०, का एक पुराना लेख हमें उनके सुपुत्र अध्यापक श्री भवानीचरण राय, एम० ए०, से प्राप्त हुआ है। लेख को हम ज्यों-का-त्यों बिना किसी संशोधन के छाप रहे हैं। वृद्धावस्था में भी उक्त विद्वान ने हिन्दी लिखनेका जो प्रयत्न किया था, उसकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी होगी।

लेख की सामयिकता के विषय में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। बंगाल में हिन्दी के प्रचारार्थ क्या-क्या उद्योग होना चाहिए, इस विषय पर स्वर्गीय लेखक के प्रस्ताव विचारणीय हैं।

टीकमगढ़,

—बनारसीदास चतुर्वेदी]

यह अब सर्व-सम्मत है कि भारतवर्षमें राष्ट्र-भाषाका काम केवल हिन्दीसे ही हो सकता। अब तक अंग्रेजीके कालेजमें और बहुत स्कुलमें भी इतिहास, विज्ञान-आदि विषयोंकी शिक्षा प्रधानतः अंग्रेजीके माध्यम से दी जाती है किन्तु सब अभिज्ञ शिक्षकोंका सह-मत है कि मातृ-भाषाके माध्यमसे शिक्षा देनेपर विद्यार्थियोंका तुरत जैसा उपकार होता है ऐसा अंग्रेजीके माध्यमसे नहीं होता। अतः अनेक अंग्रेजीके स्कुलमें अब मातृ-भाषाके माध्यमका ही प्रचलन होने लगा। आशा है कि भारतमें स्वायत्त-शासनकी क्रमोन्नतिके साथ सर्वत्र सब-कार्य और शिक्षा कार्यमें मातृ-भाषा ही माध्यम बन जायगी,—क्योंकि अंग्रेज अध्यापक, अमला, बैरिस्टर और सौदागर लोगोंकी—जिनकी संख्या बहुत कम है—सुभीताके लिए हमारे देशके हजार-हजार विद्यार्थी और प्रजा-लोगोंकी असुभीता और क्षतिका बढ़ाना जबरदस्तीका ही काम है; भविष्य पूरा स्वायत्त-शासनमें ऐसी जबरदस्ती नहीं चलेगी। जब परमेश्वरकी कृपासे हमें ऐसा सु-दिन मिलेगा तब हिन्दीके बिना और कौन भाषा है जिसके सहारासे निखिल भारतका

राष्ट्रीय-कार्य चल सकता ? हिन्दीकी यह सार्वजनीन उपयोगिता केवल हमारी कल्पनाका विजृम्भन नहीं है किन्तु इसकी परीक्षा भी बहुत दिनोंसे हो रही; क्योंकि हम सर्वदा देखतें कि अंग्रेजी में अनभिज्ञ अलग-अलग प्रान्तोंके लोगों जब राष्ट्रीय-प्रयोजन या तीर्थ-यात्रादिके प्रयोजनसे कहीं सम्मिलित होतें तो हिन्दीके सहारेसे ही यथासाध्य बात-चीत कर लेतें। हमारी तुच्छ सम्मतिमें बंगाल, मद्रास प्रभृति विभिन्न प्रान्तोंमें प्रान्तीय शिक्षा-कार्य और राज-कार्य प्रान्तीय भाषाके सहारासे चलेगा किन्तु सब प्रान्तोंके साधारण राष्ट्रीय कार्य के लिए तो अंग्रेजी या हिन्दी जैसी एक साधारण भाषाको आश्रय करने ही पड़ेगा। क्या हम हमारे स्वदेशकी बनी हुई राष्ट्र-भाषा हिन्दीको छोड़कर सदाके लिए विदेशी भाषाके ऊपर पक्षपात करेंगे और उसका गुलाम बन रहेंगे ? परमेश्वर हमारे स्वदेशी भाइओंको ऐसे परिणामसे रक्षा करें।

यह नहीं समझता कि हम अंग्रेजीका विद्वेषी हैं। हम मुक्त-कण्ठसे बोलेंगे कि आधुनिक अंग्रेजी साहित्य हमारे बंगला, हिन्दी आदि स्वदेशी साहित्यसे बहुत पुष्ट और उन्नत है। शिक्षाकी पूर्णताके लिए अंग्रेजी-साहित्यका अनुशीलन हमारे सुशिक्षित भाइओंका अवश्य करना चाहिये; किन्तु अंग्रेजी शिक्षा जैसा अब स्कूल-कालेजमें प्रधान काम माना जाता है, और संस्कृत, बंगला, हिन्दी आदि कोई एक प्राच्य-भाषाकी शिक्षा अप्रधान काम ही माना जाता, ऐसा कभी नहीं होना चाहिये। हमारी तुच्छ सम्मतिमें शिक्षणीय विषयोंमें अंग्रेजीको एक अप्रधान स्थान देनेसे भी प्राथमिक शिक्षार्थियोंकी कुछ हानि नहीं होगी, जब इतिहास,विज्ञान आदि कि अच्छी पुस्तकें—चाहे मौलिक, या चाहे अनुवाद—हमारे देशमें हो जायगी। हमें दुःखके साथ बोलने पड़ता कि ऐसी पाठ्य-पुस्तकें, हिन्दीकी कौन कहें, बंगलामें भी अब तक बहुत कम है। विदेशीय भाषामें सुशिक्षित भाइओंके पास हमारा नम्र निवेदन यह है कि आप अपनी-अपनी प्रान्तीय भाषाओंमें सब श्रेणिओंके शिक्षार्थियोंके उपयोगी पाठ्य-ग्रन्थोंके प्रणयनके लिए खुब प्रबन्ध करें। ऐसा प्रबन्ध न किया जाय तो अँग्रेजीके माध्यमको छोड़ना कठिन या असम्भव होगा और प्रान्तीय स्वदेशी भाषाओंकी भी—जितनी चाहिये पुष्टि और उन्नति नहीं होगी।

अब सोचना चाहिये कि कौन-कौन उपायसे बंगाल आदि प्रान्तोंमें राष्ट्रभाषा हिन्दीका अधिक प्रचार हो सकता। प्राथमिक हिन्दी-शिक्षार्थिओंके लिए उपयोगी सुलभ हिन्दी ग्रन्थका प्रकाश, बिभिन्न प्रान्तोंके प्रधान-प्रधान केन्द्रोंमें अवैतनिक हिन्दी विद्यालयोंका संस्थापन, और परीक्षामें विशेषकृती छात्रोंको वार्षिक वृत्ति और पदक आदिका प्रदान—यह सब हिन्दी-प्रचारका प्रधान उपाय होता है। आनन्दकी बात है कि प्रयागके हिन्दी साहित्य-सम्मेलन द्वारा यह सब काम कुछ-न-कुछ हो रहा। किन्तु ऐसा व्यापक और विराट् अनुष्ठानको सुसम्पादित करना एक साहित्य-सम्मेलनका साध्य नहीं है। ऐसा और दस-पाँच साहित्य-सम्मेलन अपनी-अपनी पूरी शक्तिके साथ प्रबन्ध करतें तो भिन्न-भाषा-भाषी सब प्रान्तोंमें हिन्दी-प्रचारका काम पूरा जोरसे चल सकता। किन्तु इस काममें बहुत खर्च पड़ेगा। क्या हमारे ग़रीब देशमें ऐसा होना सम्भव होगा? हम बोलेंगे कि केवल सम्भव नहीं, बल्कि हमारी समवेत चेष्टासे यह काम सुसिद्ध भी हो सकता,—किन्तु इसी ओर हमको पूरा ध्यान देने होगा; क्योंकि जब तक कोई बस्तुका नितान्त प्रयोजन और उसका अभाव हमको उद्बोधित और चंचल नहीं करता, तब तक वह अभावके निवारणके लिए पूरा प्रबन्ध भी नहीं हो सकता। हमें पहला ही सोचना चाहिये कि अन्यान्य प्रान्तोंमें राष्ट्र-भाषा हिन्दीके प्रचार द्वारा संयुक्त-प्रान्तकी अपनी स्वार्थ-सिद्धि इतनी नहीं होगी, जितनी निखिल भारतकी हो सकती। अतः राष्ट्रीय-महासम्मेलन और हिन्दू-महासम्मेलन जैसा राष्ट्र-भाषा हिन्दीका प्रचारके भी एक विराट् राष्ट्रीय-कार्य समझना चाहिए—जिसके साधनके लिए अन्यान्य प्रान्तवासियोंको भी अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार सहारा देना अपेक्षित है। आनन्दकी बात है कि हमारे देश-नायकोंमें जिनको हम सबसे दूरदर्शी और श्रेष्ठ मानतें वह महात्मा गाँधीजीने गुजराटी-भाषा-भाषी होकर भी राष्ट्रीय प्रयोजनीयताके लिये हिन्दी ऐसे अपनाया कि आप राष्ट्रीय सभाओंमें हिन्दीको छोड़कर अंग्रेजीमें व्याख्यान नहीं देते और सुदूर मद्रास प्रान्तमें हिन्दी बहुत कम प्रचलित है—यह समझकर आपने वहाँ हिन्दी प्रचारके लिए प्रायः एक लाख रुपये चन्दा उठाकर एक धन-भण्डार स्थापित कर दिया। हमारा पूरा विश्वास है कि अगर आप अब तक राष्ट्रीय महा-सम्मिलनका कर्णधार रहतें तो वह महा-

सम्मिलनके तरफ़से भी हिन्दी-प्रचारके लिए विशेष कुछ विधान करतें होंगे। दुःखकी बात है और कोई देश-नायकने हिन्दी-प्रचारके लिए ऐसा उल्लेख-योग्य प्रबन्ध नहीं किया।

हाँ, हमारे कलकत्ता हाइकोर्टके अन्यतम जस्टिस स्वर्गीय बाबू सारदाचरणमित्र एम, ए, बी, एल महोदय हिन्दीका एक बड़ा प्रेमी थें। आपने यह समझकर कि हिन्दी-प्रचारके लिए नागरी-लिपिका प्रचार एक प्रधान उपाय है—बंगाल आदि प्रान्तोंमें भी नागरी-लिपिका प्रचार उचित समझा और कै बरसों तक इसके लिए खुब प्रबन्ध किया। यद्यपि प्रतिकूल कारणोंसे आपका वह प्रबन्ध सफल नहीं हुआ किन्तु कोई भला कामके लिए किया हुआ बिफल प्रबन्ध भी बड़ा लाभजनक होता है; क्योंकि वह बिफलतासे ही हमें मालूम होता कि हमारे प्रबन्धमें कुछ ऐसी त्रुटि थी जिसको भविष्यमें सर्वथा सुधारने होगा। बंगाल प्रान्तमें नागरी-लिपिका प्रचार क्यों सफल नहीं हुआ, इस विषयपर यहाँ कुछ बोलना अनुचित नहीं होगा। हमारी तुच्छ सम्मतिमें कोई एक नवीन लिपिने—चाहे वह जैसी निर्दोष और उत्तम हो—प्रचलित प्राचीन लिपिको हटाकर अपना आसन जमा लिया—ऐसा उदाहरण संसारके इतिहासमें बहुत कम है। जब प्रचलित लिपिसे और प्रयोजन हो तो उसमें नुक्ता-डैश आदि कुछ चिह्नोंको लगानेसे ही दूसरी अप्रचलित लिपिका काम चल जाता, तब क्यों एक लिपिकी शिक्षाका कष्ट उठावेंगे? बंगला-लिपि नागरी-लिपिका बहुत लगभग है। बंगालीके लिए नागरी-लिपिको सीखना कुछ कठिन काम नहीं है; बंगालके स्कूल और कालेजमें नागरी-लिपिमें मुद्रित ग्रन्थों से ही संस्कृतकी शिक्षा दी जाती; तब भी बंगाली विद्यार्थियों बंगला-लिपिसे ही परीक्षामें संस्कृत प्रश्नोंका उत्तर देतें और स्कूल-कालेज छोड़कर थोड़े दिनोंमें ही अनभ्यासके कारण नागरी-लिपिको भूलकर नागरी लिखनेकी कौन कहें—नागरी-लिपि पढ़ने भी मुस्किल समझते।

जब बंगालमें ही नागरी-लिपिकी ऐसी अवस्था होती तब नागरीसे बहुत अलग फारसी, तामिल, तेलगु आदि लिपियाँ जहाँ चलतीं वह सब प्रान्तोंमें नागरी लिपिका प्रचार क्या बहुत कठिन बल्कि असम्भव नहीं है? निखिल भारतके मुसलमान अधिवासियोंकी अवस्थापर भी ध्यान देना चाहिए।

उन्हींकी ऊर्दू भाषा तो हिन्दीका ही एक रूपान्तर है किन्तु उन्होंके धर्म-ग्रन्थ कुरान आदिकी भाषा और लिपि अरबी-फारसी होनेके कारण वे अरबी-फारसी लिपिको खुब पवित्र समझते हैं अतः उन्होंके लिये वह लिपिका छोड़कर नागरी-लिपिको ग्रहण करना तो सम्पूर्ण असम्भव ही मालूम होता। स्वदेशी लिपिके ऊपर ऊरोप-खण्डके लोगोंका भी ऐसा ही प्रेम है। जब वे अपने देशोंमें कोई संस्कृत या अरबी-फारसी पुस्तकें प्रकाशित करते तो लाटिन-लिपिमें वह सबका लिप्यन्तर (Transliteration) कर लेतें। संस्कृत आदि को पढ़ना कुछ कठिन काम है; क्योंकि एक-एक नागराक्षर—जैसे 'श' 'क्ष' इत्यादिके लिए दो-तीन लाटिन अक्षरोंका (जैसा 'sh' 'chh' इत्यादि) प्रयोजन होता और अनेक नागराक्षरके लिए (जैसे 'ट' 'ठ' इत्यादि) उपयोगी लाटिन अक्षर नहीं होनेसे उसके लिए अलग-अलग सांकेतिक चिह्नका ('t', 'th' इत्यादि) भी प्रयोजन होता। दृष्टांतके लिए हम यहाँ नागराक्षरमें कोई एक संस्कृत श्लोक और उसका लाटिन-अक्षरमें लिप्यन्यर देतें, आप देखिये कि लिप्यन्तरको पढ़ना कैसा कठिन है :—

"यथा नदीजलात् स्वच्छात् मीन उत्पतति द्रुतम्।
सर्वशून्यात्तथा स्वच्छात् मायाजालमुदीयंते॥"

Yatha nadijalat swacchat mina utpatatidrutam,
Sarvashunyattatha swacchat mayajalamudijynate.

चिन्ताकी बात है कि ऊरोप-खण्डके पण्डितों तब भी लाटिन-लिपि द्वारा क्यों संस्कृतका लिप्यन्तर करतें है। हमारी समझमें स्वदेशी-लिपिके ऊपर ऐसा पक्षपातका प्रधान कारण यह है कि स्वदेशी-लिपि साधारण लोगोंका सुपरिचित होती किन्तु कोई नवीन लिपिकी शिक्षा समय-साध्य और कठिन काम है। अतः हमारा नम्र निवेदन यह है कि बंगाल आदि प्रान्तोंमें साधारण लोगोंके लिए हिन्दीके पाठ्य-पुस्तकें बंगला आदि प्रान्तीय लिपिमें ही होनी चाहिए। पाठ्य-ग्रन्थोंमें व्याकरण, शब्द-कोष और गद्य-पद्यके प्राथमिक पाठका ही (Reading lessons) अधिक प्रयोजन है। हमें दुःखके साथ बोलने पड़ता कि बंगाली विद्यार्थियोंकी उपयोगी हिन्दी पुस्तकें अब तक बंगालमें प्रकाशित नहीं हुई; हमें आशा है कि प्रयागका हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन यह विशेष अपेक्षित विषयकी ओर ध्यान देंगे। यह काम

सहज-साध्य नहीं है। इसके सुसम्पादनके लिए हिन्दुस्थानी और बंगाली पंडितोंकी—जो हिन्दी और बंगला दोनों भाषामें विशेषज्ञ है—समवेत चेष्टाका प्रयोजन और कुछ अधिक खर्च भी होगा।

हमारे विचारमें हिन्दी-प्रचार राष्ट्रीय कार्य होनेके कारण वह खर्च बंगाल और संयुक्त प्रान्तके एक सम्मिलित धन-भण्डारसे ही देना उपयुक्त होगा। मद्रास आदि प्रान्तोंके लिए भी ऐसा ही प्रबन्ध करने पड़ेगा।

ऊपरमें लिखा हुआ विचारसे मालूम होगा कि बंगाल आदि प्रान्तोंमें राष्ट्रीय, सामाजिक और साहित्यिक प्रयोजनसे हिन्दी-प्रचारकी सफलताके लिए प्रधानतः

(१) सब संसृष्ट प्रान्तोंके समवेत प्रबन्धसे संग्रहीत एक बड़ा धन-भण्डार और उसके कार्य-निर्वाह और यथायोग्य विनियोगके लिए एक केन्द्रीय (Central) समिति प्रतिष्ठित करनी चाहिए।

(२) अलग-अलग प्रान्तमें प्रदत्त धनसे अपेक्षित हिन्दी ग्रन्थों इत्यादिके प्रणयन और प्रकाशके लिए प्रान्तीय (Provincial) ग्रन्थ प्रकाश-समिति भी प्रतिष्ठित करनी चाहिए।

उपसंहारमें हम स्वदेश-हितैषी भाइयोंके पास नम्र निवेदन करते कि कोई देशमें साहित्यिक उन्नतिको छोड़कर राज-नैतिक, अर्थ-नैतिक या समाज-नैतिक पूरी उन्नति नहीं हुई और नहीं होगी। अतः देश-हितकर और सब कामोंमें राष्ट्रीय भाषा हिन्दीका प्रचार भी आप एक बड़ा काम समझिये और अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार तन, मन और धनसे उसमें सहारा पहुँचाकर भारत-माताके मुखको उज्ज्वल करनेवाले सुपुत्र बन जाइये।

'विशाल भारत'

———

हिन्दी सम्पादकों से अनुरोध

हिन्दी साहित्य सम्मेलन का २९ वाँ वार्षिक अधिवेशन आगामी मई महीने में बड़े समारोह से पूना में होने जा रहा है। इसलिये हिन्दी के संपादकों और संचालकों से अनुरोध है कि वे अपनी-अपनी पत्र-पत्रिकाओं को सम्मेलन के अधिवेशन के अवसर तक, मंत्री, स्वागत समिति, २९ वाँ हिन्दी साहित्य सम्मेलन, ३७३, शनवार पेठ, पूना, नं० २ के पते पर बिना मूल्य भेजते रहने का कष्ट करें। साथ ही सम्मेलन की सूचनाओं को समय-समय पर पत्रों में प्रकाशित करके सम्मेलन के प्रचार-कार्य में सहायता पहुँचाते रहें।

बाबूराम सक्सेना एम० ए०, डी० लिट्०,
प्रधान मंत्री
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

'नारंग-पुरस्कार'

पंजाब के सुप्रसिद्ध हिन्दी प्रेमी सर गोकुलचंद नारंग द्वारा प्रदत्त १००) का 'नारंग-पुरस्कार' प्रत्येक वर्ष हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा दिया जाता है। संवत् १९९६ के 'नारंग-पुरस्कार' के लिये पुस्तकें स्वीकार किये जाने की अंतिम तिथि नियमावली के अनुसार ३१ अगस्त सन् १९३९ रखी गई थी। खेद है कि उक्त तिथि तक पुस्तकें कार्यालय में नहीं प्राप्त हुईं। इसलिये अब उसकी तिथि बढ़ाकर ३१ मार्च सन् १९४० कर दी गई है। कविता कम से कम १०० पंक्तियों की अवश्य होनी चाहिये। कविता 'भारतीय संस्कृति' विषय पर होगी। केवल पंजाब निवासी कवि और कवित्रियाँ इस पुरस्कार के लिए अपनी प्रकाशित पुस्तकें भेज सकती हैं। अतएव पंजाब निवासी कवियों और कवित्रियों से निवेदन है कि वे अपनी पुस्तकों की सात-सात प्रतियाँ ३१ मार्च सन् १९४० तक सम्मेलन कार्यालय में अवश्य भेज दें।

ज्योतिप्रसाद मिश्र निर्मल
संयोजक
नारंग पुरस्कार समिति
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

नियमावली

१—सम्मेलन-पत्रिका प्रति मास प्रकाशित होती है।

२—हिन्दी साहित्य सम्मेलन के आदर्शों की पूर्ति में सहायक होना पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है।

३—पत्रिका का वार्षिक मूल्य १) तथा एक अङ्क का =) है।

४—पत्रिका के संम्बन्ध में पत्र-व्यवहार साहित्य-मन्त्री, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के पते से करना चाहिए।

५—पत्रिका-संबन्धी पत्र-व्यवहार में जवाब के लिए टिकट आने चाहिए; अन्यथा आवश्यक-अनावश्यक का विचार कर पत्रोत्तर दिया जायगा।

हिन्दी प्रेमियों से अनुरोध

हिन्दी साहित्य सम्मेलन की मुख-पत्रिका 'सम्मेलन-पत्रिका' पिछले कई वर्षों से प्रकाशित होती आई है। समय समय पर इसमें सुन्दर और विचार-पूर्ण लेखों के साथ सम्मेलन की स्थायी समिति तथा अन्यान्य समितियों के कार्य-विवरण प्रकाशित होते रहे हैं। हिन्दी के प्रेमियों, विद्वानों तथा स्थायी समिति के सदस्यों से यह अविदित नहीं है। किंतु अब हम चाहते हैं कि 'सम्मेलन-पत्रिका' प्रति मास ठीक समय पर प्रकाशित हो। साथ ही सुन्दर और श्रेष्ठ साहित्यिक लेख प्रकाशित किये जायँ जिससे हिन्दी के प्रति अनुराग रखने वाले सुदूर प्रांतों के हिन्दी-प्रेमी और विद्यार्थी भी इससे लाभ उठा सकें। इसके सिवा 'साहित्य-रत्न' 'मध्यमा' तथा 'प्रथमा' परीक्षाओं में सम्मिलित होने वाले विद्यार्थियों को साहित्य-अध्ययन में समय समय पर सहायता प्राप्त होती रहे। इसलिये हम प्रत्येक हिन्दी प्रेमी तथा विद्यार्थी से अनुरोध करते हैं कि वह 'सम्मेलन-पत्रिका' के स्वयं ग्राहक बनें और अपने मित्रों को भी बनावें। यदि एक हज़ार भी ग्राहक इसको मिल गये तो 'पत्रिका' का आकार प्रकार भी बड़ा कर दिया जायगा और विद्वानों के श्रेष्ठ साहित्यिक लेखों से भी इसका कलेवर अलंकृत होता रहेगा। आशा है हिन्दी-प्रेमी इस निवेदन की ओर ध्यान देने की कृपा करेंगे। सम्मेलन प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी की संस्था है और इसीलिये हम उनसे हर प्रकार के सहयोग और सहायता की पूर्ण आशा रखते हैं। जिन ग्राहकों का वार्षिक चंदा समाप्त हो गया है वे कृपया १) मनीआर्डर से शीघ्र भेज दें।

साहित्य-मंत्री

रजिस्टर्ड नं० ए० ६२९

हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा

प्रकाशित कुछ पुस्तकें

(१) सुलभ-साहित्य-माला

१ भूषण ग्रन्थावली	२)
२ हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	॥)
३ भारत गीत	≋)
४ राष्ट्र भाषा	॥)
५ शिवाबावनी	≋)
६ सरल पिंगल	।)
७ भारतवर्ष का इतिहास भाग १	२॥)
८ ” ” ” ” २	२।)
९ ब्रजमाधुरी सार	२॥)
१० पद्मावत पूर्वार्द्ध	१), १।)
११ सत्य हरिश्चन्द्र	।-)
१२ हिन्दी-भाषा सार	।॥)
१३ सूरदास की विनय पत्रिका	≋)
१४ नवीन पद्य-संग्रह	।॥)
१५ कहानी-कुञ्ज	॥=)
१६ बिहारी-संग्रह	≋)
१७ कवितावली	।॥)
१८ सुदामा चरित्र	।)
१९ कबीर पदावली	।॥=)
२० हिन्दी गद्य-निर्माण	१॥)
२१ हिन्दी साहित्य की रूप-रेखा	।)
२२ सती कण्णकी	॥)
२३ हिन्दी पर फारसी का प्रभाव	॥=)
२४ पार्वती मङ्गल	।)
२५ सूर पदावली	॥=)
२६ नागरी अंक और अक्षर	≋)
२७ हिन्दी कहानियाँ	१॥)
२८ ग्रामों का आर्थिक पुनरुद्धार	१।)
२९ तुलसी दर्शन	२॥)
३० भूषण-संग्रह भाग १	।-)
३१ भूषण-संग्रह भाग २	॥=)

(२) साधारण-पुस्तक-माला

१ अकबर की राज्यव्यवस्था	१)
२ प्रथमालंकार निरूपण	≋)

(३) वैज्ञानिक-पुस्तकमाला

१ सरल शरीर विज्ञान	॥), ।॥)
२ प्रारम्भिक रसायन	१)
३ सृष्टि की कथा	१)

(४) बाल-साहित्य-माला

१ बाल पञ्चरत्न	॥)
२ वीर सन्तान	।=)
३ बिजली	=)

(५) ओझा अभिनन्दन ग्रन्थ

१६)

मुद्रक—गिरिजा प्रसाद श्रीवास्तव, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग।
प्रकाशक—साहित्य-मंत्री, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।

माघ, फाल्गुण सम्वत् १९९६

सम्मेलन-पत्रिका

[भाग २७, संख्या ६, ७]

संपादक

श्री ज्योतिप्रसाद मिश्र निर्मल

साहित्य-मंत्री

हिन्दी साहित्य सम्मेलन

प्रयाग

वार्षिक १)

एक प्रति =)

विषय-सूची

सम्मेलन-पत्रिका

भाग २७] माघ फाल्गुण १९९६ [संख्या ६,७

क्या कबीर रामानन्द के शिष्य थे ?

[लेखक – श्री राकेश गुप्त बी० ए०, 'साहित्य-रत्न]

हिन्दी-साहित्य का इसे दुर्भाग्य ही कहिए, कि अभी तक हम उसके उन जगमगाते रत्नों के विषय में भी, जिन पर हमें तथा हमारे साहित्य को गर्व है, निश्चयात्मक रूप से बहुत कम विचार कर सके हैं। जहाँ तक रचनाओं का सम्बन्ध है, वहाँ तक तो तब भी कुछ ग़नीमत है, पर इससे आगे उनके जीवन-क्षेत्र में प्रवेश करते ही हमें पता चलता है कि हमारा ज्ञान भ्रम की एक अनन्त शैवालिनी के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। किंवदंतियों और जनश्रुतियों के धुँधले प्रकाश में हम सत्य को बरबस खोज लेना चाहते हैं, और असफलता की निराशा से बचने के लिए अक्सर हम अपने निर्णय पर सब दृष्टिकोणों से तर्क पूर्ण विचार किये बिना ही उसे सच मान लेते हैं। मेरे विचार से रामानन्द को कबीर का गुरु मान लेना भी एक ऐसा ही भ्रामक निर्णय है, जिसे किसी-किसी इतिहासकार ने तो बिना परिपुष्ट प्रमाण दिये ही निर्भ्रान्त सत्य मान लिया है।

रामानन्द के कबीर का गुरु होने के विषय में सबसे पहले शंका कदाचित् बाबू श्यामसुन्दर दास ने 'कबीर-ग्रन्थावली' की भूमिका में की थी। परन्तु उनकी शंका का आधार केवल रामानन्द और कबीर का समकालीन न होना था। श्री रामकुमार वर्मा ने अपने इतिहास में इन दोनों को समकालीन सिद्ध करते हुए बाबू श्यामसुन्दर दास की शंका को निर्मूल ठहराया और कबीर के रामानन्द का शिष्य होने के ही मत का प्रतिपादन किया। पंडित अयोध्या-

सिंह उपाध्याय ने भी इसी मत का समर्थन करते हुए 'कबीर वचनावली' की भूमिका में कई पृष्ठ लिखे हैं, जिनका मुख्य अंश हम नीचे उद्धृत करते हैं:—

"उनकी रचनाओं में हिन्दू शास्त्रों एवं पौराणिक कथाओं एवं घटनाओं के परिज्ञान का जितना पता चलता है उसका शतांश भी मुसल्मानी धर्म-सम्बन्धी उनका ज्ञान नहीं पाया जाता। जब वे किसी अवसर पर मुसल्मान धर्म पर आक्रमण करते हैं, तब उन्हीं ऊपरी बातों को कहते हैं, जिनको एक साधारण हिन्दू भी जानता है। किन्तु हिन्दू-धर्म-विवेचन के समय उनके मुख से वे बातें निकलती हैं, जिन्हें शास्त्रज्ञ विद्वानों के अतिरिक्त दूसरा कदाचित् ही जानता हो। इन बातों से क्या सिद्ध होता है ? यही कि उन्होंने किसी परम विद्वान् हिन्दू महात्मा के सत्संग द्वारा ज्ञानार्जन किया था; और स्वामी रामानन्द के अतिरिक्त उस समय ऐसा महात्मा कोई दूसरा नहीं था।"

पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास में कल्पना की है कि रामानन्द जी के माहात्म्य को सुनकर कबीर के हृदय में उनका शिष्य होने की लालसा जगी होगी। इसके आगे आपने कहा है कि इसमें कोई संदेह नहीं कि कबीर को राम-नाम रामानन्द जी से ही प्राप्त हुआ। इस प्रकार से शुक्ल जी ने कबीर पर रामानन्द का प्रभाव मानते हुए भी उन्हें स्पष्ट-रूप से शिष्य-गुरु के सम्बन्ध में नहीं बाँधा। कबीर के रामानन्द का शिष्य होने का जो सबसे पुष्ट प्रमाण अभी तक दिया जाता रहा है, वह अधोलिखित पंक्ति है।

'काशी में हम प्रगट भए हैं, रामानन्द चिताए।'

यहाँ पर हम संक्षेप में इन सब तर्कों पर विचार करते हुए, अपनी कुछ निजी शंकाएँ, अपना निजी दृष्टिकोण रखने का प्रयत्न करेंगे।

सबसे पहले हमें यह देखना चाहिए कि रामानन्द और कबीर के सिद्धान्तों में कितना अन्तर है, और क्या किसी प्रकार भी हम कबीर की गुरु की भावना के साथ उस सैद्धान्तिक विरोध का समन्वय कर सकते हैं ? जाति और धर्म के सामाजिक बन्धनों को सर्वथा छिन्न-भिन्न करके हिन्दुओं के वर्णाश्रम धर्म के मूलोच्छेदन का प्रयत्न कबीर ने अपनी सारी शक्तियों के साथ किया।

रामानन्द का इस विषय में क्या मत था, इसके लिए हम श्री जे० एन० फर्कहार की "ऐन आउट लाइन आफ़ दि रिलिजस लिटरेचर आफ़ इण्डिया" नामक पुस्तक से, अंग्रेज़ी अवतरण का हिन्दी अनुवाद देना पर्य्याप्त समझते हैं "परन्तु इसका प्रमाण नहीं है कि उन्होंने पुजारी के कार्यों को ब्राह्मण तक सीमित रखने वाले नियम को शिथिल किया वरन् उन्होंने वर्ण भेद को भी सामाजिक संस्था के पद से हटाने की कोशिश की। केवल वर्ण भेद सम्बन्धी कुछ धार्मिक बंधनों को उन्होंने शिथिलता प्रदान की।" रामानन्द वैष्णव थे, राम को विष्णु का अवतार मानते हुए उनकी सगुणोपासना का प्रचार उनका मुख्य कार्य था; कबीर ने अवतारवाद और सगुणोपासना का 'सिरजनहार न ब्याही सीता' 'ताहि अगस्त अँचै गयो, इनमें को करतार' तथा 'दुनिया ऐसी बावरी, पाथर पूजन जाय' जैसे वाक्य कह कर अनेक स्थलों पर स्पष्ट विरोध और उपहास किया। रामानन्द हिन्दू थे, वेद, शास्त्र, स्मृति एवं पुराणों के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा थी; कबीर ने 'किरतिम इसमृत बेद पुराना' आदि कह-कह कर हिन्दुओं के सभी धार्मिक ग्रन्थों में अपना घोर अविश्वास प्रकट किया, और उन्हें केवल पाखण्ड के प्रचार का साधन बतलाया।

सारांश यह कि कबीर ने जन-समाज की जिन रूढ़ियों के प्रति विद्रोह की आवाज़ उठाई, उनमें से अधिकांश का रामानंद ने मनोयोग से प्रचार किया, अथवा यों भी कह सकते हैं कि रामानन्द ने भक्ति की जिस प्रणाली को, उपासना के रूप को प्रतिष्ठित करना चाहा, कबीर ने उसका खुले हृदय से विरोध किया।

पर क्या कबीर, जिन्हें ये 'गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागूँ पाँय' कहकर गुरु को ईश्वर से भी ऊँचा स्थान दिया है ? रामानन्द को अपना गुरु मानते हुए भी उनकी नीति-रीति का इतनी निरंकुशता के साथ विरोध कर सकते थे ? क्या गुरु से कुछ भी दुराव न रखने वाले, उन्हें सब कुछ समर्पित करने वाले कबीर से हम यह आशा करें कि वे अपने गुरु के सिद्धान्तों के इतने कठोर, इतने अनुदार समालोचक हो सकते थे ? क्या सतुरु के एक-एक शब्द पर अपार विश्वास एवं अनन्त श्रद्धा रखने के लिए कहने वाले कबीर के विषय में भी यह मत सम्भव हो सकता है कि वे एक ऐसे व्यक्ति

को अपना गुरु मानते थे, जिसकी कड़ी आलोचना करने में ही उन्होंने अपना जीवन व्यतीत किया ? क्या अपने गुरु के चरण-चिह्नों पर आँख मूँदकर चलने में विश्वास करने वाले कबीर के विषय में हम यह सोचें कि उन्होंने उन रामानन्द को अपना गुरु माना होगा जिनकी एक भी बात का अनुसरण उन्होंने अपने सामाजिक प्रचार के क्षेत्र में नहीं किया ?

अब तनिक पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय के भी उस तर्क पर विचार कीजिये, जिसके द्वारा उन्होंने कबीर को रामानंद का शिष्य होना सिद्ध किया है। उनका कहना है कि कबीर ने हिन्दू-धर्म-ग्रन्थों की भीतरी से भीतरी बातों का ज्ञान रामानंद के सत्संग से ही प्राप्त किया होगा ! हम भी मानते हैं कि उन्होंने रामानंद का सत्संग किया, पर किस लिए ? स्पष्ट रूप से हिन्दू-धर्म-ग्रन्थ तथा रामानन्द के उपदेशों को सच मानकर उनका प्रचार करने के लिए नहीं वरन् उनकी आलोचना और उनका विरोध ही करने के लिए। यदि कबीर के इस रूप में भी उपाध्याय जी उनकी शिष्य भावना को सुरक्षित पायें, तो अपनी धृष्टता के लिए उनसे क्षमा माँगने के अतिरिक्त मैं और क्या कहूँगा !

इस बात को साहित्य का प्रत्येक विद्यार्थी जानता है कि कबीर ने अपनी किसी भी रचना को स्वयं लिपिबद्ध नहीं किया, और यह भी लगभग सभी विद्वानों ने माना है कि कबीर की रचना में उनके शिष्यों की भी अनेक शब्द और साखियाँ मिली हुई हैं। ऐसी परिस्थिति में कबीर के ग्रन्थों में 'रामानन्द चिताए' जैसे एक-आध वाक्य पाकर हम निर्भ्रान्त रूप से एकाएक कोई निर्णय नहीं दे सकते। यदि उस पूरे पद को ध्यान-पूर्वक देखा जाये, जिसमें कि यह वाक्य आया है, तो हमारी उपर्युक्त शंका को और भी प्रश्रय मिलता है। फिर 'रामानंद चिताए' कहने से रामानंद के गुरु होने का स्पष्ट रूप से बोध नहीं होता। यदि इस पद को कबीर-कृत भी माना जाये तो अधिक-से-अधिक यह संभव हो सकता है कि कबीर दास रामानंद की कभी किसी एक बात से प्रभावित हुए होंगे। इस विषय में शुक्ल जी की जो यह कल्पना है कि रामानन्द का यश सुनकर बचपन में कबीर के हृदय में उनके शिष्य होने की लालसा जगी होगी, सम्भव है किसी सीमा तक ठीक हो, परन्तु इसके साथ ही इतना भी निश्चित है कि आगे

चलकर जब कबीर का वह व्यक्तित्व पूर्ण रूप से विकसित हुआ होगा, जो कि रामानन्द के व्यक्तित्व से बिलकुल भी मेल नहीं खाता, तब उन्होंने अपने को रामानन्द का शिष्य मानने की कल्पना को भी अपने हृदय से निकाल फेंका होगा।

आलोचकों का विचार है कि अद्वैतवाद की भावना कबीर में रामानन्द से ही आयी। इस विषय में हमें दो बातें कहनी हैं। एक तो यह कि जन-साधारण में प्रचार करते हुए कबीर और रामानन्द दोनों ने सूक्ष्म दार्शनिक विवेचन को प्रधानता नहीं दी, उनका उद्देश्य तो समाज को एक ऐसे मार्ग पर लगा देना था, जो उनकी सम्मति में उसके लिए श्रेयस्कर था, जैसा कि हम ऊपर दिखला चुके हैं। कबीर और रामानन्द द्वारा निर्दिष्ट पथ सर्वथा विभिन्न दिशाओं की ओर ले जाने वाले थे। दूसरी बात हमें यह कहना है कि कबीर में रामानन्द का अद्वैतवाद अपने शुद्ध रूप में नहीं मिलता, उनकी ईश्वर की भावना पाश्चात्य और पूर्वी विचारों का एक घोल है, जिसमें कबीर की किसी निश्चित विचार-धारा को हम निर्भ्रान्त रूप में स्थिर नहीं कर सकते। अतः इस आधार पर कबीर और रामानन्द के बीच शिष्य और गुरु के सम्बन्ध की कल्पना करना कल्पना मात्र ही होगी। फिर हठयोग द्वारा गुरु की सहायता से ईश्वर को प्राप्त करने का जो रूप कबीर ने रक्खा है, क्या उसका रामानन्द से कुछ भी सम्बन्ध था ? क्या कबीर के गुरु के आदर्शानुसार रामानन्द कभी उन्हें ईश्वर की ओर ले चलने में प्रयत्नशील हुए थे ? यदि हाँ, तो हम अपने विज्ञ पाठकों से प्रार्थना करेंगे, कि वे हमें बतलाने की कृपा करें कि कब, कहाँ और किस रूप में ? और यदि नहीं, तो हम कैसे मान लें कि कबीर ने कभी स्वप्न में भी रामानन्द को अपना गुरु माना होगा ? हम कैसे मान लें कि रामानन्द के मत का ज़ोरदार खण्डन करनेवाले कबीर ने 'पण्डितबाद बदंते झूठा' कहते समय रामानन्द को अपने लक्ष्य में नहीं रक्खा होगा ? हम कैसे मान लें कि कबीर में रामानन्द के प्रति, रामानन्द के सिद्धान्तों के प्रति इतनी स्पष्ट भर्त्सना होते हुए भी उन्होंने रामानन्द के लिए अपने हृदय में गुरु-भावना की एक क्षीण रेखा को भी उदय होने दिया होगा ?

इस प्रकार मैंने संक्षेप में अपने दृष्टि-कोण को कुछ प्रमाणों के साथ सामने रखने का प्रयास किया है। आशा है हिन्दी के विद्वान् पाठक इस पर सहृदयता-पूर्वक विचार करेंगे।

देशी-विदेशी प्रकाशक और लेखक

[लेखक श्री ब्योहार राजेन्द्र सिंह एम० एल० ए०]

विदेशी तथा स्वदेशी प्रकाशकों में कोई तुलना नहीं हो सकती। वे हजारों रुपया पुरस्कार में देकर लाखों कमाते भी हैं। इसलिये उनसे अपने गरीब प्रकाशकों की तुलना हम नहीं करना चाहते। वे तो लेखकों की पुस्तकें अपने ख़र्च से छापकर अपना रुपया फँसा देते हैं, यही बड़ा काम करते हैं। ऐसी दशा में लेखकों को भी उतनी ही रायलटी मिलती है जितना कि प्रकाशकों की बिक्री होती है। अतः इस दिशा में उनकी कोई शिकायत नहीं है। शिकायत सिर्फ़ वहाँ है जहाँ कि प्रकाशक अपने लाभ में लेखक को कोई हिस्सा नहीं देना चाहते, उसकी देशभक्ति या मातृभाषा-भक्ति का लाभ उठा कर स्वयं धनवान बनना चाहते हैं।

हाँ प्रकाशक उसी हालत में लेखक से स्वार्थ त्याग करने के लिये कह सकता है जब वह पुस्तकों को बिना मूल्य वितरित कर दे या केवल छपाई और कागज की कीमत लेकर पुस्तकें या पत्र पत्रिकाएँ छापे।

किन्तु जब पुस्तकों की लागत से दूनी चौगुनी कीमत रखी जाती है तब कोई कारण नहीं कि उसमें लेखक का पारिश्रमिक शामिल न हो। आश्चर्य तो यह है कि पुस्तकों पर कमीशन तो ५० फीसदी तक दी जाती हैं किन्तु लेखकों को २५ प्रतिशत भी पारिश्रमिक नहीं दिया जाता। कमीशन एजन्टों के भी बराबर लेखक का दर्जा नहीं माना जाता। प्रकाशकों से यदि इसके अंक माँगें जावें कि वे छपाई, कागज, विज्ञापन, कमीशन तथा पारिश्रमिक में कितना फीसदी खर्च करते हैं तो हमें आश्चर्यजनक बातें मालूम होती है।

मैं स्वीकर करता हूँ कि कई प्रकाशक भी हानि उठा कर पत्र पत्रिकाएँ चला रहे हैं। किन्तु प्रश्न यह है कि क्या हानि केवल लेखकों के मत्थे रक्खी जावे? जब विज्ञापन, छपाई, कागज, डाकखर्च सभी के लिये मूल्य देना पड़ता है तब केवल लेखक ही बिना मूल्य क्यों बचा जावे? असल में लेखक के विचार अमूल्य हैं। प्रतिपृष्ठ दो या तीन रुपये उनका असली मूल्य नहीं है

बल्कि केवल उतनी जगह का मूल्य है जिस पर वे विचार छाप कर जनता तक पहुंचाये जाते हैं। यदि लेखक उस जगह का प्रयोग अपने प्रचार के लिये करना चाहता है तो उसे चाहिये कि विज्ञापन की तरह संपादक को 'किराया' प्रदान करे और यदि लेख से पत्रिका का मूल्य बढ़ता है तो अवश्य ही लेखक को उसका पारिश्रमिक मिलना चाहिये।

लेखन कला को जीविका चलाने का साधन बना लेना अभी इस देश में संभव न भी हो तो भी लेखक के अध्ययन, पुस्तकों के मूल्य, समय के मूल्य तथा लेखन के मानसिक परिश्रम के लिये जितना भी दिया जावे थोड़ा है। इतना होते हुए भी हमें अपने देश की आर्थिक अवस्था के अनुसार पारिश्रमिक की कुछ न कुछ दर अवश्य नियत कर लेनी चाहिये तथा नियमित रूप से उसे लेखकों के पास पहुँचाना चाहिये। विचारशील लेखों, कहानियों, नाटकों कविताओं तथा अनुवादों के लिये अलग-अलग रेट नियत होना बहुत ज़रूरी है। प्रत्येक पत्रिकाओं को ये रेट नियत कर अपने लेखकों को सूचित कर देना चाहिये। जो लेखक उन नियमों के अनुसार लिख सकेंगे वे लिखेंगे अन्यथा चुप बैठेंगे। उन रेटों के होते हुए भी रचनाओं को स्वीकृत या अस्वीकृत करने का अधिकार सम्पादकों को रहेगा ही। मेरा ख़्याल है कि पारिश्रमिक निश्चित हो जाने से लेखक भी अच्छी चीजें लिखने के लिए सचेष्ट होंगे और सम्पादक भी उनसे उत्तम रचनाओं के लिये आग्रह कर सकेंगे। इससे दोनों को लाभ होने के साथ लेखकों के स्वाभिमान की भी रक्षा होगी। यदि सम्पादक या प्रकाशक ऐसा न करें तो लेखकों को चाहिये कि अपना संगठन करके या व्यक्तिगत रूप से अपना पारिश्रमिक निश्चित कर लें और उससे कम मिलने पर वे अपनी रचना देने से इन्कार कर दें। किन्तु जब तक वे जीविका के लिये पराश्रित रहेंगे तब तक उनके लिये ऐसा करना ज़रा कठिन है।

हमारी प्राचीन सभ्यता में वेद बेचना पाप समझा जाता था (बेचहिं वेद धर्म दुहि लेहीं) किन्तु उस समय विद्या प्राप्त करने वाला भी उसे बेचता नहीं था। किन्तु जब लेखक के परिश्रम को प्रकाशक अपनी पुस्तकों या पत्र पत्रिकाओं के रूप में बेचता है तब कोई कारण नहीं कि लेखक भी क्यों न उसका हिस्सेदार समझा जावे? इसके लिये यह कहा जा सकता है कि प्रकाशक भी तो हानि

उठा रहे हैं किन्तु इसका उत्तर है कि वे लेख के कारण यह हानि नहीं उठा रहे हैं बल्कि पाठकों के कारण। पाठकों के अभाव का फल लेखक को क्यों दिया जावे ?

विदेशी पाठकों में पठन-पाठन की रुचि होने ही का परिणाम है कि वहाँ के प्रकाशक लेखकों को लाखों रुपया देकर भी लाभ उठाते हैं।

एक विदेशी प्रकाशक ने पं० जवाहरलाल नेहरू को उनके 'आत्म-चरित' के लिये तथा मैकमिलन ने श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर की रचनाओं के लिये हज़ारों देकर भी लाभ ही उठाया है। इस दशा में नेहरू जी या टैगोर ने अपनी रचनाओं के लिये रुपया लेकर क्या पाप किया ? बल्कि मैं कहूँगा कि रवीन्द्रनाथ ने उसे विश्वभारती में लगाकर तथा पंडित जी ने देश सेवा में लगा कर उसका सदुपयोग ही किया है। मेरे विचार में यदि महात्मा गाँधी जी भी अपने आत्म चरित के प्रकाशन-सत्व के लिये विदेशी प्रकाशकों से रुपया लेते तो देश सेवा ही करते।

यहाँ जो लेखक अपने लेख भेजते हैं उन्हें पारिश्रमिक की आवश्यकता है या नहीं, इस बात को पूछने की भी पर्वाह नहीं की जाती। उन्हें साल भर बराबर पत्रिका भेजने की "उदारता" भी नहीं दिखलाई जाती। कोई-कोई सम्पादक तो बार-बार लिखने पर भी उत्तर देना आवश्यक नहीं समझते। टिकट भेजने पर भी लेख नहीं लौटाते। कोई-कोई सम्पादक पूरे वर्ष तो क्या जिस अंक में लेख छपता है उसे तक भेजने की कृपा नहीं करते। यहाँ तक कि वे लेख छपने की सूचना तक नहीं देते।

कुछ लेखक केवल पत्र पत्रिकाओं के पढ़ने के लोभ से लेख भेज दिया करते हैं पर यदि किसी में कुछ पढ़ने लायक है तो उसे ख़रीद कर ही पढ़ना अच्छा है। इसी नियम के अनुसार जो कुछ छापने लायक है उसे पारिश्र-मिक देकर ही छपना चाहिये। यदि पत्र-पत्रिकाएँ दरिद्र हैं तो उन्हें लेखों की याचना न कर आर्थिक सहायता की भी याचना करनी चाहिये। किन्तु नियम के नाते लेखों के लिये पारिश्रमिक मिलना ही चाहिये।

मैंने लेखकों और प्रकाशकों दोनों की हित की दृष्टि से ही यह प्रश्न उठाया है। आशा है विज्ञ पाठक, प्रमुख साहित्य सेवी और प्रकाशक इस पर विचार करेंगे।

हिन्दी-साहित्यकारों के प्रति उदासीनता

[लेखक — श्री मुकुटबिहारी लाल श्रीवास्तव बी० ए०]

वर्तमान हिन्दी-साहित्य पाश्चात्य एवं अन्य विश्व के उन्नत साहित्यों के सम्पर्क में आकर इस योग्य हो गया है कि वह युग धर्म की आवश्यकताओं और आदर्शों का अंकन करने लगा है। युग की प्रवृत्ति के अनुसरण के कारण ही, आज हिन्दी, प्रेमचन्द जैसे अमर औपन्यासिक, सर्वश्री गुप्त, हरिऔध, 'प्रसाद', 'निराला', 'पन्त' प्रभृति कवि, द्विवेदी जी जैसे गद्यलेखक, पं० रामचन्द्र शुक्ल जैसे प्रकाण्ड आलोचक पा सकी है। फिर भी पढ़े-लिखे कहलाने वाले आज भी दुर्भाग्यवश, हिन्दी और उसके साहित्य के प्रति उदासीन हैं। वे अंग्रेज़ी साहित्य के दर्जनों उपन्यास-लेखकों, पचासों कवियों, निबन्ध लेखकों, आलोचकों के नाम गिना सकते हैं। यही नहीं वे उनकी कृतियों, पात्रों का विवरण भी दे सकते हैं, सैकड़ों वाक्य जबानी सुना सकते हैं, अंग्रेजी फूलों, वृक्षों और पक्षियों के नाम, जिन्हें उन्होंने स्वप्न में भी नहीं देखा, बतला सकते हैं; पर वे हिन्दी के प्रमुख साहित्यकारों के भी शायद नाम न बता सकेंगे; पुस्तकों, पात्रों का वर्णन तो अलग रहा। इसका एक कारण यह है कि वे हिन्दी के प्रति उदासीन हैं। इसी उदासीनता के फल-स्वरूप हिन्दी-साहित्य का पाठक-संसार छोटा है। अच्छी पुस्तकों के हजार-हजार के कुछ ही संस्करण निकल कर रह जाते हैं; पत्र-पत्रिकाएँ भी थोड़ी संख्या में छपती हैं और लेखकों को पारिश्रमिक भी नहीं मिलता। यही कारण है कि श्री प्रेमचन्द जैसे कलाकार जिन्दगी भर गरीबी की गोद में आहें भरते रहे। विश्वकवि ठाकुर के निमंत्रण पर कलकत्ते तक का खर्च न होने कारण, प्रेमचन्द को उस महापुरुष का निमंत्रण अस्वीकृत करना पड़ा। अपने साहित्य-जीवन के प्रारंभ के पहले, लण्डन की सड़कों पर फिरने वाला, गरीब बर्नडशा आज देश की साहित्यिक-जागरुकता के कारण लक्ष-पति बना हुआ है।

यह दुर्दशा साधारण पाठक और प्रकाशक की उदासीनता से ही हो, सो बात भी नहीं। हमारा धनिक समाज, साहित्यिक संस्थाएँ एवं राजनीतिक नेता भी हिन्दी के प्रति उदासीन हैं। आज भारत में कितने सेठ,

लक्ष्मीपति, राजे महाराजे हैं जिनकी सहायता से लेखकों, साहित्यकारों का भला हो रहा है ? ऐसे कितने रुपये वाले हैं जो अमूल्य साहित्यिक कृतियों पर प्रोत्साहन के लिए परितोषिक देते हैं ?

हमारे साहित्यक एवं असाहित्यिक राजनीतिक नेता भी इन साहित्यकारों के प्रति उदासीन हैं। यह ठीक है कि हिन्दी न जानने वाले नेतागण उदासीन हो सकते हैं; पर हिन्दी जानने वालों के लिए कौनसा बहाना है ? रूसीक्रान्ति के समय लेनिन और मेक्सिम गोर्की (प्रसिद्ध उपन्यासकार) के संबन्ध को देख हृदय आनन्द से भर जाता है। अन्नाभाव में लेनिन और गोर्की आधा-आधा डबल रोट खाते हैं; प्रत्येक समय गोर्की लेनिन के साथ रहता है। गोर्की की मृत्यु पर देश-व्यापी शोक मनाया जाता है; शाही जुलूस निकाला जाता है; अन्त्येष्ट क्रिया के समय फौजी ढंग की शाही तोपें छूटती हैं; इससे अधिक किसी साहित्यकार का और क्या मान दिया जा सकता है ? भारत में प्रेमचन्द की तुलना गोर्की से की जा सकती है। गांधीयुग के, गांधीवाद के, भारतीय किसानों के वह अमर साहित्यकार थे। किन्तु उनकी स्मृति-रत्ता के लिये क्या किया गया ? आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द, भारतीय-साहित्य की सर्वतोमुखी प्रतिभा बाबू जयशंकर 'प्रसाद' की स्मृति के लिए क्या किया गया ? द्विवेदी जी सिर्फ हिन्दी में (हिन्दुस्तानी में) लिखते थे; 'प्रसाद' संस्कृतमय हिन्दी लिखते थे। खैर इन दोनों को जाने दीजिए। क्या मुंशी प्रेमचन्द हिन्दी-उर्दू दोनों के माने हुए मुस्तनद मुसन्निफ नहीं थे ? उनकी 'चौगाने हस्ती' का कितना मान हुआ ? उर्दू वाले प्रेमचन्द जी को हिन्दी वालों से अधिक मानते थे। फिर प्रेमचन्द जी के लिए कुछ किया गया ? उधर पंजाब सरकार ने डाक्टर सर मुहम्मद इकबाल के स्मारक बनाने के लिए कई हजार की मंजूरी दी है। ऐसी दशा में सच तो यह है कि हमारे नेता भी हिन्दी-साहित्याकारों के प्रति उदासीन हैं।

राजनीतिक नेताओं की उदासीनता परिस्थिति और पालिसी के कारण किसी हद तक त्तम्य भी समझी जा सकती है पर हमारी साहित्यिक संस्थाओं एवं यूनीवर्सिटियों की उदासीनता किसी भी हालत में त्तम्य नहीं है। हमारी संस्थाओं ने कितने साहित्यकारों को सम्मानित करके उपाधियां

दी हैं ? आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपने एक भाषण में—शायद द्विवेदी मेला में—कहा था कि मुझे पता नहीं कि मुझे 'आचार्य' की उपाधि कब और किसने दी ? इन उपाधियों से हमारे साहित्यकारों का मान नहीं बढ़ जाता; वरन् स्वयं हमारा मान बढ़ जाता है। हिन्दू यूनीवर्सिटी प्रति वर्ष राजों-महाराजों को एल० एल० डी० आदि की उपाधियाँ देकर सम्मानित करना अपना सौभाग्य समझती है, पर उन साहित्यकारों को जो आजीवन अपने हृदय के रक्त से साहित्य-उपवन सींचते आये हैं, एक साधारण डिग्री देने में वह क्यों हिचकती है ? इन संस्थाओं की हमारे अमर साहित्यकारों के प्रति उदासीनता नहीं तो क्या है ? इस दिशा में 'राजेन्द्र कालेज' के अधिकारियों का प्रयत्न अनुकरण योग्य है। श्री शिवपूजन सहाय जी को हिन्दी का प्रोफेसर बनाकर उन्होंने बड़ी हिम्मत का कार्य किया है तथा एक आम आदर्श उपस्थित किया है।

इसीलिये हमारे साहित्यकार स्वयं उदासीन वृत्ति के हो गये हैं। गरीबी, आपदा सब सहते हुए वे लिखते रहते हैं। हिन्दी लेखक का जीवन तो सिर्फ लेखन पर ही निर्भर है। प्रेमचन्द, 'प्रसाद', प्रभृति के उदाहरण सामने हैं। मुंशी नवजादिक लाल का जीवन इसी गरीबी की एक दुखद कहानी है, फिर कौन इस पेशे को इख्तियार करे ? इसे इने गिने कर्मठ और लगन वाले ही अपनाते हैं। उन्हें मान की भूख नहीं। उन्हें भीतर से कोई प्रेरित करता है कि लिखो और वे टैगौर के 'क्षुधित पाषाण' के नायक की तरह विवश होकर लिखते हैं। ऐसी दशा में प्रत्येक हिन्दी प्रेमी का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह उनके मान की, उनकी आर्थिक परिस्थिति की फिक्र करे। यदि ऐसा न होगा तो चिन्ता, गरीबी उन्हें शीघ्र उठा लेगी। मुंशी प्रेमचन्द से फादर सी० एफ० एण्ड्रयूज़ ने कहा था कि आप अपनी पुस्तकों का अंग्रेजी अनुवाद करवा डालिए, संशोधन आदि का जिम्मा मैं लेता हूँ। इस पर भी उदासीन मुंशी जी ने कहा था कि जिस वक्त लोग यह महसूस करेंगे कि मेरी रचनाओं का अंग्रेजी अनुवाद हो, उस दिन वह स्वयं हो जायगा।

हिन्दी साहित्य प्रेमियों, धनिकों, हिन्दी पाठकों, संस्थाओं और नेताओं को चाहिये कि वे इस उदासीनता को दूर करें और हिन्दी के साहित्यकारों को अमर बनाने और उनकी स्मृति-रक्षा का प्रयत्न करें।

युक्तप्रान्त की अदालतों में हिन्दी

[लेखक—श्री कुबेरनाथ शुक्ल एम० ए०, व्याकरणाचार्य]

युक्तप्रान्त के न्यायालयों में हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि का असह्य अपमान देख कर किसी भी न्याय-प्रिय मनुष्य के हृदय में क्षोभ उत्पन्न हो सकता है। परन्तु यह बड़े आश्चर्य की बात है कि इस तरफ प्रान्त के बड़े बड़े लोगों का विशेषतः हिन्दी-साहित्य-प्रेमियों का यथोचित ध्यान आकृष्ट नहीं हुआ है। अदालतों का सम्बन्ध सर्वसाधारण से है। अतः इनकी कार्यवाहियाँ उसी भाषा में होनी चाहिये जिसे अधिक से अधिक लोग बोलते हों तथा लिखते पढ़ते हों। इस प्रान्त में हिन्दी बोलनेवालों की संख्या बहुत अधिक है। ८६ प्रतिशत से कहीं अधिक जनसंख्या हिन्दुओं की है और वे प्रायः सब हिन्दी ही बोलते हैं और लिखते पढ़ते हैं। गाँवों में प्रायः मुसलमान भी हिन्दी ही बोलते हैं। प्रान्त के स्कूलों में हिन्दी पढ़ने वाले छात्रों की संख्या, हिन्दी के समाचार पत्रों, पत्रिकाओं तथा प्रति वर्ष के नये नये ग्रन्थों के प्रकाशन की संख्या की ओर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी ही इस प्रान्त की प्रतिनिधि भाषा है। इस समय को तो छोड़ दीजिये, आप ८५ वर्ष पूर्व की सन् १८४४-४५ की प्रान्तीय डाइरेक्टर जेनेरल या शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर की सन् १८७७-७८ की रिपोर्ट देखिये। उससे यह स्पष्ट हो जावेगा कि 'हिन्दी ही इस प्रदेश की देश भाषा है।' ऐसी स्थिति में प्रान्त की प्रतिनिधि भाषा हिन्दी का प्रान्तीय अदालतों में इतना असम्मान क्यों हो रहा है यह प्रश्न विचारणीय हो जाता है।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम भाग में प्रान्तीय अदालतों की भाषा फारसी थी। परन्तु इससे यूरोपीय शासकों तथा प्रान्तीय जनता को अनेक प्रकार की अड़चनें पड़ती थीं। फल स्वरूप सरकार ने फारसी के स्थान पर अंग्रेजी और देशी भाषाओं में अदालतों का काम करने की घोषणा की। युक्त प्रान्त में हिन्दी-उर्दू का प्रश्न था, अतः यह विचारणीय हुआ कि अदालतों का काम हिन्दी में हो या उर्दू में? अंग्रेजी सरकार ने सन् १८३७ ई० में उर्दू को

अदालती भाषा बना दिया। तब से आज तक अदालतों में उर्दू का अखण्ड साम्राज्य बना हुआ है। हिन्दुओं ने सरकार के इस निर्णय पर बड़ा भारी असन्तोष प्रकट किया परन्तु इन बातों को सुनता कौन है? सरकार उस समय टस से मस न हुई। बाद में पूज्य पं० मदन मोहन मालवीय प्रभृति सुप्रतिष्ठित सज्जनों के सतत उद्योग तथा अध्यवसाय से १८८९ ई० में सरकार ने हिन्दी को भी अदालती भाषा मान लिया। परन्तु इस बीच में उर्दू ने अदालती दुनिया में अपना साम्राज्य ऐसा सुदृढ़ कर लिया कि हिन्दी के कारण उसकी कोई विशेष क्षति नहीं हुई और वह आजतक अदालतों में सम्मानित हो रही है।

लगभग १०२ वर्षों से अदालतों का काम उर्दू में होता आ रहा है। इस आधार पर हिन्दी के साथ अन्याय करना कदापि उचित नहीं कहा जा सकता। केवल प्राचीनता के आधार पर अनुचित कार्य का समर्थन नहीं होना चाहिये। भारतीय कई सौ वर्षों से पराधीन हैं अतः वे स्वतन्त्र भी नहीं हो सकते, यह भी क्या कोई तर्क है? किसी का समर्थन या विरोध इस आधार पर होना चाहिये कि उससे जनता को कहाँ तक लाभ है और कहाँ तक हानि। उर्दू के विरोध में सब से बड़ी बात यह है कि इसमें प्रान्त के बहुत ही थोड़े लोग लिखते पढ़ते हैं। अधिकांश जनता उर्दू नहीं जानती। अतः लोगों को न्याय कराने में बड़ा ही कष्ट होता है। उर्दू में अर्जी लिखनेवाले अर्जीनवीस जनता से बड़ा अनुचित लाभ उठाते हैं। पैसे खूब लेते हैं पर काम अच्छी तरह नहीं करते। अदालती कागजों के उर्दू में होने के कारण अधिकांश लोग उन्हें पढ़ भी नहीं सकते और मुकद्दमों की पैरवी तक नहीं कर सकते। फलस्वरूप वे मुकद्दमें हार तक जाते हैं।

यद्यपि अधिकांश जनता को उर्दू के कारण कष्ट हो रहा है तथापि अदालतों में हिन्दी प्रचलित नहीं हो सकी है। इसका कारण यह है कि प्रान्त के बड़े बड़े लोगों का काम अंग्रेजी से चलता हैं। मुसलमानों को हिन्दी से कोई प्रयोजन ही नहीं है। उनका काम उर्दू से चलता है। मध्यम श्रेणी के हिन्दुओं का काम किसी तरह अंग्रेजी और उर्दू से चलता है। बच गये शहरों के छोटे छोटे लोग तथा ग्रामीण भाई। इन्हीं को हिन्दी की आवश्यकता है। परन्तु इन बेचारों के कष्टों को सुनता कौन है? हमें दुःख है कि

अदालतों में काम करने वाले अधिकांश वकील और मुख्तार हिन्दी प्रेमी हैं। ये लोग हिन्दी का सम्मान क्यों नहीं कर रहे हैं ? हिन्दी में कार्य प्रारम्भ करने पर संभव है पहले कुछ लोगों को कष्ट हो परन्तु यह निश्चय है कि थोड़े दिनों के बाद देव नागरी लिपि की वैज्ञानिकता तथा सर्व गुण सम्पन्नता के कारण न्यायालयों में काम करने वाले सभी लोगों को विशेष सुविधा प्राप्त होगी।

इस वर्ष काशी के अधिवेशन में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का ध्यान इस तरफ आकृष्ट हुआ है। हमें पूर्ण विश्वास है कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन अदालतों में हिन्दी के सम्मान के लिये पूर्ण प्रयत्न करेगा तथा न्यायालयों में प्रेक्टिस करने वाले हमारे वकील और मुख्तार भाई भी हिन्दी भाषा की उन्नति के लिये यथोचित सहयोग प्रदान करेंगे। यह संभव है कि जो लोग विशेष वृद्ध हैं और जन्म भर से उर्दू में काम करते आ रहे हैं उनका सहयोग न मिले परन्तु जो नवयुवक हिन्दी प्रेमी हैं, वे तो निस्सन्देह हिन्दी भाषा और साहित्य की उन्नति के लिये पूर्ण रूप से उद्योग कर सकते हैं।

लेखकों और विद्वानों से

हिन्दी साहित्य सम्मेलन की मुखपत्रिका 'सम्मेलन पत्रिका' आप के पास जाती रहती है। हम चाहते हैं कि 'सम्मेलन पत्रिका' ठीक समय पर प्रकाशित हो तथा साहित्यिक पाठ्य-सामग्री तथा प्राचीन और वर्तमान काव्यों की आलोचनाओं, प्रगतिशील साहित्यिक और खोजपूर्ण लेखों से यह युक्त हो। ऐसी दशा में आप ऐसे विद्वानों की सहायता की आवश्यकता है। इसलिये शीघ्र ही कोई श्रेष्ठ साहित्यिक लेख भेजने का कष्ट कीजिये। साथ ही आप से निवेदन है कि अपने इष्ट मित्रों तथा हिन्दी प्रेमियों को इसका ग्राहक भी बनवाइये। यदि ग्राहक-संख्या पर्याप्त हो गई तो पृष्ठ संख्या और पाठ्य सामग्री में भी वृद्धि की जा सकेगी।

—साहित्य मंत्री

कविता और आचार

[लेखक—श्री शिवप्रसाद अग्रवाल एम० ए०, 'साहित्य-रत्न']

इधर कुछ दिनों से साहित्य-क्षेत्र में 'कलावाद' का बोलबाला है। नवयुवक साहित्यिक इसके अंधभक्त हो रहे हैं। जिसे देखिए वह यही कहता हुआ पाया जाता है कि 'कला कला ही के लिए है,' 'कला का उद्देश्य कला ही है।' इस प्रमाद की भद्दी नकल पाश्चात्य साहित्य विशेषकर अँगरेज़ी-साहित्य से हुई है। यूरोप में कला के सिद्धान्त शीघ्र बदलते रहते हैं। डा० बैडले ने इंगलैण्ड में कला-सम्बन्धी प्राचीन सिद्धान्तों का अंत करके अपना नया सिद्धान्त 'कला कला ही के लिए' प्रतिपादित किया। इसके फलस्वरूप लोग कला और जीवन के क्षेत्रों को पृथक्-पृथक् समझने लगे। वे समझने लगे कि कला और जीवन में कोई सम्बन्ध नहीं है। कला जीवन की समस्याओं का विवेचन नहीं करता और उसमें जीवन के सिद्धान्तों का समावेश नहीं होता। उसमें सदाचार का कोई स्थान नहीं है। यदि किसी कला में जीवन की दशाओं का उद्घाटन हो तो वह सच्ची कला नहीं। कला किसी साध्य का साधन नहीं। उसका साध्य वही है। इस प्रकार 'कलावाद' द्वारा काव्य और जीवन के सम्बन्ध-विच्छेद के प्रयत्न हुए हैं। इस प्रकार के विचारों का दुष्परिणाम काव्य पर भी अन्य कलाओं की भाँति पड़ा है। कविगण अनूठी उक्तियों को ही काव्य समझने लगे हैं। उनकी रचनाएँ जीवन और जगत से उदासीन होने लगी हैं। काव्य में जीवन का विश्लेषण न रह कर सूक्तियों की भरमार होने लगी है। काव्य में जीवन के पहलुओं का विवेचन न होकर कल्पना के साथ खिलवाड़ होने लगा है। यहाँ तक कि प्रबन्ध-काव्य का स्थान मुक्तक ने ले लिया है। अब प्रबन्ध-काव्य के लिए क्षेत्र ही नहीं रह गया है। जीवन से भिन्न सामग्री द्वारा प्रबन्ध-काव्य की रचना हो ही कैसे सकती है? वर्तमान कालीन कविता में ये प्रवृत्तियाँ स्पष्टतः दृष्टिगत हो रही हैं। समालोचकों की दृष्टि इस प्रकार के काव्य-प्रवाह पर पड़ने लगी है, यह हर्ष का विषय है।

क्या काव्य जीवन से अलग रह सकता है? क्या काव्य कल्पना की बेपर

की उड़ान भर कर ही काव्य कहला सकता है ? क्या काव्य उक्ति का अनूठा-पन मात्र है ? कवि एक जीवधारी व्यक्ति है। उसका जो कुछ अनुभव होता है वह जीवन से ही होकर आता है। उसी अनुभव को वह काव्य-रूप में समाज को भेंट करता है। काव्य का जगत या जीवन से भिन्न कोई सत्ता नहीं है। उसके द्वारा जीवन की भिन्न-भिन्न समस्याओं का विवेचन और दशाओं का उद्‌घाटन किया जाता है। वास्तव में काव्य कवि के जीवन का चित्र है जिसमें जीवन सम्बन्धी बातों पर विचार प्रकट किया जाता है। हाँ, इतना अवश्य है कि सामान्य जीवन में कवि के व्यक्तिगत जीवन का लय हो जाता है।

जीवन का विवेचन करता हुआ, उसका विश्लेषण करता हुआ, कवि जीवन के भीतरी सिद्धान्तों की व्याख्या से अपने को पृथक नहीं कर सकता। किसी-न-किसी प्रकार की जीवन से सम्बन्धित शिक्षा वह देता ही है। जहाँ जीवन का विवेचन रहेगा वहाँ किसी-न-किसी प्रकार के नैतिक सिद्धान्त रहेंगे ही। नीति को जीवन से अलग नहीं किया जा सकता। अतः नीति को काव्य से अलग नहीं किया जा सकता। मैथ्यू आर्नल्ड नामक एक सुप्रसिद्ध अँगरेज़ समालोचक कहता है—

"कविता वस्तुतः जीवन की आलोचना है। कवि का महत्व अपने विचारों को सुन्दर और सशक्त ढंग से जीवन व्यतीत करने के प्रश्न पर लागू करने में है। वह कविता जो नीति का विरोध करती है जीवन का भी विरोध करती है। वह कविता जो नीति से उदासीन रहती है जीवन के प्रति भी उदासीन रहती है।"

कविता मानव-हृदय की अनुभूति है और मानव-हृदय में ही पहुँचाई जाती है। अतः उसका और आचार का नित्य सम्बन्ध होना वांछनीय है। इन दोनों की घनिष्ठता के बिना लोकोपयोगी कविता का निर्माण नहीं किया जा सकता। जो कवि अपनी रचना में आचार सम्बन्धी बातों का उल्लेख नहीं करता, जो कवि समाज को सन्मार्ग पर लाकर उसके उद्धार का प्रयत्न नहीं करता, जो कवि अपनी कविता में नीति और मर्यादा का प्रतिपादन नहीं करता, वह और क्या करता है ? उसकी रचना का अस्तित्व ही किस लिए है ? मर्यादा और आचार का बहिष्कार करके क्या कविता लोक का उपकार

कर सकती है ? पवित्र भावों का संचार करना श्रेष्ठ कविता का कर्तव्य है। जो कविता आचार की शिक्षा नहीं देती वह अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकती। उसे कुछ समय पश्चात् संसार से मिट जाना होगा। जब वह समाज का कुछ हित-साधन ही नहीं करेगी तो समाज उसकी रक्षा क्यों करेगा ? समाज को आचार की नितान्त आवश्यकता होती है। नैतिक नियमों के पालन बिना समाज का कार्य नहीं चल सकता। प्रत्येक समाज में कुछ-न-कुछ नियम रहते हैं जिनका पालन करना उस समाज के प्रत्येक व्यक्ति को आवश्यक होता है। यहाँ तक कि चोरों और डाकुओं के समाज में भी आचार का स्थान है। वे लोग सर्व-साधारण के साथ भले ही नैतिक व्यवहार न करें पर आपस में तो नैतिक नियमों को बर्तते ही हैं। चोरी या लूट के धन-विभाजन में वे न्याय से काम लेते हैं। एक दूसरे की वस्तु को कभी नहीं चुराते। कहना न होगा कि सामान्यतः जीवन में सर्वत्र आचार या नीति का नियंत्रण देखा जाता है। जहाँ उसका उल्लंघन हुआ जीवन जीवन नहीं रह जाता। नीति-रहित जीवन विष के समान समाज का घातक होता है। तब यह कैसे सहन किया जा सकता हैं कि कवि अपने काव्य में दुराचार का प्रतिपादन करे, हमें गंदी बातों का पाठ पढ़ावे, हमारा आचार भ्रष्ट करे ?

कविता का उद्देश्य, जैसा कि हमारे पूर्वज आचार्यों ने बतलाया है, लोकोत्तर आनन्द की अनुभूति कराना है। काव्य-प्रदत्त आनन्द को उन्होंने, 'ब्रह्मानन्द सहोदर' कहा है। क्या 'ब्रह्मानन्द सहोदर' की अनुभूति ऐसे काव्य से हो सकती है जिसमें नीति-रहित जीवन का चित्र खींचा गया हो ? इस प्रकार का आनन्द तो उसी काव्य में उपलब्ध हो सकता है जिसमें मानव-जीवन का आदर्शमय लोकोपयोगी भव्य रूप खड़ा किया गया हो, जिसमें आत्मा को उत्तरोत्तर उच्चता की ओर अग्रसर करने के साधन जुटाए गए हों, जिसमें अनुकरणीय सिद्धान्तों की उद्भावना की गई हो। वही काव्य है। काव्य की कसौटी पर वही खरा उतरता है। ऐसे काव्य का रचयिता अपना उद्धार तो करता ही है परन्तु साथ ही साथ समाज का भी उद्धार कर लेता है। जिस कार्य के सम्पादन करने में हजारों उपदेशक कृत-कार्य नहीं होते, उसको वह अकेला ही पूरा कर लेता है। गोस्वामी तुलसी-दास ऐसे ही काव्य-प्रणेता थे। उनके 'रामचरित मानस' में मानव-जीवन

का सर्वोत्कृष्ट रूप देखने को मिलता है। नीति और आदर्श के साथ काव्य का भव्य रूप मन को मुग्ध करने वाला है। मानस के द्वारा हिन्दू-जाति का कितना उपकार हुआ है यह बतलाना शब्द की शक्ति के बाहर है। यदि गोस्वामी जी अपने काव्य में आचार और मर्यादा का स्वर्ण-संयोग न कराते तो क्या यह उपकार संभव था? काव्य को जीवन और शक्ति प्रदान करने वाला रसायन आचार ही है।

इस सम्बन्ध में कवि को एक बात का ध्यान रखना आवश्यक है। आचार-सम्बन्धी सिद्धान्त मानव-जीवन की स्वाभाविकता न छीन ले। ऐसा न हो कि जिन आदर्शों का कवि अपने काव्य में प्रतिपादन करे उन तक पहुँचना मनुष्य असंभव समझे। यदि ऐसा होगा तो काव्य मानव-समाज का कुछ भी हित न कर सकेगा।

इसके अतिरिक्त यह भी नहीं भूल जाना चाहिए कि आचार-शिक्षा काव्य के अन्यान्य उपयोगी एवं आवश्यक तत्त्वों को गौण न बना दे। जो कुछ कहा जाय वह भाव और कल्पना की लपेट में कहा जाय। जो कुछ कहा जाय वह जीवन की मार्मिक दशाओं का प्रत्यक्षीकरण करते हुए कहा जाय। उसमें शुष्कता अथवा नीरसता न हो। वह हृदय को चुटकी लेता हुआ उसमें प्रवेश कर जाय। इसी में काव्य की सफलता है, इसी में काव्य का महत्व है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो गया होगा कि "काव्य का लक्ष्य जीवन के मार्मिक पक्ष को गोचर रूप में लाकर सामने रखना है, जिससे मनुष्य अपने व्यक्तिगत संकुचित घेरे से अपने हृदय को निकाल कर उसे विश्वव्यापिनी अनुभूति में लीन करे।" इसके भीतर जीवन के आदर्श भी आ जाते हैं, क्योंकि नीति के आदर्शों के अवलम्बन बिना आत्मा विश्वात्मा में लीन होने की क्षमता नहीं प्राप्त कर सकती। अतः स्पष्ट है कि काव्य और आचार का नित्य और घनिष्ठ सम्बन्ध है। काव्य को आचार या नीति से अलग नहीं किया जा सकता। हिन्दी के वर्तमान कवियों को पश्चिमवालों की नकल नहीं करनी चाहिए। इसी में उनका और हिन्दी-साहित्य का कल्याण है।

डलमऊ का कवि-घराना

[लेखक—पण्डित देवीदत्त शुक्ल]

रायबरेली जिले में गंगा के दाहिने किनारे पर डलमऊ नाम का एक कस्बा है। यह एक ऐतिहासिक जगह है। यहाँ एक पुराने किले का टीला है, जिसमें प्रारम्भिक बौद्ध कालीन दीवार का अवशेष अब भी मौजूद है। इससे सिद्ध होता है कि यह स्थान कम से कम दो हजार वर्ष पुराना है। मुसलमान-काल के भी काफी चिह्न यहाँ पाये जाते हैं और उस काल में यह जगह बहुत अधिक प्रसिद्ध रही है। फिरोजशाह तुगलक ने अपने समय में यहाँ एक मदरसा खोला था। उनके समय में यहाँ दाऊद मुल्ला नाम के हिन्दी के एक कवि थे। मुल्ला साहब मलिक मुहम्मद जायसी से पहले हुए थे। उन्होंने 'चाँद रानी' नाम की हिन्दी में एक कथा-पुस्तक लिखी थी। वह पुस्तक अब नहीं मिलती है। उसके दो पद्य 'अवध गजेटियर' में दिये गये हैं, वे पद्य ये हैं—

वर्ष सात सै हते उनासी, तहिश्रा यह कवि सरस अमासी।
साह फिरोज दिहली सुलतानू, ज्योना शाह वजीर भा खानू।
डलमउ नगर बसै नौरंगा, ऊपर कोट तरे बह गंगा।
धर्मी लोग बसे भगवंता, गुन ग्राहक नागर चितवन्ता।

ऐसे डलमऊ नगर में ब्रह्म भट्टों का एक घराना रहा है, जो पिछले समय तक विद्यमान था। यद्यपि इस घराने के कवि नरहरि-घराने के कवियों जैसी प्रसिद्धि नहीं प्राप्त कर सके, पर उनका भी अपना महत्व था। खेद है, इस घराने के कवियों का विवरण क्रमपूर्वक नहीं प्राप्त है। इस घराने के पहले कवि छेम थे। इनके पहले के कवियों के नाम नहीं मिलते हैं। छेम शिवसिंह सरोज में हुमायूँ के दरबार के कवि लिखे गये हैं। यदि ऐसा है तो वे नरहरि के समकालीन ठहरते हैं। 'सरोज' में इनका निम्न पद्य उदाहरण-स्वरूप दिया गया है—

थरनि थरनि थरहरत डरनि रथ तरनि पलट्टेहु।
धूम धाम ध्रुव-लोक-सोक सुरपति अति पट्टेहु॥

गवन रहित सम्मीर नीर नद नदी निघट्टेहु।
करनि निकरि डर चिकरि कहरि खैबर परचट्टेहु॥
हिमगिरि सुमेर कैलास डिगि जब हहरि हहरि संकर हँस्यो।
कवि 'छेम' कोपि हजरतअली जुल्फकार कम्मर कस्यो॥

हुमायूँ के दरबार में होने से छेम का कविता-काल १६ वीं सदी का मध्य-काल सिद्ध होता है। छेम के बाद उनके घराने में कौन-कौन कवि हुए, इसका कोई पता नहीं लगता।

छेम के बाद उनके घराने में १९ वीं सदी के मध्य में बादेराय हुए। 'सरोज' में उनका उत्पत्तिकाल १८८२ विक्रमी दिया गया है और उदाहरण-स्वरूप उनका निम्न पद्य उद्धृत किया गया है—

वही ज्ञान ज्ञाता वही सुमति को दाता,
करामात दरसाता अंग ब्याल लपटाय कै।
गरे मुण्डमाला कंठ कालहू को काल,
ससि सोहत है भाल रीझे डमरू बजाय कै।
ऐसे समै महिमा कहै को महराज जू की,
'बादेराय' गायो गुन कवित बनाय कै।
सकल सुमति सुख सम्पति सहित दै कै,
साँकरे में संकर सहाय करो आय कै॥

मिश्रबन्धु विनोद में लिखा है कि बादेराय लखनऊ के राजा दयाकृष्ण के आश्रय में रहते थे। बादेराय के सम्बन्ध में ठाकुर मानसिंह ने हमें लिखा है—इनके जन्म-काल इत्यादि का कोई पता नहीं चलता है। मिहीलाल इनके पुत्र थे। इनके वंशज पथवारीदीन स्टाम्प-वेन्डर अब भी डलमऊ में मौजूद हैं। कहा जाता है कि इनका पुराना घर गिर गया और जो पुस्तकें इत्यादि थीं उसी में रह गईं। पता लगाने से केवल निम्नलिखित कवित्त मिल सका, जो सेवा में प्रेषित है—

जौ लगि मुनिन्द इन्दु सहित गिरन्द सिन्धु,
जौ लगि फणिन्द भुव भार धरिबो करै।
जौ लौं धनाधीस गन ईस औ गिरीस जौ लौं,
जौ लौं सृष्टि ईस सदा सृष्टि भरिबौ करै॥

कहै 'बादेराय' मारतंड मारकंड जौलौं,
जौ लौं व्योम गंग सुर लोक ढरिबो करै।
बासव की साज महाराज श्री जगतसिंह,
सहित कुटुम्ब तौ लौं राज करिबौ करै॥

मिहीलाल 'मलिन्द'---ये छेम के घराने के बादेराय के पुत्र थे। इनका जन्म-संवत् 'सरोज' में १९०२ संवत् दिया है। 'विनोद' में लिखा है कि ये गौरा (रायबरेली) के तालुकदार भूपालसिंह के आश्रय में रहते थे। इनका एक पद्य इस प्रकार है—

सोहै दण्ड चण्ड जे अखण्ड महि मण्डल में,
दारिद बिहंडन में धीरज धरात है।
देस औ विदेस नर-ईसन सों भेट करि,
करि सरवर नेक नेक ठहरात है।
गिलिम गलीचा पदमालय समूह सदा,
घोड़े पील पालकी हमेश दरसात है।
भनत 'मलिंद' महराज श्री भुआलसिंह,
तेरी भागि देखे ते दरिद्र भागि जात है। (सरोज)

पञ्चम---ये भी छेम के घराने के थे। 'सरोज' में इनका जन्म-संवत् १९२४ दिया है। 'विनोद' में इनका रचना-काल १९२४ बताया गया है जो ठीक जान पड़ता है। 'सरोज' में इनकी रचना का एक उदाहरण दिया गया है—

उज्वल उदारताई गावत पुराने लोग,
जोग करिबे को जोगी बसत महिन्द्र हैं।
रत्नाकर को फनिन्द देत न अबेर राख्यो,
भाख्यो पार पावत न महिमा फनिन्द्र हैं।
'पंचम' सुकवि धरा धरे उपकार हेत,
चित्त कथा राम की बसत कहा इन्द्र है।
शम्भु के बसे ते देवगन के लसे ते आजु,
सिवगिरि सोहै गिरिगन को गिरिन्द्र है॥

हरि प्रसाद 'चोवा'—ये भी छेम के घराने के थे। इनका रचनाकाल १९३० संवत् है। सरोजकार के समय में ये वर्तमान थे। उन्होंने लिखा है कि

ये असोथर के राजघराने के पुराने कवि हैं। थोड़े दिनों से होलपुर में रहते हैं। इनकी रचना का एक उदाहरण यह है—

पालत ये निगमागम सेतु अनीत कै पीत न दण्डन हारे।
धर्म धुरन्धर दानि सिरोमनि बैरिन के मद खण्डन हारे।
सुद्ध मनो कुल कीरति मंजु दसौ दिसि देसन मण्डन हारे।
वीरबली सिवसिंह नरेस उदण्ड दोऊ भुजदण्ड तिहारे॥
(सरोज)

इस घराने के अन्तिम कवि अजदत्त हुए। इनके दर्शनों का सौभाग्य हमें भी हुआ है। इनके सम्बन्ध में ठाकुर मानसिंह ने हमें यह विवरण लिख भेजा है—

अजदत्त का नाम केशव प्रसाद ब्रह्म भट्ट था। इनके पिता का नाम लल्लू था। लल्लू के पिता शिवदीन थे और शिवदीन के पिता मिहीलाल थे, जिनका नाम ऊपर दिया है। कहा जाता है कि इनके वंश में कोई न कोई कवि होता ही चला आया है, परन्तु कोई कविता नहीं मिल सकी। अजदत्त जी लगभग संवत् १९३२ विक्रम में पैदा हुए। १३-१४ वर्ष की ही आयु में इनके पिता का देवलोकवास हो गया और घर का भार इन्हीं पर पड़ गया। एक छोटा भाई भी साथ था जो अब स्टाम्प-वेन्डर है (पथवारीदीन*) और आप थे नेत्र-विहीन। तीन ही वर्ष की आयु में आँखें उठीं, जिससे आँखें जाती रहीं। इनका लिखा 'पथवारी अष्टक' बेती कल्यानपूर में है। उससे पता लगता है कि इन्होंने १९४८ वि० में काव्य करना आरम्भ किया। कोई ग्रन्थ नहीं रचा, पढ़े ही न थे। परन्तु सब लोग यही जानते थे कि पढ़े हुए हैं। पाहो (रायबरेली) के तालुकेदार ठाकुर राजेन्द्रबख्श के यहाँ रहते थे। इनका सम्वत् १९६४ में देहान्त हो गया।

अजदत्त जी के जो पद्य मिल सके हैं वे भेज रहा हूँ—

जै गनेस कलि हरन बिपति भंजन सुखदायक।
सिद्धि करन भय हरन उमा सुत हौ सब लायक॥

*'निराला' जी ने इन्हीं का अपने 'कुल्ली भाट' में परिचय दिया है।

तन बिसाल गज बदन भाल पर धरे सुधाकर।
भुजा चारि अति ललित तिलक सोभित ललाट पर॥
विद्या निधान सुभ के सदन दास जानि बुधि दीजिये।
'अजदत्त' कहै करजोरि कै लम्बोदर सुनि लीजिये॥१॥

प्रथम गनेस के कमलपद बन्दन कै,
बंदत हौं ईश के चरण सीस नाय कै।
बन्दौं अवधेस औ दिनेस सेस सारद को,
बन्दौं मैं सुरेस के चरन उर ध्याय कै।
बन्दौं कमलासिन उमा के पद बन्दन कै,
बन्दौं मैं पवन सुत हिये ठहराय कै।
बन्दौं अज नारद को बन्दौं मैं बशिष्ठ आदि,
बन्दौं विस्वामित्र सनकादि आदि गाय कै॥२॥

पन तीन तो बीति गये सुख में,
पन चौथे में तो सब कार तजो।
परवार ना साथ में जाई कोऊ,
हमरी सिख मानि ले मूढ़ अजो।
धन धाम न काज में आई कोई,
'अजदत्त' कहै यह साज सजो।
तप जाय कै कीजै कहूँ बन में,
अब तो सब छांड़ि कै राम भजो॥३॥

बद्रीनाथ भैरोनाथ ललित केदारनाथ,
जगन्नाथ बैजनाथ विश्वनाथ बालसाथ।
मंजु जवरेहीनाथ रुचिर उंकारनाथ,
द्वारिका के नाथ गदा पद्म संख चक्र हाथ।
भनै 'अजदत्त' सिद्धिनाथ उदैनाथ मिलि,
परम त्रिलोकीनाथ गावत हौं गुणगाथ।
उमिरि दराज चाहौं देत हौं अशीष अस,
ऐ जै नाथ करुना करैं तिहारी शिवनाथ॥४॥

ग्रीषम प्रचंड चंदापुर को महीप तेज,
संकरबकस राना पावस मनंतु है।
कोविद कवीन को अनन्त वरषंत दान,
भूप शिवपाल सिंह सरद हसंत है।
भनै 'अजदत्त' गौरापति है हेमंत चारु,
रामपाल शिशिर लखे अहि कपंत है।
शत्रुन हनन्त पुण्य पूरन करंत नृप,
राजेन्द्रसिंह बनो मानो बाँकुरो बसंत है ॥५॥

बढ़त अखंड पाप देख्यो पृथीमंडल में,
आय दशरत्थ जू के गोद ही में ठटिगे।
धनुष को तार्यो मिथिलेश जू के राख्यो प्रण,
ऋषि मुनि देवन के दुख दूरि हटिगे।
भनै 'अजदत्त' लीलाकारी भगवान सदा,
याही हेतु पाप कै संयोग सब डटिगे।
जगत मातु जानकी को छलि दसकंध ल्यायो,
या ही पाप कीन्हे ते अनेक पाप कटिगे ॥६॥

साले काम सायक समीर सरसाले आले,
ताले देत दादुर मिसाले मोरवान के।
चातक रसाले पीव कहत कसाले होत,
ज्वाले विरहागिन धुकाले धुरवान के।
भनै 'अजदत्त' नदी नाले उमड़ाले सब,
लतिका विसाले रसवाले जोरवान के।
विना नन्द लाले ये विहाले करडाले वाले,
गरजैं घनाले काले माले मेघवान के ॥७॥

खात मुकताहल मराल हैं प्रसिद्ध,
मानसर मैं रहत नहीं ताकत तलैया हैं।
जानि बैस बंस में सपूत शिरमौर तुम्हें,
छंद के प्रबंध जोरि कीरति करैया हैं।

राजन के राज महराज राजेन्द्रसिंह,
या ते 'अजदत्त' सरणागत रहैया हैं।
चाकर तिहारे हम आँकर सदा के कवि,
साँकर परे हो नहीं काँकर चुनैया हैं ॥८॥

शौक शऊर शुदम दिलनम,
हर दम गुलजार बजार शुकूर।
सनाव सिफत करदन हररोज,
बरायद मकसद वक्त जरूर।
भनै 'अजदत्त' वहार हिनौज,
महोदर शाहजहाँ मशहूर।
रहे सर कायम ताज व तख्त,
खुदा बख्शै फरजन्द हुजूर ॥९॥

बखसत मौजें महाराज राज ऐन्द्रसिंह,
मुल्क दर मुल्क खल्क चश्म वर दीदा हो।
इल्म दर कद्र शौक साहब खोदासिनास,
बदन बवर्फ आफताब शशु नीदा हो।
गुफ्त 'अजदत्त' जोर जालिम रकीबों पर,
दीद में हुजूर रूये बश्म शरमीदा हो।
हिल गये सीने गर्क गाहिब पसनि अर्क,
मिस्ट सीम आप दीदार चूँ कसीदा हो ॥१०॥

वीरन में वीर रनधीरन में रनधीर,
छत्रिन में छत्र छत्रधारिन में छत्र धर।
ज्ञानिन में ज्ञानवारौ दानिन में दान वारौ,
ध्यानिन में ध्यानवारौ सौगुनो विहद्द बर।
कहै 'अजदत्त' विद्यावानन में विद्यवान,
आज विद्यवानन में विद्या को विनोद घर।
राजसर हंस सो करत न्याय नीति भूप,
राजा इन्द्र सिंह हैं प्रसंस वैस वंसवर ॥११॥

४

संजम अचार योग जप-तप दान करि,
पूजा पाठ ज्ञान ध्यान नेम व्रत धारे रहा।
व्याकरण काव्य कोश वैद्यक पुराण वेद,
नीके न्याय नीति धर्म कर्म अनुसारे रहा।
भनै 'अजदत्त' पद पूजत नरेश बहु,
परम प्रवीन प्रेम पूरन पसारे रहा।
राजगुरु चंडिकासहाय महाराज द्विज,
राजा महाराज राज-काज को सँभारे रहा ॥१२॥

इनके सिवा डलमऊ में और भी कवि हो गये हैं, परन्तु उनमें से दो कवियों का कुछ पता लग सका है। उदाहरण के लिए लालन दास को लीजिए। इनका समय 'सरोज' में संवत् १६५२ दिया गया है। इनके सम्बन्ध में ठाकुर मानसिंह ने हमें लिखा है--

आप कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे और मोहल्ला चौरासी के रहने वाले थे। डलमऊ ही में पैदा हुए थे और साधु-जीवन बिताकर लगभग १८९० विक्रम में परलोकवासी हुए। इनका कोई वंशज अब डलमऊ में नहीं है, अतएव जन्म काल तथा पिता का नाम किसी को नहीं मालूम है। डलमऊ के कुछ लोग इनको अपना कुलगुरु मानते हैं और इनकी खड़ाऊँ अब भी डलमऊ में हैं जो पूजी जाती हैं। मोहल्ला शेरन्दाजपुर में इन्होंने एक मन्दिर बनवाया था जो गिर गया था। अब उसका जीर्णोद्धार हो रहा है। ......। लोगों को उनकी कवितायें कंठाग्र हैं। दो-चार नमूने नीचे दिये जाते हैं--

मंडापूर मियाँ का भेला चौरासी अविनासी है।
बहुत दिना चौहट्टा भरमा अब शरन्दाजपुर बासी है॥
सुरति जंजीर प्रेम की डोरी गरे लागि मजबुत्ता है।
संत शिकारी सब सों यारी पर घर जाय न ढुकता है॥
जूठन खात अघात पेट भर परे पलँग पर सुत्ता है।
हाजिर रहत हुजूर रैन दिन 'लालन' हरि को कुत्ता है॥
दर दर भरमै पर घर सरमै बसत फिरै तरु रूखों के।
अपने घर बैठे जय सों ऐंठे दिल दाग न दूखों के॥

सिद्धपीठ डलमऊ नगर जहँ शोभित गंग किनारे हैं।
जहाँ राग सिरमौरन के जहँ हरि सुमिरन हरि न्यारे हैं॥
'लालन' जब ते एक नाम लिय उद्यम सकल बिसारे हैं।
हम भये गुलाम राम साहब के रमि रहो राम हमारे हैं॥
दालम ऋषि की दलमऊ, सुरसरि तीर निवास।
तहाँ दास 'लालन' बसैं, करि अकास की आस॥

सरोजकार ने इनका एक पद्य यह दिया है—

दीप कैसी जाकी जोति जगर-मगर होति,
गुलाबास बादर मैं दामिनी अलूदा है।
जाफरानी फूलन मैं जैसे हेमलता लसै,
तामैं उग्यो चन्द लेन रूप अजमूदा है।
'लालन जू' लालन के रङ्ग सी निचोर रँगी,
सुरँग मजीठ ही के रङ्गन जमूदा है।
बकि न बेहूदा लखि छबिन को तूदा ओय,
अतर अलूदा अङ्गना के अङ्ग ऊदा हैं॥

दूसरे कवि मान जी हैं। इनका नाम रामलाल और इनके पिता का नाम बलदेव था। आप कान्यकुब्ज ब्राह्मण (दुबे) थे। रहनेवाले थे लच्छी खेरा के जो सरेरी के परगने में है, पर ननहाल थी डलमऊ में। इनके नाना गङ्गापुत्र थे और यजमानी थी। इससे डलमऊ में ८ही वर्ष की आयु से आकर रहने लगे। लगभग सम्वत् १९१८ वि० में लच्छी खेरा में जन्म हुआ और १९६६ वि० में शरीरान्त हो गया। एक पुस्तक हस्तलिखित है जो इन्होंने १९५० वि० में लिखी थी। इनके पुत्र रामचन्द्र नामी हैं, जिनको 'लाल' भी कहते हैं। परन्तु इनको कविता का कोई विशेष शौक नहीं है। उक्त पुस्तक का अन्तिम अंश इस प्रकार है।

मची सुलंक हाइ हाइ जोर ज्वाल छाइ छाइ,
रामबाज धाइ धाइ रच्छ पच्छि भंजियो।
उड़ाइ कुंभ अस्त कै प्रहस्त को निरस्त कै,
समस्त जोर दस्त कैस क्रोध ह्वै बिसर्जियो।

अकंप नाद ब्रह्म भीख बीस बाहु गर्व पीस,
काटि मेघनाद सीस पास आय अज्झियो।
अजीत बंधुराम को सो जीति कै अजीत इंद्र—
जीत जीत नाम नाम पाय पाय गज्झियो॥

महेंद्र जीत मुंड काटि रच्छ मारि भूमि पाटि,
लंक के कपाट फाट कीस जुथ्थ पावली।
मुराति कौ संघारि कै नराति कौ पछारि कै,
निकुंभ कुंभ मारि कै विडारि राच्छसावली।
भनंत 'मान' इंद्रजीत लच्छन लसंत गर्व,
गर्ववंत गज्जि कै रजंत मर्कटावली।
बजंत व्योम दुंदुभी जंजंत पुष्प बृष्टि सो,
स्रिजंत दिव्य अस्तुतं समस्त देवतावली॥

गथ्थनि अकथ्थ समरथ्थ दसरथ्थ सुत,
मथ्थन समथ्थ दसरथ्थ सुत मथ्थिरन।
सदधन नदहन नद अनहद बल,
सदल विरद अनबद जस गद गन।
मंदलनि नदन मरद्दनि गरद करि,
रद दुर हुदल सुव छल मद दलन।
मान कवि रात्तजन ऋषिमन अत्तभव,
रच्छ जय लच्छमन लच्छ जय लच्छमन॥१५२॥

रच्छ पति पच्छ करि रच्छ पति सच्छ तव,
जस अच्छ रिपु अच्छर निवच्छरन।
तच्छन विपच्छन विजच्छन प्रतिच्छ असु,
सुच्छनि सुपच्छिन समच्छ करि अच्छपन।
मान कवि रच्छ कपि रिच्छ दल रच्छ,
अपरच्छ क्रत पच्छ बल भच्छ हन यच्छगन।
रच्छ कुल रच्छ उर रच्छन विपच्छ कर,
क्रच्छ युत वच्छ जन रच्छ जय लच्छमन॥१५॥

(अमृतगति) जय जय लछमन लछमन, लच्छन रच्छ सपंड ।
जीत्यो सुरपतिजीत कँह, भंडि प्रधान प्रचंड ।
भंडि प्रधान प्रचंड प्रति भट दंड हुवन उदंड प्रति भय ।
दंड धृति भुजदंड हयबल बंड करषि कुदंड करि छय ॥
दंडस्सर लग गंडग्ग गिरि चंडक्कुपिन विहंड गज हय ।
तंड त्रिदश उमंड प्रगट अषंड ध्वनि ब्रह मंडज्जय जय ॥१५४॥

दोहा—जय जय धुन छावहिं गगन, गावहि मङ्गलगान ।
बरसावहिं सुरमुनि सुमन, बरषावहि 'कवि मान' ॥१५५॥
जय जय सुर उचरहि वृष्टि, कुसमावलि सज्जहि ।
जामवंत हनुमंत अंगदादिक भट गज्जहि ।
इन्द्रजीत कँह जीति चल्यो, सौमित्रि हित्त करि ।
कट्ट सीस दशसीसनन्द, कपि-ईस-अग्रधरि ॥
जुग जोरि पानि 'कवि मान' कह, सीस आनि पद कंज मँह ।
कर जसहि गहो रनवीर वर मिल्यो धीर रघुवीर कँह ॥ १५६ ॥

जय लछिमन रनधीर बीर बीराधि बीर वर ।
जय उदंड भुजदंड चंड-कोदंड बाण धर ।
जय अमंद आनंद कंद खल फंद निकंदन ।
कृत वृंदारक वृंद चरन सुपकंद विवर्धन ।
जय जय समथ्थ दसरथ्थ सुत हथ्थ मथ्थ दसमथ्थ सुत ।
जन बानि मानि कवि मान सिर धरहु पानि वरदान युत ॥१५७॥

वृत्तिबोध पिंगल रच्यौ, भाषा अमर प्रकास ।
नरहरि लछिमन, चरित अरु हनुमत काव्य पचास ॥१५८॥
बान वेद वसु ससि मिती माघ सुदी गुरुवार ।
श्रीमन्मान्य कविन्द्र ने कीन्हो ग्रंथ उदार ॥१५९॥

इति श्रीमान कवि विरचितायाँ लक्ष्मण मेघनाद युद्ध वरनन् समाप्तम् ॥
चैत्र मासे शुक्ल पक्षे तिथौ चतुर्थ्यां दिन भौमवासरान्वितायां॥श्री संवत् १९५७
लिखित रामलाल उर्फ माना दुबे मुकाम लछई खेर ॥

इस लेख के तैयार करने में हम ठाकुर मानसिंह के विशेष रूप से कृतज्ञ हैं। ठाकुर साहब डलमऊ में पुलिस के सब इन्स्पेक्टर रहे हैं। उन्होंने हमारे लिए वहाँ के कवियों का विवरण संग्रह कर देने की कृपा की है।

हिन्दी संसार

[लेखक—श्री जगन्नाथप्रसाद शुक्ल, आयुर्वेदपंचानन, संग्रह-मन्त्री]

आगरा नागरी प्रचारिणी सभा—आगरे की नागरी प्रचारिणी सभा धीरे-धीरे अपना कार्यक्षेत्र बढ़ा रही है। यों तो इसे स्थापित हुए २८ वर्ष हुए; किन्तु इधर १५-सोलह वर्षों में उसने अपनी अच्छी उन्नति की है। सभा के पास एक पुस्तकालय है, जिसमें सभी विषयों की पांच हजार से अधिक पुस्तकें हैं। नित्य पचास मनुष्य उससे लाभ उठाते हैं। एक रुपये मासिक चन्दे में पुस्तकें सभासदों (सभा के सभासदों को वार्षिक दो रुपया चन्दा देना पड़ता है) के घर भी पहुँचायी जाती हैं। पुस्तकालय में एक महिला विभाग स्थापित किया गया है, जिसमें महिलाओं के लिये उपयुक्त पुस्तकों का संग्रह किया गया है, कई पत्र-पत्रिकाओं का भी प्रबन्ध है और उनके लिये एकान्त कमरे का प्रबन्ध है। बालकों में पढ़ने की रुचि बढ़ाने के लिये एक बाल पुस्तकालय भी खोला गया है, इसमें बालकों के पढ़ने योग्य मनोरंजक और उपदेशप्रद सात सौ पुस्तकों का संग्रह हुआ है; उनके योग्य पत्र पत्रिकाएं भी रखी गयी हैं। इस विभाग में भी पचासों बालक नित्य आते हैं। प्रयाग-हिन्दी साहित्य सम्मेलन की परीक्षाओं की पढ़ाई की सुविधा के लिये सभा एक 'हिन्दी साहित्य विद्यालय' भी खोले हुए है; जिसमें प्रथमा, मध्यमा और उत्तमा की पढ़ाई होती है। साथ ही सरकारी विशेष योग्यता की शिक्षा का भी प्रबन्ध है। इस विद्यालय का परीक्षा फल ८२ से ९० प्रतिशत रहा करता है। प्रति वर्ष दो सौ विद्यार्थी भिन्न-भिन्न कक्षाओं में अध्ययन करते हैं। शिक्षा निःशुल्क होती है और विद्यार्थियों के उपयोग के लिये पुस्तकालय और छात्रालय भी है। एक सार्वजनिक वाचनालय भी सभा ने खोला है, जिसमें १०० पत्र-पत्रिकाएँ आती हैं। यहां पाठकों की संख्या प्रतिदिन ३०० तक पहुँच जाती है। अब सभा नगर के अतिरिक्त जिले भर में हिन्दी प्रचार के लिये चलते फिरते पुस्तकालयों का प्रबन्ध करना आरम्भ किया है। इन पुस्तकालयों से भी प्रति मास एक हजार पाठक लाभ उठाने लगे हैं। अभी २० केन्द्रों में काम हो रहा है। अदालतों में हिन्दी प्रचार के लिये सभा ने दीवानी कचहरी में एक

लेखक रख छोड़ा है जो बिना कुछ लिये लोगों की दरख्वास्तें लिख दिया करता है। सभा ने एक अन्वेषण विभाग खोला है, जिसमें हस्त लिखित पुस्तकें और प्राचीन पत्र-पत्रिकाएं संग्रह की जाती हैं। उपयुक्त पुस्तकों को सभा प्रकाशित भी कर देती है। सभा प्रतिवर्ष एक नागरी सप्ताह मनाती है, जिसके द्वारा हिन्दी का प्रचार बढ़ाने का प्रयत्न किया जाता है। इस समय सभा के चार सौ सदस्य हैं। सभा के पास अपनी पर्याप्त भूमि है और उस पर भवन निर्माण का कार्य आरम्भ है। पुस्तकालय और वाचनालय के लिये भवन बन गया है। विद्यालय और छात्रालय के लिये अभी भवन की आवश्यकता है। जिसके लिये सभा दानी महोदयों से दान की आशा रखती है। हम सभा की सर्वथा सफलता चाहते हैं।

हिन्दुस्तानी की हठ—श्रीवेंकटेश्वर समाचार ने इस सम्बन्ध में एक लेख लिखा है जिसमें कहा गया है कि भारतीय कांग्रेस जब-जब अहिन्दुओं के सन्तोष विधानार्थ कोई कार्य करने पर उद्यत हुई है तभी तब भारत की सर्वश्रेष्ठ संख्यक जाति हिन्दुओं का अनिष्ट कर बैठी है और उनसे कोटि-कोटि हिन्दुओं को विषम मर्मवेदना हुई है। इसी तरह कांग्रेस के हिन्दी को हिन्दुस्तानी बनाने का यत्न भी अतीव कुफलप्रद प्रमाणित हुआ है। इस यत्न को देखकर सिवा थोड़े से अहम्मन्य कांग्रेसी हिन्दू-मुसलमानों के और कोई भी सन्तुष्ट नहीं हो सका है। जिन मुसलमानों के तुष्टिसाधनार्थ कांग्रेस अपनी राजनीति की वेदी पर हिन्दी भाषा की बलि चढ़ाने पर उद्यत हुई है, वह मुसलमान भी उसके इस कार्य से सन्तुष्ट नहीं। वह नहीं चाहते कि हिन्दुस्तानी के नाम से संस्कृत और अरबी फारसी शब्दों की खिचड़ी पका के उनकी प्यारी उर्दू का रूप बिगाड़ दिया जाय। उर्दू अवश्य ब्रजभाषा से बनायी गयी है, उसे मुसलमान अरब और फारस से नहीं लाये थे तथापि उसे इस प्रकार बनाने में मुसलमानों ने कई शताब्दी तक प्रयत्न किया है। इसी से वे समझते हैं कि कांग्रेस हिन्दुस्तानी की तलवार से उर्दू का गला रेत रही है। इधर हिन्दू भी घबड़ा रहे हैं कि इधर ५० साठ वर्षों में हमने जो हिन्दी का रूप बना पाया है वह हिन्दुस्तानी के पदार्पण-प्रसार से मिट्टी में मिल जाना चाहता है। क्योंकि हिन्दी में बिना क्रम और बिना प्रयोजन अरबी फारसी के शब्द भर देने से वह विकृत-कर्णकटु और भीषण दर्शन हो जायगी। सुन्दर

पद योजना द्वारा वही वाक्य मन्त्र का काम देता है किन्तु 'चाँद' या "महताव" चन्द्रदेव का असर कैसे ला सकेंगे। हमारी संस्कृति से सम्बन्ध रखने वाले यावत ग्रन्थ हिन्दी में हैं, तुलसी और सूरकी कृति हिन्दी में है। हिन्दी के हटाने और हिन्दुस्तानी के चलाने पर इन ग्रन्थों के साथ-साथ हिन्दू संस्कृति भी हिन्दुओं के हाथ से निकल जायगी। कांग्रेस निरी राजनीतिक संस्था होने के कारण किसी धर्म को माने या न माने; किन्तु धर्मप्राण हिन्दुओं के लिये उनकी संस्कृति ही उनका सर्वस्व है। ऐसी दशा में हमारी आन्तरिक कामना है कि कांग्रेस हिन्दुस्तानी प्रचार के अपने अनधिकार यत्न से सम्पूर्ण विरत हो। अन्यथा इसका जो विरोध होने लगा है—वह जैसे जैसे कांग्रेस अपनी भाषा संहारकारिणी नीति आगे बढ़ाने का यत्न करेगी वैसे ही वैसे यह विरोध प्रबल से प्रबलतर होता जायगा।

साहित्यसेवियों से—मध्यप्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के पण्डित भालचन्द्रराव तैलंग ने लिखा है कि छन्द प्रभाकर के प्रणेता और रीति तथा अलंकार ग्रन्थ के रचयिता बाबू जगन्नाथप्रसाद 'भानु' कवि के रचनात्मक कार्यों का गौरव करके उनके प्रति श्रद्धाञ्जलि समर्पित करने की आवश्यकता है। इसी को दृष्टि में रख रायपुर के प्रान्तीय सम्मेलन ने पूजा-भावना और साहित्यिक-जाग्रति को ध्यान में रख कुछ प्रस्ताव पास किये हैं। सम्मेलन का प्रस्ताव है कि भानु जी और व्याकरण प्रणेता पण्डित कामता प्रसाद गुरु के चरणों में अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पित किया जाय। इससे कृतज्ञता प्रकाश के साथ ही वर्तमान साहित्य-विकास का भी परिचय मिलेगा। आपका प्रस्ताव है कि इस योजना की सफलता के लिये शीघ्र ही सुव्यवस्थित प्रति-निधिक समितियाँ निर्मित कर देनी चाहिये। आप यह भी कहते हैं कि इस अभिनन्दन ग्रन्थ को श्रीवेंकटेश्वर प्रेस को प्रकाशित कर देना चाहिये।

ग्वालियर राज्य की भाषा—ग्वालियर राज्य में अदालती भाषा हिन्दी बना दी गयी है; किन्तु अफसरों की मर्जी से कभी कोई नोटिस हिन्दी में, कोई मराठी में, कोई अंग्रेज़ी में, कभी दो-दो भाषा में छप जाती है। सरकारी आज्ञा निकली है कि संवत् १९६० में कैलास वासी श्रीमन्त सरकार ने आज्ञा दी थी कि राज्य में कुल कार्यवाही हिन्दी भाषा में की जावे, सम्वत्

१९९४ में मजलिसे आम में भी प्रस्ताव पास हुआ था कि सेक्रेटरियट और अदालतों की भाषा हिन्दी की जावे अर्थात् ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जावे जिसे जनसाधारण सहज ही समझ सकें। इसलिये श्रीमन्त सरकार महाराजा साहब के आदेशानुसार आज्ञा प्रकाशित हुई है कि (अ) राज्य की भीतरी व्यवस्था से सम्बन्ध रखनेवाली बातों का नोटिफिकेशन हिन्दी भाषा में किया जाया करे। ध्यान रहे कि ऐसे शब्दों का प्रयोग हो जिन्हें जनसाधारण सहज ही समझ सकें (ब) फ़ारेन और पोलिटिकल नेचर के कानून और ऐक्ट, अन्तर्राष्ट्रीय अथवा बाहरी व्यवस्था सम्बन्धी मेडिकल या इंजीनियरिंग सम्बन्धी नोटिस टेकेनिकल शब्दों के प्रयोग के ख्याल से अंग्रेजी में छापे जा सकते हैं। (स) शेष नोटिस, डिपार्टमेंटल आर्डर और सर्कूलर अंग्रेजी और हिन्दी दोनों भाषाओं में प्रकाशित किये जाया करें।

साहित्य और सहृदयता—साहित्य और सहृदयता का 'कर्मवीर' में जिक्र करते हुए श्रीराम, 'साहित्य रत्न' लिखते हैं कि 'सहृदयता मानव हृदय का गीलापन है'। किसी जलाशय में एक छोटा सा कंकड़ डालिये उसमें तूफान तो नहीं उठेगा; किन्तु छोटी छोटी लहरें उठ कर एक के बाद दूसरे को मिलाती हुई सीमा के बाहर ढुलक पड़ेंगी। इसी तरह हृदय सरोवर में भी एक छोटी सी घटना भी हलचल मचा सकती है। किन्तु जिन्हें अपने स्वार्थ के सिवाय कुछ दीखता ही नहीं उनका सहृदयता से क्या सम्बन्ध? संकुचित हृदय क्यों सोचने लगा कि आत्मवाद से बढ़ कर कोई मानववाद भी है। सहृदयता और सभ्यता का गहरा सम्बन्ध है। सहृदयता के बिना मनुष्य को सभ्य समझना मक्कारी है। हृदयहीन सभ्य दूसरों का गला भले ही काट ले पर वह किसी का जीवन नहीं सुधार सकता। सहृदयता और साहित्य का तो गठबन्धन है। सहृदयता भगवान का वरदान है। जिसके पास यह नहीं है वह अमर कलाकार कभी नहीं हो सकता। लेखक में उदारता का होना जरूरी है, क्योंकि इस गुण के बिना वह दूसरों के साथ न्याय नहीं कर सकता और यह गुण सहृदयता के बिना प्राप्त नहीं हो सकता। यह हमारे विचारों को व्यापक बनाता है, जिससे कि हम विश्व कल्याण के काम आवें और संकुचितता के कठघरे में फँसे न रहें। सहृदय आदमी ही साहित्य का सच्चा निर्माता है। क्योंकि वह हृदय की प्रेरणा से ही लेखनी उठाता है। साहित्य के सौन्दर्य को समझने

की शक्ति सब में नहीं होती। जिसे सहृदयता देवी वरण करती है वह बिरला ही काव्य के रस को लूट सकता है।

राष्ट्रभाषा का प्रश्न—राष्ट्रभाषा के सम्बन्ध में श्रीयुत शालिग्राम श्रीवास्तव कहते हैं कि इसका निर्णय मनुष्य गणना की रिपोर्ट से अपने आप हो जाता है। उससे प्रकट है कि यहाँ के निवासी सब से अधिक हिन्दी के बोलने और समझने वाले हैं। अतः निस्सन्देह हिन्दी ही यहाँ की राष्ट्रभाषा कहलाने योग्य है। शहर और कस्बों के थोड़े से लिखे-पढ़े लोगों को छोड़ कर गाँवों के हिन्दू-मुसलमानों की भाषा एक है। जैसे गुजरात के हिन्दू गुजरातियों और पारसियों की गुजराती में कुछ फरक होता है किन्तु वह दोनों हैं गुजराती; उसी तरह मुसलमानों की भाषा को उर्दू कहना सत्य की हत्या करना है। जैसे अरब की भाषा अरबी, फारस की फारसी उसी तरह हिन्द की भाषा हिन्दी है। उर्दू शब्द किसी देश के नाम से सम्बन्ध नहीं रखता। भारतीय मुसलमान, अरब, ईराक आदि बाहरी देशों में 'हिन्दी' कहलाते हैं; किन्तु वहाँ वे इस पर झगड़ा नहीं करते कि हमें "उर्दू" कहा करो! 'हिन्दुस्तानी' शब्द मुहावरे के विरुद्ध है। तुर्किस्तान की भाषा को कोई तुर्किस्तानी नहीं तुर्की ही कहता है। उसी तरह हिन्दी शब्द ठीक है। शैली का झगड़ा भी व्यर्थ है; क्योंकि शैली बनाने वाली जनता होती है। इसलिये राष्ट्रभाषा में कोई काट छाँट नहीं कर सकता। यह तो एक स्वतन्त्र धारा है जो अपने आप बहती चली जाती है। आजकल जैसे अंग्रेज अपनी सुविधा के लिये हिन्दी, संस्कृत को रोमन अक्षरों में लिख लेते हैं उसी तरह मुसलमानों ने ईरानी अक्षरों में लिखना आरम्भ किया था। यद्यपि उनकी लिपि बहुत अपूर्ण और दूषित है तथापि देवनागरी अपनाना उनके लिये कठिन है। इसलिये हस्तक्षेप करना व्यर्थ है। कुछ आवश्यक परिवर्तन के साथ दोनों लिपियाँ साथ-साथ रहेंगी।

हिन्दी-साहित्यसेवी सहायकसमिति—इस विषय का आन्दोलन कोई चालीस वर्ष से बीच-बीच में कई बार उठा है कि हिन्दी संसार को मानसिक भोजन देनेवाले हिन्दी लेखकों की विपन्नावस्था में उन्हें आर्थिक सहायता पहुँचाने के लिये कोई स्थायी निधि स्थापित होनी चाहिये। हिन्दीसाहित्यसेवी कुछ अपवादों को छोड़ कर चिन्ता उत्पीड़न और क्लेश की सजीव मूर्ति होते हैं। अपने दिमाग का सत निकाल कर वह लेखिनी तूलिका से साहित्य चित्र को

रचना करता है, पेट काट कर और दिल मसोस कर वह पुस्तकें खरीदता है। पाठक उसकी लेखनी की दाद देते हैं पर उन्हें क्या मालूम कि साधना में वह अपनी जीवन ज्योति को बुझा रहा है—वह स्वयं अपने लिये बेवसी का पुतला है। इस सम्बन्ध में पण्डित श्री राम जी ने विचार पूर्ण लेख लिखा है। आप कहते हैं कि हिन्दी-साहित्यसेवीसहायकसमिति कायम होनी चाहिये। समिति का प्रत्येक सदस्य एक रुपया सालाना समिति को दे। अगर समिति का कोई सदस्य मर जाय तो प्रत्येक मेम्बर एक-एक रुपया और न्योते के रूप में (जैसा कि समाज में व्यवहार रूप में आता है) समिति को भेज दे। इस तरह मान लीजिये समिति के पाँच हजार सदस्य हैं तो एक कुटुम्ब को पाँच हजार की सहायता मिल जायगी। समिति की वार्षिक आय जो पाँच हजार की होगी उससे कर्ज भी दिया जा सकेगा। यह विषय ऐसा है जिस पर अच्छी तरह विचार होना चाहिये।

सिक्कों पर हिन्दी—श्रीयुत चन्द्रबली पांडे ने इस सम्बन्ध में एक लेख लिख कर दिखलाया है कि भारत के अंग्रेजी सिक्के पर प्रजा की भाषा न तो हिन्दी है और न उर्दू (बल्कि अंग्रेज़ी और फारसी है) सन् १८६३ ई० में भारत सरकार के सामने यह प्रस्ताव आया था कि भारत के सिक्कों पर हिन्दी और उर्दू को जगह दी जाय। उसी भारत सरकार ने सप्तम एडवर्ड के सिक्कों पर जगह दे दी शुद्ध फारसी को। उस फारसी को जिसे मुगल सरकार की अधीनता में कम्पनी सरकार ने सन् १८३७ में कचहरियों से देश निकाला दिया था। और उसकी जगह चालू कर दिया था देशी भाषाओं को। एक दिन था कि मुगल सरकार की देख रेख में शाहआलम बादशाह के नाम पर कम्पनी सरकार ने 'बनारस के मुल्क' के लिये एक पैसा चलाया, जिस पर हिन्दी अक्षरों में 'एक पाई सीका' तो लिखा ही गया, साथ ही साथ एक चिन्ह त्रिशूल भी बना दिया गया। किन्तु महारानी विक्टोरिया के निधन के उपरान्त चाँदी के सिक्कों पर फिर फारसी आ धमकती है और फिर कभी हटने का नाम तक नहीं लेती! पंचमजार्ज के शासनकाल में गिलट के सिक्कों तथा कागज के नोटों पर देशी भाषाओं को अवश्य स्थान मिल जाता है; अधिकांश फारसी भी उर्दू के रूप में रह जाती है! किन्तु चाँदी के सिक्कों पर किसी भी देश भाषा को अभी तक स्थान नहीं मिला।

प्राप्ति स्वीकार

[लेखक—श्री जगन्नाथप्रसाद शुक्ल वैद्य, संग्रह मन्त्री]

निम्नलिखित पुस्तकें हिन्दी संग्रहालय को प्राप्त हुई हैं। लेखक, प्रकाशक तथा प्रेषकों को इसके लिये अनेक धन्यवाद है।

हम कहाँ हैं ?—त्रिपुरी कांग्रेस के पहले देश और कांग्रेस की वर्तमान स्थिति का सिंहावलोकन करते हुए पं० जवाहरलाल जी नेहरू ने ८ लेख लिखे थे। जिनमें सभी पहलुवों का अच्छी तरह विचार किया गया था। कुछ सामयिक बातें छोड़कर जिस परिस्थिति और विवादों का इसमें सिंहावलोकन हुआ है उनमें मूलतः कोई अन्तर नहीं पड़ा। इसलिये यह निबन्ध अब भी उसी तरह मननीय और उपयोगी है। दाम =)

आर्थिक सवाल—देहातों के आर्थिक प्रश्नों पर श्रीयुत झवेर भाई पटेल ने (तेलघानी विभाग, ग्राम उद्योग संघ, वर्धा) इस पर अच्छा प्रकाश डाला है। गाँवों की गतिहीनता, धरती का भार, तिजारती फसलें, किसानों की कर्जदारी, फसलें और खेती, मालगुजारी, लगान की समस्या, सहकारिता और ग्राम संगठन पर मार्मिक विचार हुआ है। मूल्य ≡)

राष्ट्रीय गायन—वन्देमातरम्, झण्डे का गान आदि से लेकर जो राष्ट्रीय गान कांग्रेस में गाये जाते या देश में प्रचलित हैं, उन सबों का इसमें संग्रह है। सब साठ गायन हैं। मूल्य =)

खादी का महत्व—बम्बई के भूतपूर्व पार्लमेंटेरी सेक्रेटरी श्री गुलजारी लाल जी नन्दा ने खादी का महत्व, सभ्यता के विकास में खादी का भाग, खादी का अर्थ-शास्त्र, खादी का इतिहास, संगठन और नीति, खादी की निर्माण कला और खादी का उज्ज्वल भविष्य शीर्षक निबन्धों में इस विषय को अच्छी तरह स्पष्ट किया है। मूल्य –)॥

हिन्दुस्तान की समस्याएं—लेखक हैं पण्डित जवाहर लाल नेहरू। पिछले तीन चार वर्षों में आपने समय-समय पर जो लेख विविध विषयों में लिखे हैं, उन्हीं ३४ लेखों का इसमें संग्रह किया गया है। भारत की स्वतन्त्रता

से सम्बन्ध रखने वाले कोई विषय विचार करने से बच नहीं रहे हैं। देशदशा का अनुशीलन करने वालों को अवश्य पढ़ना चाहिये। मूल्य १)

स्वदेशी और ग्रामोद्योग—महात्मा गांधी जी के इस विषय के ३१ लेखों का इसमें संग्रह हुआ है। इससे स्वदेशी और ग्रामोद्योग के सम्बन्ध में महात्मा जी के विचारों को जानने में सहायता मिलेगी, जिससे सब लोग उनकी आशाओं को पूर्ण करने में संलग्न हो सकेंगे। मूल्य ॥)

आत्मकथा—महात्मा गांधी जी ने अपनी आत्मकथा को लिखते हुए अपने सत्य के प्रयोगों को इसमें लिख दिया है। जिससे उनका जीवन वृत्तान्त जानने के साथ ही पाठक उनके सिद्धान्त भी समझ सकता है। पुस्तक पाँच भागों में है और उनमें सब मिलाकर १६८ प्रकरण हैं। मूल्य १)

संक्षिप्त आत्मकथा—महात्मा गांधी की आत्मकथा को श्रीयुत महादेव देसाई और श्रीयुत हरिभाऊ उपाध्याय जी ने संक्षिप्त कर सम्पादन किया है। स्कूलों के लिये उपयोगी होने की दृष्टि से इसका सम्पादन हुआ है। इसमें भी ७० प्रकरण हैं। मूल्य ॥)

कांग्रेस का इतिहास—इसके लेखक श्रीयुत कृष्णचन्द्र विद्यालंकार और प्रस्तावना लेखक श्री पट्टाभि सीतारमैया महोदय हैं। पहले सीतारमैया जी ने मूल पुस्तक लिखी थी, वर्तमान लेखक ने उसे अब तक की घटनाओं से पूर्ण कर दिया है। उसी का यह परिशिष्ट भाग सन् १९३५ से ३९ तक के विवरणवाला है। मूल्य ॥)

दुनिया का रंगमञ्च—पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने विश्व-इतिहास की झलक लिखी थी। उसी का सन् १९३३ से ३८ तक की विश्व-इतिहास की झलक का ताजा अंश इसमें दिया गया है। मूल्य ।)

हमारे अधिकार और कर्त्तव्य—इसके लेखक श्रीयुत कृष्णचन्द्र विद्यालंकार और भूमिका लेखक श्री प्रकाश जी हैं। हमारे अधिकार और कर्त्तव्य के सम्बन्ध में २२ प्रकरणों में सब बातें इसमें समझायी गयी हैं। पुस्तक सब के पढ़ने योग्य है। मूल्य ॥)

राजनीति प्रवेशिका—अंग्रेज़ी में प्रोफेसर हेरल्ड वास्की की पुस्तक इस सम्बन्ध में उत्तम मानी जाती है। उसी का संक्षिप्त अनुवाद श्रीयुत गोपीकृष्ण विजय वर्गीय जी ने किया है। राज्य संस्था का स्वरूप, राज्य संस्था का स्थान, राज्य संस्था का संगठन, राज्य संस्था और अन्तर्राष्ट्रीय समाज, इस सम्बन्ध की पुस्तकों की सूचना नामक प्रकरणों में विचारणीय विषय समझाया गया है। मूल्य १॥)

ब्रह्मचर्य—संयम और सदाचार पर महात्मा गाँधी के ४१ लेखों का इसमें संग्रह हुआ है। नवयुवक ही नहीं सभी स्त्री-पुरुषों के पढ़ने योग्य है। मूल्य ॥)

सुगम चिकित्सा—देहात के साधारण पढ़े-लिखे भाई जिन बातों को जानकर गाँव की अच्छी सेवा कर सकें और अपने आस-पास मिलनेवाली दवाइयों से रोगचिकित्सा कर सकें, ऐसी ही बातों का इसमें संग्रह किया गया है। इसके लेखक हैं आयुर्वेदाचार्य श्रीयुत चतुरसेन शास्त्री वैद्य। पुस्तक बहुत काम की है। मूल्य ॥)

ऊपर लिखी १४ पुस्तकें सस्ता साहित्य मण्डल दिल्ली से प्रकाशित हुई हैं और वहीं से तथा लखनऊ से प्राप्त हो सकती हैं।

गीतापरिशीलन—पण्डित रामावतार विद्याभास्कार जी ने इसमें अद्वैत सिद्धान्त की प्रतिपादक शैली को ग्रहण कर श्रीमद्भगवद्गीता पर विचार किया है। विचार गहरे परिशीलन और दीर्घ दर्शन के द्योतक हैं। आपका ढङ्ग भी बोधगम्य और आकर्षक है। प्रत्येक श्लोक पर अन्वय, अर्थ और भाव देकर उसका मर्म अच्छी तरह समझाया गया है। विषय विश्लेषण बुद्धिमानी के साथ हुआ है। अन्त में परिशिष्ट भाग देकर ३३ प्रकरणों में रहस्यका उद्घाटन किया गया है। इस पुस्तक को लिख कर शास्त्री जी ने धन्यवाद का काम किया है। मूल्य ३॥)। पता—श्री मोतीलाल माणिकचन्द 'तत्त्व ज्ञानमन्दिर, आमलनेर, पूर्व खानदेश।

प्रीतम की गली में—श्रीराधास्वामी सम्प्रदाय की भावनाओं के अनुकूल धार्मिक प्रवृत्ति का इसमें वर्णन हुआ है। दिखावा, बनावट और छल कपट से दूर रह विश्वबन्धुत्व के सूत्र में बाँधने योग्य धर्म का वर्णन किया

गया है। २१ प्रकरणों में पुस्तक पूरी की गई है। लेखक हैं राजजी महाराज गुरुदास राय साहब और एक रुपये में पुस्तक प्रेमी भाई सरन आधार जी राधास्वामी सत्संग, सिविल लाइंस, आगरा के पते मिलेगी।

आदर्श महिला—एक सचित्र सामाजिक नाटक है। हिन्दू रमणियों पर आततताइयों द्वारा जो अत्याचार होते हैं उनका दिग्दर्शन कराते हुए आत्मरक्षा करनेवाली आदर्श महिला का इसमें चरित्र-चित्रण है। दाम १) अधिक है। प्रियतम पुस्तक भण्डार, पिलानी, जयपुर से पुस्तक प्राप्त होती है।

अमृत बिन्दु—योगिराज अरविन्दघोष के विचारों के उपदेश वाक्यों का इसमें संग्रह है। जिन्हें आश्रम की श्रीमाता जी ने वचनामृत रूप में प्रकट किये हैं। श्री मदनगोपाल गादोदिया. श्री अरविन्द ग्रन्थमाला, १६, देवासद, रिशमो, पाँडेचेरी के पते पर पुस्तक यों ही प्राप्त होती है।

योग के आधार—योगिराज अरविन्दघोष ने समय-समय पर अपने शिष्यों को जो पत्र द्वारा उपदेश किये हैं उनका संग्रह अंग्रेजी में 'बेसेज आफ् योग' के नाम से हो गया है। उसी पुस्तक का यह हिन्दी अनुवाद है। योग के साधकों के लिये पुस्तक पथ-प्रदर्शक रूप है। दाम २) यह भी ऊपर के पते पर मिलेगी।

क्या करें ?— महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने भारत की तथा संसार की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा साहित्यिक समस्याओं पर अपने सुलझे हुए क्रान्तिकारी विचार सुझाये हैं। क्या करें, पड़ोसी जापान, सोवियट-शक्ति, रूस की पंचायती खेती, पंचायती खेती का प्रयोग, पंचायती खेती का सहयोग, तिब्बत की राजनीति, पुस्तकालय तथा हिन्दी साहित्य पर एक दृष्टि नाम के प्रकरणों पर यह विचार प्रकट हुए हैं। मूल्य १)। पता—साम्यवादी पुस्तक प्रकाशन मन्दिर, दारागंज, प्रयाग।

हजामत—पण्डित ज्योतिप्रसाद जी निर्मल की आठ प्रहसन पूर्ण नाटिकाओं का इसमें संग्रह है। सभी प्रहसन मनोरंजक और बोधगम्य हैं। ऐसे साहित्य का आपने कुशलता से निर्माण किया है। मूल्य १।)

कविप्रसाद की साधना—श्रीयुत जयशंकरप्रसाद जी का परिचय, मनोवैज्ञानिक विकास, कवि प्रसाद का काव्य और उसकी धारा उत्क्रान्ति-

कालिक तथा उत्क्रान्तिकाल से आँसू तक, फिर आँसू से लहर तक और, लहर से कामायनी तक कवि प्रसाद का नीतिकाव्य, काव्यरूप में यौवन विलास, कामायनी खण्ड, जीवन समीक्षा खण्ड आदि प्रकरणों में पुस्तक आलोचनात्मक दृष्टि से लिखी गयी है। श्रीयुत रामनाथ सुमन जी ने इसमें अच्छी सफलता पायी है और प्रसाद जी का निखरा हुआ स्वरूप सामने हो गया है।

गुप्तजी की काव्यधारा—श्रीयुत पण्डित गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश बी० ए० ने श्रीयुत मैथिलीशरणजी गुप्त की काव्य-रचना पर आलोचनात्मक चर्चा करते हुए इस पुस्तक का निर्माण किया है। २९ प्रकरणों में गुप्त जी से सम्बन्ध रखनेवाली सभी बातों का अच्छा मन्थन और विचार हुआ है। गुप्त जी का ही चरित्र-चित्रण नहीं और उनके ग्रन्थों के पात्रों का भी अच्छा चित्रण दिया गया है। आलोचनात्मक साहित्य में इसका उच्च स्थान हो सकता है। दाम २।)

गांधी जी—श्री जुगतराम दुबे की गुजराती पुस्तक का श्रीयुत प्रभुदयालु जी विद्यार्थी ने हिन्दी में अनुवाद किया है। महात्मा जी के जीवन से सम्बन्ध रखनेवाले विषयों का ५० प्रकरणों में इसमें वर्णन हुआ है। मूल्य ॥)

आदर्श भोजन— स्वर्गीय राय बहादुर डाक्टर चौधरी एलोपैथ डाक्टर होते हुए भी अन्त में प्राकृतिक-चिकित्सा का महत्व समझे और उसे प्रकाशित किया। उन्हीं की इस सम्बन्ध की मूल पुस्तक का प्रयाग अग्रवाल विद्यालय कालेज के प्रिंसपल बाबू केदारनाथजी गुप्त ने हिन्दी में अनुवाद किया है। गुप्त जी सौ वर्ष जीने के प्रयोगों का स्वयं परिपालन करते हैं और दूसरों को उपदेश भी देते हैं। अतएव आपके समर्पित भोजन-प्रणाली का महत्व अवश्य अधिक है और समाज के लिये ग्रहणीय है। मूल्य ।।।)

काव्य कलना—श्रीयुत गंगाप्रसाद पांडे जी ने इसमें कवि का आदर्श, आलोचना, साहित्य और साम्यवाद, प्रगतिशील हिन्दी कविता, महादेवी वर्मा, जयशंकर प्रसाद, सूर्य कान्त त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानन्दन पन्त, इलाचन्द जोशी, रामकुमार वर्मा, भगवतीचरण वर्मा और हरिवंशराय 'बच्चन' पर विचारपूर्ण आलोचनात्मक दृष्टि डाली है। मूल्य १)

रत्नहार—श्रीयुत पण्डित ज्योतिप्रसाद निर्मल की ११ कहानियों का इसमें संग्रह है। विशेषता यह है कि 'निर्मल' जी शहरों के सभ्य समाज के चोचलों में ही फँसे न रहकर ग्राम्य जीवन, वहाँ की मनोवृत्ति, वहाँ के आदर्श, उनके भोले-भाले प्रेम का चित्रण करने में समर्थ हुए हैं। सब कहानियों में आदर्श और उपदेश हैं। मूल्य १॥)

साम्यवाद ही क्यों?—महापण्डित राहुल सांकृत्यायन जी ने मनुष्य की उत्पत्ति और विकास से लेकर पूंजीवाद की उत्पत्ति, साम्यवाद की उत्पत्ति, दरिद्रता, सामाजिक रोग, अच्छी सन्तान, धर्म और ईश्वर, स्त्रियों की परतन्त्रता, मुसोलिनी और हिटलर के ढंग, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, यन्त्रों से प्राप्त अवकाश का उपयोग तथा साम्यवाद का भविष्य और उसके शत्रु मित्र आदि बातों पर आलोचनात्मक विचार कर यह सिद्ध किया है कि साम्यवाद का सिद्धान्त ही भारत के लिये उपयुक्त होगा। इससे साम्यवाद के सिद्धान्त समझने में अच्छी सुविधा होगी। दाम ॥)

पतिता की साधना—पण्डित भगवती प्रसाद वाजपेयी का लिखा हुआ यह एक सामाजिक उपन्यास है। उपन्यास में घटनाक्रम स्वाभाविक रूप से प्रवाहित हुआ है। वर्णनक्रम आकर्षक, दृश्य दर्शनीय और भाव प्रभावोत्पादक है। उपन्यास की नायिका नन्दा चतुर, बुद्धिमती, सुलक्षणा, और विचारपूर्ण विदुषी है; किन्तु विधवा होने के कारण उसे जिस तरह यौवन सुलभ प्रेम में डाल कर मोह ग्रसित किया गया है; वह सम्भव होने पर भी घटनाक्रम में बहुत शीघ्र उसे जैसे परिणाम में पहुँचाया गया है वह न तो आदर्श है और न स्वाभाविकता के समीप होने पर भी सुलभ सम्भव है। दाम २)। ऊपर की आठ पुस्तकें दारागंज, प्रयाग के छात्र हितकारी पुस्तकमाला से प्रकाशित हुई हैं और वहीं से मिलती है।

चतुर्वेदीजी की स्मृति में—मुंगेर के छात्र हितकारी संघ ने स्वर्गीय पण्डित जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी जी की स्मृतिमें "छात्र" का एक स्मृति अंक निकाला है। उसमें उनके संस्मरण, श्रद्धाञ्जलि, जीवन-चरित्र की झलक आदि पर गद्य पद्यमय लेख दिये गये हैं। छात्र का यह प्रयास स्तुत्य है। दाम =)

हिन्दी-विश्व-विद्यालय परिषद

प्रथम अधिवेशन की कार्यवाही

हिन्दी-विश्व-विद्यालय परिषद का प्रथम अधिवेशन रविवार ता० १० दिसम्बर सन् १९३९ को २।। बजे दिन से सम्मेलन के संग्रहालय में निम्नलिखित सदस्यों की उपस्थिति में हुआ :—

सर्वश्री पुरुषोत्तमदास टण्डन, अयोध्यानाथ शर्मा, रामशङ्कर शुक्ल 'रसाल', बनारसी प्रसाद सक्सेना, उमेश मिश्र, ओंकार नाथ मिश्र, पद्मकान्त मालवीय, उदयनारायण त्रिपाठी, विश्वनाथप्रसाद मिश्र, नीतीश्वर प्रसाद सिंह, भगीरथप्रसाद दीक्षित, रामलखन शुक्ल, बाबूराम सक्सेना, लक्ष्मीधर वाजपेयी, बेनीप्रसाद अग्रवाल और दयाशङ्कर दुबे (परीक्षा मंत्री)।

सर्व सम्मति से श्री पुरुषोत्तमदास जी टण्डन ने सभापति का आसन ग्रहण किया।

परीक्षा मंत्री ने हिन्दी-विश्व-विद्यालय परिषद के पिछले अधिवेशन की कार्यवाही पढ़ी और वह सर्व सम्मति से स्वीकृत हुई।

परीक्षा मंत्री ने नियमावली के नियम २० के अनुसार परीक्षा समिति के लिए ११ सदस्यों के निर्वाचन का विषय उपस्थित किया। सर्व सम्मति से परीक्षा समिति का निर्वाचन नीचे लिखे अनुसार हुआ :—

सर्वश्री पुरुषोत्तमदास टण्डन, लक्ष्मीधर वाजपेयी, उदयनारायण त्रिपाठी, भगीरथप्रसाद दीक्षित, ब्रजराज, धीरेन्द्र वर्मा, अयोध्यानाथ शर्मा, गोरख प्रसाद, जगन्नाथप्रसाद शुक्ल, काका कालेलकर, राम शङ्कर शुक्ल 'रसाल'।

परीक्षा मंत्री ने नियमावली के नियम २२ (च) के अनुसार प्रत्येक वर्ग के सदस्यों के निर्वाचन का विषय उपस्थित किया। सर्व सम्मति से वर्गों का निर्वाचन नीचे लिखे अनुसार हुआ।

साहित्य—श्री उदयनारायण त्रिपाठी (संयोजक) श्री अयोध्या नाथ शर्मा, श्री रामकुमार वर्मा, डा० रामशङ्कर शुक्ल 'रसाल', श्रीलक्ष्मीधर वाजपेयी

इतिहास – डा० विश्वेश्वर प्रसाद (संयोजक) डा० बनारसी प्रसाद, डाक्टर परमात्मा शरण, डाक्टर रामशङ्कर त्रिपाठी, श्री जयचन्द्र विद्यलंकार।

भूगोल—श्री रामनारायण मिश्र (संयोजक) श्री शिवप्रसाद पाण्डेय, डाक्टर राम नाथ दुबे, श्री बलभद्र प्रसाद वाजपेयी, श्री कृष्णदेव प्रसाद गौड़।

गणित—डाक्टर गोरखप्रसाद (संयोजक) डाक्टर प्यारेलाल श्रीवास्तव, श्री जितेन्द्रनाथ सेन, श्री काशीदत्त पाण्डेय, प्रो० मक्खनलाल।

राजनीति—श्री कृष्णदेव प्रसाद गौड़ (संयोजक) श्री अवध-बिहारी लाल, श्री सांवलिया बिहारी लाल वर्मा, श्री रामशरण जी, श्री कन्हैया लाल जी।

अर्थशास्त्र—प्रो० दयाशंकर दुबे (संयोजक) प्रो० कन्हैया लाल गोयल, श्री रामशरण जी, श्री शंकर सहाय सक्सेना, श्री कृष्णकुमार शर्मा ।

संस्कृत और पुरातत्व—डाक्टर उमेश मिश्र (संयोजक) प्रो० क्षेत्रेश चन्द्र चट्टोपाध्याय, श्री राम बालक शास्त्री, श्री त्रिभुवनप्रसाद उपाध्याय, श्री चन्द्रशेखर पाण्डेय।

दर्शन शास्त्र—डाक्टर उमेश मिश्र (संयोजक) श्री गंगाप्रसाद उपाध्याय, श्री वीरमणि उपाध्याय, श्री राजाराम शास्त्री, श्री रामनाथ कौल।

गार्हस्थ्य शास्त्र—श्रीमती रत्नकुमारी (संयोजक) डा० गोरख प्रसाद, श्रीमती कमला देवी शर्मा, श्रीमती गोदावरी बाई भड़कमकर, सुश्री चन्द्रावती त्रिपाठी।

ड्राइंग—श्री श्री० वी० के० महादाने, श्री विश्वम्भर प्रसाद जी।

अंग्रेजी—प्रो० ब्रजराज (संयोजक) श्री मनोरञ्जन प्रसाद सिंह, श्री देवेन्द्र सिंह, प्रिं० बालकृष्ण पाण्डेय, श्री कुबेरनाथ शुक्ल।

धर्मशास्त्र—श्री क्षेत्रेश चन्द्र चट्टोपाध्याय (संयोजक) श्री लक्ष्मीधर वाजपेयी, श्री रघुवर मिट्ठूलाल शास्त्री, श्री नरदेव शास्त्री, डा० उमेशमिश्र।

वैद्यक और शरीर विज्ञान—श्री जगन्नाथप्रसाद शुक्ल (संयोजक) डा० बृजविहारी लाल, डा० बालेश्वर प्रसाद, डा० सिद्धार्थ आयुर्वेदरत्न, श्री बेनीमाधव द्विवेदी।

विज्ञान—डा० सत्यप्रकाश (संयोजक) श्री शालिग्राम वर्मा, श्री फूलदेव सहाय वर्मा, डा० रामशरण दास, श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव।

कृषिशास्त्र—प्रो० दयाशङ्कर दुबे (संयोजक), श्री तेजशङ्कर कोचक, श्री एन० डी० व्यास, श्री मूलचन्द मालवीय, श्री पुरुषोत्तम दास अग्रवाल।

ज्योतिष—डा० गोरखप्रसाद (संयोजक) डा० रामशङ्कर शुक्ल 'रसाल', श्री श्यामकिशोर मालवीय, श्री रामउत्साह मिश्र 'ज्योतिषाचार्य', श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव।

मुनीमी—श्री राधाकृष्ण तिवारी (संयोजक) श्री संगमलाल अग्रवाल, श्री लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, श्री कन्हैयालाल गोयल, सेठ अमरचन्द माहेश्वरी।

आरायज़नवीसी—श्री बेनीप्रसाद अग्रवाल (संयोजक) श्री संगमलाल अग्रवाल, श्री झुन्नीलाल पांडेय, श्री शीतलादीन द्विवेदी।

सम्पादनकला—श्री ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल' (संयोजक) श्री सत्यजीवन वर्मा, श्री शिवपूजन सहाय, श्री बाबूराव विष्णु पराड़कर, श्री लक्ष्मीधर वाजपेयी।

संगीत—प्रो० पटवर्धन (संयोजक) प्रो० कुशालकर, प्रो० डी० आर० भट्टाचार्य, प्रो० ब्रजराज, प्रो० डी० ओझा।

पाली—डा० बाबूराम सक्सेना (संयोजक) श्री आनन्द कौशल्यायन, श्री जगदीश काश्यप, श्री उदयनारायण त्रिपाठी, श्री नारायणदत्त पाण्डेय।

यह भी निश्चित हुआ कि परीक्षा मंत्री को प्रत्येक वर्ग के अधिवेशन में उपस्थित होने का अधिकार होगा परन्तु उन्हें वोट देने का अधिकार न होगा।

परीक्षा मंत्री ने नियमावली के नियम १८ (ज) के अनुसार हिन्दी-विश्व-विद्यालय परिषद के लिए ५ विशेषज्ञ सदस्यों के निर्वाचन का विषय उपस्थित किया। सर्व सम्मति से सदस्यों का निर्वाचन नीचे लिखे अनुसार हुआ :—

प्रो० ब्रजराज, प्रो० क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय, डा० विश्वेश्वर प्रसाद, श्रीमती रत्न कुमारी एम० ए०, श्री० बी० के० महादाने।

इसके पश्चात् समय अधिक हो जाने पर किसी आवश्यक कारण श्री सभापति जी बाहर चले गए और कार्यवाही श्री लक्ष्मीधर जी वाजपेयी के सभापतित्व में हुई।

परीक्षा मंत्री ने 'साहित्य महोपाध्याय' परीक्षा की नियमावली स्वीकृति के लिए उपस्थित की। निश्चय हुआ कि नियमावली की एक-एक प्रति पहिले परिषद के प्रत्येक सदस्य के पास विचार के लिए भेजी जाय। तत्पश्चात् यह विषय विश्व-विद्यालय-परिषद के दूसरे अधिवेशन में उपस्थित किया जाय। इसके उपरान्त सभापति जी को धन्यवाद देकर सभा विसर्जित हुई।

दयाशंकर दुबे एम० ए०, एल-एल० बी०
परीक्षा मंत्री

राष्ट्र-भाषा हिन्दी का प्रचार

स्वर्गीय सतीशचन्द्र राय एम० ए०

[सुप्रसिद्ध विद्वान स्वर्गीय पं० सतीशचन्द्र राय, एम० ए०, का एक पुराना लेख हमें उनके सुपुत्र अध्यापक श्री भवानीचरण राय, एम० ए०, से प्राप्त हुआ है। लेख को हम ज्यों-का-त्यों बिना किसी संशोधन के छाप रहे हैं। वृद्धावस्था में भी उक्त विद्वान ने हिन्दी लिखनेका जो प्रयत्न किया था, उसकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी होगी।

लेख की सामयिकता के विषय में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। बंगाल में हिन्दी के प्रचारार्थ क्या-क्या उद्योग होना चाहिए, इस विषय पर स्वर्गीय लेखक के प्रस्ताव विचारणीय हैं।

टीकमगढ़,

—बनारसीदास चतुर्वेदी]

यह अब सर्व-सम्मत है कि भारतवर्षमें राष्ट्र-भाषाका काम केवल हिन्दीसे ही हो सकता। अब तक अंग्रेजीके कालेजमें और बहुत स्कुलमें भी इतिहास, विज्ञान-आदि विषयोंकी शिक्षा प्रधानतः अंग्रेजीके माध्यम से दी जाती है किन्तु सब अभिज्ञ शिक्षकोंका सह-मत है कि मातृ-भाषाके माध्यमसे शिक्षा देनेपर विद्यार्थियोंका तुरत जैसा उपकार होता है ऐसा अंग्रेजीके माध्यमसे नहीं होता। अतः अनेक अंग्रेजीके स्कुलमें अब मातृ-भाषाके माध्यमका ही प्रचलन होने लगा। आशा है कि भारतमें स्वायत्त-शासनकी क्रमोन्नतिके साथ सर्वत्र सब-कार्य और शिक्षा कार्यमें मातृ-भाषा ही माध्यम बन जायगी,—क्योंकि अंग्रेज अध्यापक, अमला, बैरिस्टर और सौदागर लोगोंकी—जिनकी संख्या बहुत कम है—सुभीताके लिए हमारे देशके हजार-हजार विद्यार्थी और प्रजा-लोगोंकी असुभीता और क्षतिका बढ़ाना जबरदस्तीका ही काम है; भविष्य पूरा स्वायत्त-शासनमें ऐसी जबरदस्ती नहीं चलेगी। जब परमेश्वरकी कृपासे हमें ऐसा सु-दिन मिलेगा तब हिन्दीके बिना और कौन भाषा है जिसके सहारासे निखिल भारतका

राष्ट्रीय-कार्य चल सकता ? हिन्दीकी यह सार्वजनीन उपयोगिता केवल हमारी कल्पनाका विजृम्भन नहीं है किन्तु इसकी परीक्षा भी बहुत दिनोंसे हो रही; क्योंकि हम सर्वदा देखतें कि अंग्रेजी में अनभिज्ञ अलग-अलग प्रान्तोंके लोगों जब राष्ट्रीय-प्रयोजन या तीर्थ-यात्रादिके प्रयोजनसे कहीं सम्मिलित होतें तो हिन्दीके सहारेसे ही यथासाध्य बात-चीत कर लेतें। हमारी तुच्छ सम्मतिमें बंगाल, मद्रास प्रभृति विभिन्न प्रान्तोंमें प्रान्तीय शिक्षा-कार्य और राज-कार्य प्रान्तीय भाषाके सहारासे चलेगा किन्तु सब प्रान्तोंके साधारण राष्ट्रीय कार्य के लिए तो अंग्रेजी या हिन्दी जैसी एक साधारण भाषाको आश्रय करने ही पड़ेगा। क्या हम हमारे स्वदेशकी बनी हुई राष्ट्र-भाषा हिन्दीको छोड़कर सदाके लिए विदेशी भाषाके ऊपर पक्षपात करेंगे और उसका गुलाम बन रहेंगे ? परमेश्वर हमारे स्वदेशी भाइओंको ऐसे परिणामसे रक्षा करें।

यह नहीं समझता कि हम अंग्रेजीका विद्वेषी हैं। हम मुक्त-कण्ठसे बोलेंगे कि आधुनिक अंग्रेजी साहित्य हमारे बंगला, हिन्दी आदि स्वदेशी साहित्यसे बहुत पुष्ट और उन्नत है। शिक्षाकी पूर्णताके लिए अंग्रेजी-साहित्यका अनुशीलन हमारे सुशिक्षित भाइओंका अवश्य करना चाहिये; किन्तु अंग्रेजी शिक्षा जैसा अब स्कूल-कालेजमें प्रधान काम माना जाता है, और संस्कृत, बंगला, हिन्दी आदि कोई एक प्राच्य-भाषाकी शिक्षा अप्रधान काम ही माना जाता, ऐसा कभी नहीं होना चाहिये। हमारी तुच्छ सम्मतिमें शिक्षणीय विषयोंमें अंग्रेजीको एक अप्रधान स्थान देनेसे भी प्राथमिक शिक्षार्थियोंकी कुछ हानि नहीं होगी, जब इतिहास,विज्ञान आदि कि अच्छी पुस्तकें—चाहे मौलिक, या चाहे अनुवाद—हमारे देशमें हो जायगी। हमें दुःखके साथ बोलने पड़ता कि ऐसी पाठ्य-पुस्तकें, हिन्दीकी कौन कहें, बंगलामें भी अब तक बहुत कम है। विदेशीय भाषामें सुशिक्षित भाइओंके पास हमारा नम्र निवेदन यह है कि आप अपनी-अपनी प्रान्तीय भाषाओंमें सब श्रेणिओंके शिक्षार्थियोंके उपयोगी पाठ्य-ग्रन्थोंके प्रणयनके लिए खुब प्रबन्ध करें। ऐसा प्रबन्ध न किया जाय तो अँग्रेजीके माध्यमको छोड़ना कठिन या असम्भव होगा और प्रान्तीय स्वदेशी भाषाओंकी भी—जितनी चाहिये पुष्टि और उन्नति नहीं होगी।

अब सोचना चाहिये कि कौन-कौन उपायसे बंगाल आदि प्रान्तोंमें राष्ट्रभाषा हिन्दीका अधिक प्रचार हो सकता। प्राथमिक हिन्दी-शिक्षार्थिओंके लिए उपयोगी सुलभ हिन्दी ग्रन्थका प्रकाश, विभिन्न प्रान्तोंके प्रधान-प्रधान केन्द्रोंमें अवैतनिक हिन्दी विद्यालयोंका संस्थापन, और परीक्षामें विशेषकृती छात्रोंको वार्षिक वृत्ति और पदक आदिका प्रदान—यह सब हिन्दी-प्रचारका प्रधान उपाय होता है। आनन्दकी बात है कि प्रयागके हिन्दी साहित्य-सम्मेलन द्वारा यह सब काम कुछ-न-कुछ हो रहा। किन्तु ऐसा व्यापक और विराट् अनुष्ठानको सुसम्पादित करना एक साहित्य-सम्मेलनका साध्य नहीं है। ऐसा और दस-पाँच साहित्य-सम्मेलन अपनी-अपनी पूरी शक्तिके साथ प्रबन्ध करतें तो भिन्न-भाषा-भाषी सब प्रान्तोंमें हिन्दी-प्रचारका काम पूरा जोरसे चल सकता। किन्तु इस काममें बहुत खर्च पड़ेगा। क्या हमारे ग़रीब देशमें ऐसा होना सम्भव होगा? हम बोलेंगे कि केवल सम्भव नहीं, बल्कि हमारी समवेत चेष्टासे यह काम सुसिद्ध भी हो सकता,—किन्तु इसी ओर हमको पूरा ध्यान देने होगा; क्योंकि जब तक कोई वस्तुका नितान्त प्रयोजन और उसका अभाव हमको उद्बोधित और चंचल नहीं करता, तब तक वह अभावके निवारणके लिए पूरा प्रबन्ध भी नहीं हो सकता। हमें पहला ही सोचना चाहिये कि अन्यान्य प्रान्तोंमें राष्ट्र-भाषा हिन्दीके प्रचार द्वारा संयुक्त-प्रान्तकी अपनी स्वार्थ-सिद्धि इतनी नहीं होगी, जितनी निखिल भारतकी हो सकती। अतः राष्ट्रीय-महासम्मेलन और हिन्दू-महासम्मेलन जैसा राष्ट्र-भाषा हिन्दीका प्रचारके भी एक विराट् राष्ट्रीय-कार्य समझना चाहिए—जिसके साधनके लिए अन्यान्य प्रान्तवासियोंको भी अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार सहारा देना अपेक्षित है। आनन्दकी बात है कि हमारे देश-नायकोंमें जिनको हम सबसे दूरदर्शी और श्रेष्ठ मानतें वह महात्मा गाँधीजीने गुजराटी-भाषा-भाषी होकर भी राष्ट्रीय प्रयोजनीयताके लिये हिन्दी ऐसे अपनाया कि आप राष्ट्रीय सभाओंमें हिन्दीको छोड़कर अंग्रेजीमें व्याख्यान नहीं देते और सुदूर मद्रास प्रान्तमें हिन्दी बहुत कम प्रचलित है—यह समझकर आपने वहाँ हिन्दी प्रचारके लिए प्रायः एक लाख रुपये चन्दा उठाकर एक धन-भण्डार स्थापित कर दिया। हमारा पूरा विश्वास है कि अगर आप अब तक राष्ट्रीय महा-सम्मिलनका कर्णधार रहतें तो वह महा-

सम्मिलनके तरफ़से भी हिन्दी-प्रचारके लिए विशेष कुछ विधान करतें होंगे। दुःखकी बात है और कोई देश-नायकने हिन्दी-प्रचारके लिए ऐसा उल्लेख-योग्य प्रबन्ध नहीं किया।

हाँ, हमारे कलकत्ता हाइकोर्टके अन्यतम जस्टिस स्वर्गीय बाबू सारदाचरणमित्र एम, ए, बी, एल महोदय हिन्दीका एक बड़ा प्रेमी थें। आपने यह समझकर कि हिन्दी-प्रचारके लिए नागरी-लिपिका प्रचार एक प्रधान उपाय है—बंगाल आदि प्रान्तोंमें भी नागरी-लिपिका प्रचार उचित समझा और कै बरसों तक इसके लिए खुब प्रबन्ध किया। यद्यपि प्रतिकूल कारणोंसे आपका वह प्रबन्ध सफल नहीं हुआ किन्तु कोई भला कामके लिए किया हुआ बिफल प्रबन्ध भी बड़ा लाभजनक होता है; क्योंकि वह बिफलतासे ही हमें मालूम होता कि हमारे प्रबन्धमें कुछ ऐसी त्रुटि थी जिसको भविष्यमें सर्वथा सुधारने होगा। बंगाल प्रान्तमें नागरी-लिपिका प्रचार क्यों सफल नहीं हुआ, इस विषयपर यहाँ कुछ बोलना अनुचित नहीं होगा। हमारी तुच्छ सम्मतिमें कोई एक नवीन लिपिने—चाहे वह जैसी निर्दोष और उत्तम हो—प्रचलित प्राचीन लिपिको हटाकर अपना आसन जमा लिया—ऐसा उदाहरण संसारके इतिहासमें बहुत कम है। जब प्रचलित लिपिसे और प्रयोजन हो तो उसमें नुक्ता-डैश आदि कुछ चिह्नोंको लगानेसे ही दूसरी अप्रचलित लिपिका काम चल जाता, तब क्यों एक लिपिकी शिक्षाका कष्ट उठावेंगे? बंगला-लिपि नागरी-लिपिका बहुत लगभग है। बंगालीके लिए नागरी-लिपिको सीखना कुछ कठिन काम नहीं है; बंगालके स्कूल और कालेजमें नागरी-लिपिमें मुद्रित ग्रन्थों से ही संस्कृतकी शिक्षा दी जाती; तब भी बंगाली विद्यार्थियों बंगला-लिपिसे ही परीक्षामें संस्कृत प्रश्नोंका उत्तर देतें और स्कूल-कालेज छोड़कर थोड़े दिनों में ही अनभ्यासके कारण नागरी-लिपिको भूलकर नागरी लिखनेकी कौन कहें—नागरी-लिपि पढ़ने भी मुस्किल समझते।

जब बंगालमें ही नागरी-लिपिकी ऐसी अवस्था होती तब नागरीसे बहुत अलग फारसी, तामिल, तेलगु आदि लिपियाँ जहाँ चलतीं वह सब प्रान्तोंमें नागरी लिपिका प्रचार क्या बहुत कठिन बल्कि असम्भव नहीं है? निखिल भारतके मुसलमान अधिवासियोंकी अवस्थापर भी ध्यान देना चाहिए।

उन्हींकी ऊर्दू भाषा तो हिन्दीका ही एक रूपान्तर है किन्तु उन्होंके धर्म-ग्रन्थ कुरान आदिकी भाषा और लिपि अरबी-फारसी होनेके कारण वे अरबी-फारसी लिपिको खुब पवित्र समझते हैं अतः उन्होंके लिये वह लिपिका छोड़कर नागरी-लिपिको ग्रहण करना तो सम्पूर्ण असम्भव ही मालूम होता। स्वदेशी लिपिके ऊपर ऊरोप-खण्डके लोगोंका भी ऐसा ही प्रेम है। जब वे अपने देशांमें कोई संस्कृत या अरबी-फारसी पुस्तकें प्रकाशित करते तो लाटिन-लिपिमें वह सबका लिप्यन्तर (Transliteration) कर लेतें। संस्कृत आदि को पढ़ना कुछ कठिन काम है; क्योंकि एक-एक नागराक्षर—जैसे 'श' 'क्ष' इत्यादिके लिए दो-तीन लाटिन अक्षरोंका (जैसा 'sh' 'chh' इत्यादि) प्रयोजन होता और अनेक नागराक्षरके लिए (जैसे 'ट' 'ठ' इत्यादि) उपयोगी लाटिन अक्षर नहीं होनेसे उसके लिए अलग-अलग सांकेतिक चिह्नका ('t', 'th' इत्यादि) भी प्रयोजन होता। दृष्टांतके लिए हम यहाँ नागराक्षरमें कोई एक संस्कृत श्लोक और उसका लाटिन-अक्षरमें लिप्यन्यर देतें, आप देखिये कि लिप्यन्तरको पढ़ना कैसा कठिन है :—

"यथा नदीजलात् स्वच्छात् मीन उत्पतति द्रुतम्।
सर्वशून्यात्तथा स्वच्छात् मायाजालमुदीयंते ॥"

Yatha nadijalat swacchat mina utpatatidrutam,
Sarvashunyattatha swacchat mayajalamudijynate.

चिन्ताकी बात है कि ऊरोप-खण्डके पण्डितों तब भी लाटिन-लिपि द्वारा क्यों संस्कृतका लिप्यन्तर करतें है। हमारी समझमें स्वदेशी-लिपिके ऊपर ऐसा पक्षपातका प्रधान कारण यह है कि स्वदेशी-लिपि साधारण लोगोंका सुपरिचित होती किन्तु कोई नवीन लिपिकी शिक्षा समय-साध्य और कठिन काम है। अतः हमारा नम्र निवेदन यह है कि बंगाल आदि प्रान्तोंमें साधारण लोगोंके लिए हिन्दीके पाठ्य-पुस्तकें बंगला आदि प्रान्तीय लिपिमें ही होनी चाहिए। पाठ्य-ग्रन्थोंमें व्याकरण, शब्द-कोष और गद्य-पद्यके प्राथमिक पाठका ही (Reading lessons) अधिक प्रयोजन है। हमें दुःखके साथ बोलने पड़ता कि बंगाली विद्यार्थियोंकी उपयोगी हिन्दी पुस्तकें अब तक बंगालमें प्रकाशित नहीं हुई; हमें आशा है कि प्रयागका हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन यह विशेष अपेक्षित विषयकी ओर ध्यान देंगे। यह काम

सहज-साध्य नहीं है। इसके सुसम्पादनके लिए हिन्दुस्थानी और बंगाली पंडितोंकी—जो हिन्दी और बंगला दोनों भाषामें विशेषज्ञ है—समवेत चेष्टाका प्रयोजन और कुछ अधिक खर्च भी होगा।

हमारे विचारमें हिन्दी-प्रचार राष्ट्रीय कार्य होनेके कारण वह खर्च बंगाल और संयुक्त प्रान्तके एक सम्मिलित धन-भण्डारसे ही देना उपयुक्त होगा। मद्रास आदि प्रान्तोंके लिए भी ऐसा ही प्रबन्ध करने पड़ेगा।

ऊपरमें लिखा हुआ विचारसे मालूम होगा कि बंगाल आदि प्रान्तोंमें राष्ट्रीय, सामाजिक और साहित्यिक प्रयोजनसे हिन्दी-प्रचारकी सफलताके लिए प्रधानतः

(१) सब संसृष्ट प्रान्तोंके समवेत प्रबन्धसे संग्रहीत एक बड़ा धन-भण्डार और उसके कार्य-निर्वाह और यथायोग्य विनियोगके लिए एक केन्द्रीय (Central) समिति प्रतिष्ठित करनी चाहिए।

(२) **अलग**-अलग प्रान्तमें प्रदत्त धनसे अपेक्षित हिन्दी ग्रन्थों इत्यादिके प्रणयन और प्रकाशके लिए प्रान्तीय (Provincial) ग्रन्थ प्रकाश-समिति भी प्रतिष्ठित करनी चाहिए।

उपसंहारमें हम स्वदेश-हितैषी भाइयोंके पास नम्र निवेदन करते कि कोई देशमें साहित्यिक उन्नतिको छोड़कर राज-नैतिक, अर्थ-नैतिक या समाज-नैतिक पूरी उन्नति नहीं हुई और नहीं होगी। अतः देश-हितकर और सब कामोंमें राष्ट्रीय भाषा हिन्दीका प्रचार भी आप एक बड़ा काम समझिये और अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार तन, मन और धनसे उसमें सहारा पहुँचाकर भारत-माताके मुखको उज्ज्वल करनेवाले सुपुत्र बन जाइये।

'विशाल भारत'

———

हिन्दी सम्पादकों से अनुरोध

हिन्दी साहित्य सम्मेलन का २९ वाँ वार्षिक अधिवेशन आगामी मई महीने में बड़े समारोह से पूना में होने जा रहा है। इसलिये हिन्दी के संपादकों और संचालकों से अनुरोध है कि वे अपनी-अपनी पत्र-पत्रिकाओं को सम्मेलन के अधिवेशन के अवसर तक, मंत्री, स्वागत समिति, २९ वाँ हिन्दी साहित्य सम्मेलन, ३७३, शनवार पेठ, पूना, नं० २ के पते पर बिना मूल्य भेजते रहने का कष्ट करें। साथ ही सम्मेलन की सूचनाओं को समय-समय पर पत्रों में प्रकाशित करके सम्मेलन के प्रचार-कार्य में सहायता पहुँचाते रहें।

बाबूराम सक्सेना एम० ए०, डी० लिट्०,
प्रधान मंत्री
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

'नारंग-पुरस्कार'

पंजाब के सुप्रसिद्ध हिन्दी प्रेमी सर गोकुलचंद नारंग द्वारा प्रदत्त १००) का 'नारंग-पुरस्कार' प्रत्येक वर्ष हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा दिया जाता है। संवत् १९९६ के 'नारंग-पुरस्कार' के लिये पुस्तकें स्वीकार किये जाने की अंतिम तिथि नियमावली के अनुसार ३१ अगस्त सन् १९३९ रखी गई थी। खेद है कि उक्त तिथि तक पुस्तकें कार्यालय में नहीं प्राप्त हुईं। इसलिये अब उसकी तिथि बढ़ाकर ३१ मार्च सन् १९४० कर दी गई है। कविता कम से कम १०० पंक्तियों की अवश्य होनी चाहिये। कविता 'भारतीय संस्कृति' विषय पर होगी। केवल पंजाब निवासी कवि और कवित्रियाँ इस पुरस्कार के लिए अपनी प्रकाशित पुस्तकें भेज सकती हैं। अतएव पंजाब निवासी कवियों और कवित्रियों से निवेदन है कि वे अपनी पुस्तकों की सात-सात प्रतियाँ ३१ मार्च सन् १९४० तक सम्मेलन कार्यालय में अवश्य भेज दें।

ज्योतिप्रसाद मिश्र निर्मल
संयोजक
नारंग पुरस्कार समिति
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

नियमावली

१—सम्मेलन-पत्रिका प्रति मास प्रकाशित होती है।

२—हिन्दी साहित्य सम्मेलन के आदर्शों की पूर्ति में सहायक होना पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है।

३—पत्रिका का वार्षिक मूल्य १) तथा एक अङ्क का =) है।

४—पत्रिका के संम्बन्ध में पत्र-व्यवहार साहित्य-मन्त्री, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के पते से करना चाहिए।

५—पत्रिका-संबन्धी पत्र-व्यवहार में जवाब के लिए टिकट आने चाहिए; अन्यथा आवश्यक-अनावश्यक का विचार कर पत्रोत्तर दिया जायगा।

हिन्दी प्रेमियों से अनुरोध

हिन्दी साहित्य सम्मेलन की मुख-पत्रिका 'सम्मेलन-पत्रिका' पिछले कई वर्षों से प्रकाशित होती आई है। समय समय पर इसमें सुन्दर और विचार-पूर्ण लेखों के साथ सम्मेलन की स्थायी समिति तथा अन्यान्य समितियों के कार्य-विवरण प्रकाशित होते रहे हैं। हिन्दी के प्रेमियों, विद्वानों तथा स्थायी समिति के सदस्यों से यह अविदित नहीं है। किंतु अब हम चाहते हैं कि 'सम्मेलन-पत्रिका' प्रति मास ठीक समय पर प्रकाशित हो। साथ ही सुन्दर और श्रेष्ठ साहित्यिक लेख प्रकाशित किये जायँ जिससे हिन्दी के प्रति अनुराग रखने वाले सुदूर प्रांतों के हिन्दी-प्रेमी और विद्यार्थी भी इससे लाभ उठा सकें। इसके सिवा 'साहित्य-रत्न' 'मध्यमा' तथा 'प्रथमा' परीक्षाओं में सम्मिलित होने वाले विद्यार्थियों को साहित्य-अध्ययन में समय समय पर सहायता प्राप्त होती रहे। इसलिये हम प्रत्येक हिन्दी प्रेमी तथा विद्यार्थी से अनुरोध करते हैं कि वह 'सम्मेलन-पत्रिका' के स्वयं ग्राहक बनें और अपने मित्रों को भी बनावें। यदि एक हज़ार भी ग्राहक इसको मिल गये तो 'पत्रिका' का आकार प्रकार भी बड़ा कर दिया जायगा और विद्वानों के श्रेष्ठ साहित्यिक लेखों से भी इसका कलेवर अलंकृत होता रहेगा। आशा है हिन्दी-प्रेमी इस निवेदन की ओर ध्यान देने की कृपा करेंगे। सम्मेलन प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी की संस्था है और इसीलिये हम उनसे हर प्रकार के सहयोग और सहायता की पूर्ण आशा रखते हैं। जिन ग्राहकों का वार्षिक चंदा समाप्त हो गया है वे कृपया १) मनीआर्डर से शीघ्र भेज दें।

साहित्य-मंत्री

रजिस्टर्ड नं० ए० ६२९

हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा

प्रकाशित कुछ पुस्तकें

(१) सुलभ-साहित्य-माला

१ भूषण ग्रन्थावली २)
२ हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास ॥)
३ भारत गीत ≡)
४ राष्ट्र भाषा ॥)
५ शिवाबावनी ≡)
६ सरल पिंगल ।)
७ भारतवर्ष का इतिहास भाग १ २॥)
८ " " " " २ २।)
९ ब्रजमाधुरी सार २॥)
१० पद्मावत पूर्वार्द्ध १), १।)
११ सत्य हरिश्चन्द्र ।-)
१२ हिन्दी-भाषा सार ।॥)
१३ सूरदास की विनय पत्रिका ≡)
१४ नवीन पद्य-संग्रह ।॥)
१५ कहानी-कुञ्ज ॥=)
१६ विहारी-संग्रह ≡)
१७ कवितावली ।॥)
१८ सुदामा चरित्र ।)
१९ कबीर पदावली ।॥=)
२० हिन्दी गद्य-निर्माण १॥)
२१ हिन्दी साहित्य की रूप-रेखा ।)
२२ सती करुणकी ॥)
२३ हिन्दी पर फारसी का प्रभाव ॥=)
२४ पार्वती मङ्गल ।)
२५ सूर पदावली ॥=)
२६ नागरी अंक और अक्षर ≡)
२७ हिन्दी कहानियाँ १॥)
२८ ग्रामों का आर्थिक पुनरुद्धार १।)
२९ तुलसी दर्शन २॥)
३० भूषण-संग्रह भाग १ ।-)
३१ भूषण-संग्रह भाग २ ॥=)

(२) साधारण-पुस्तक-माला

१ अकबर की राज्यव्यवस्था १)
२ प्रथमालंकार निरूपण ≡)

(३) वैज्ञानिक-पुस्तकमाला

१ सरल शरीर विज्ञान ॥), ।॥)
२ प्रारम्भिक रसायन १)
३ सृष्टि की कथा १)

(४) बाल-साहित्य-माला

१ बाल पञ्चरत्न ॥)
२ वीर सन्तान ।=)
३ बिजली =)

(५) ओझा अभिनन्दन ग्रन्थ

१६)

मुद्रक—गिरिजा प्रसाद श्रीवास्तव, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग।
प्रकाशक—साहित्य-मंत्री, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।